पत्रावली

सुभाष चन्द्र वसु

मीनाक्षी प्रकाशन

मेरठ दिल्ली कलकत्ता

मैं आत्म-त्याग के आदर्श को लेकर ही जीवन प्रारम्भ करना चाहता हूँ···मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ होता जा रहा है कि भविष्य में आत्म-त्याग के किसी भी आह्वान को मैं साहस और धैर्य के साथ स्वीकार करूँगा···माताजी और पिताजी को पत्र लिखकर मैंने दरिद्रता और सेवाव्रत ग्रहण करने की अनुमति माँगी है···जो सत्य समझूँगा उसको पालन करने के मार्ग में मुझे सांसारिक विवेचन के अधीन होकर नहीं रहना पड़ेगा···सांसारिक उच्चाकांक्षा जिसके जीवन में पथ-प्रदर्शन का कार्य नहीं करती, उसके लिए संशय एवं विपदा उतने भयानक नहीं होते···निन्दा और प्रशंसा से मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। अपने आदर्शवाद में मेरी आस्था है।···आदर्श की प्राप्ति समर्पण की पूर्णता पर निर्भर है। त्याग और उपलब्धि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
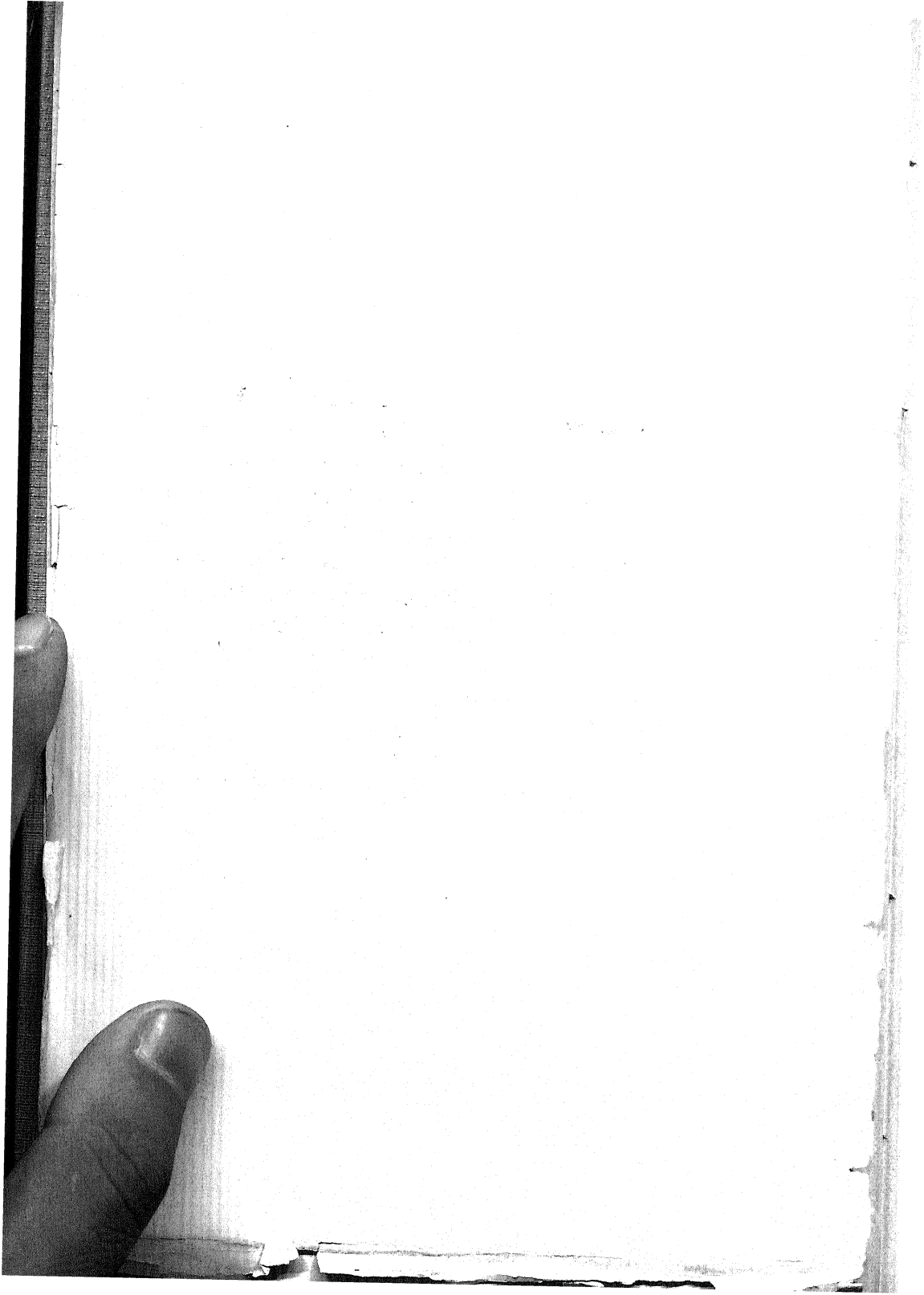
प्रस्तावना

नेता जी के ग्रन्थों को भारत की समस्त भाषाओं में प्रकाशित करना, नेता जी शोध संस्थान* के प्रमुख कार्यों में से एक है। अतः उनके पत्रों के इस संकलन को हिन्दी में प्रस्तुत करते हुए हमें परम संतोष का अनुभव हो रहा है।

इस संग्रह में १५३ पत्र हैं। ये पत्र नेता जी ने १९१२ ई० से १९३२ ई० के बीच लिखे थे। पत्रों को काल-क्रमानुसार व्यवस्थित किया गया है।

पुस्तक का आरम्भ उन उपलब्ध पत्रों से होता है जो नेता जी ने पन्द्रह वर्ष की आयु में अपनी पूज्य माता श्रीमती प्रभावती एवं श्रद्धेय भ्राता श्री शरत् चन्द्र वसु को लिखे थे। पुस्तक की समाप्ति उन दिनों में होती है जब नेता जी ने स्वास्थ्य-लाभ के हेतु योरोप को प्रस्थान किया था। अधिकांशतः सभी प्रारम्भिक पत्र बंगला में और बाद के पत्र अंग्रेजी में लिखे गए थे।

नेता जी के पत्रों में भावनाओं एवं विचारों का अजस्र प्रवाह है। अतः वे उनके मानसिक एवं बौद्धिक आदर्शों के क्रमिक विकास को स्वाभाविक रूप से प्रतिबिम्बित करते हैं।

किशोरावस्था एवं युवावस्था में कुटुम्बीजनों को लिखे गये पत्र स्पष्ट रूप से इस बात के द्योतक हैं कि नेता जी आरम्भ से ही आदर्श-वादिता एवं 'मिशनरी' भावना से ओत-प्रोत थे। विद्यार्थी जीवन में मित्रों को लिखे गये पत्र नेता जी के व्यक्तित्व-निर्माण काल के आन्तरिक संघर्ष का परिचय देते हैं।

केम्ब्रिज से जो पत्र उन्होंने देशबन्धुजी एवं शरत् बाबू को लिखे उनसे स्वर्ग-प्रसूत ब्रिटिश सिविल सर्विस को त्याग कर राष्ट्रीय संघर्ष में कूदने के उनके जीवन के प्रथम महान् संकल्प की पुष्टि होती है। इन पत्रों से यह भी स्पष्ट होता है कि सुभाष बाबू में सन् १९२१ ई० से पूर्व ही बौद्धिक परिपक्वता आ चुकी थी। उनके आदर्श उनके सम्मुख थे। इन्हीं

* नेताजी रिसर्च ब्यूरो, कलकत्ता।

पत्रों से पहली बार यह भी आभास मिलता है कि भारतीय राजनीति के मंच पर एक राजनीति-विज्ञानवेत्ता, नियोजक एवं संघर्ष-नीति-विशारद का पदार्पण होने वाला है।

बर्मा की जेलों से लिखे गए अधिकांश पत्र बहुत ही रोचक हैं। उनमें से कुछ तो व्यक्तिगत सम्बन्धों पर भावपूर्ण प्रकाश डालते हैं। कुछ अन्य पत्र दर्शन-शास्त्र, मनोविज्ञान, समाज-सेवा, शिक्षा, नगर-प्रशासन, कारागृह-सुधार आदि की समस्याओं से सम्बन्धित हैं। सरकार को लिखे गए पत्र मानव के मौलिक अधिकारों के लिए किये गये सुभाष बाबू के सतत संघर्ष के द्योतक हैं। इन सभी पत्रों से नेता जी के मन और मस्तिष्क का पता लगता है।

नेता जी के प्रारम्भिक विकास में धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों का क्या प्रभाव पड़ा और उन्हें अपने जन-जीवन के प्रथम चरण में किन-किन शक्तियों से जूझना पड़ा आदि बातों का ज्ञान इन पत्रों से मिलता है। इन पत्रों में उन सभी व्यक्तियों के लिए, चाहे वे इतिहास-वेत्ता हों या शोध-स्नातक, जो समकालीन भारतीय इतिहास के विराट् रूप का दर्शन करना चाहते हैं, पर्याप्त सामग्री है।

सौभाग्य से नेताजी के कुटुम्बियों ने उनके प्रारम्भिक पत्र सम्भालकर रक्खे। श्री शरत् चन्द्र वसु की धर्मपत्नी श्रीमती विभावती वसु के संरक्षण में ये सब पत्र लगभग तीस वर्ष तक रहे और अपनी मृत्यु से पूर्व उन्होंने इन सबको शोध एवं प्रकाशन हेतु हमें दे दिया। नेता जी ने सरकार एवं अन्य लोगों को जो पत्र बर्मा की जेलों से लिखे थे, जिनमें से कई पत्र सेन्सर-अधिकारियों ने रोक भी लिये थे, उन सबकी प्रतिलिपियाँ उन्होंने अपने हाथ से करके अपने पास रख ली थीं। ये सभी प्रतिलिपियाँ हमें श्रीमती विभावती वसु द्वारा संरक्षित कागजों में से प्राप्त हुई हैं। इन सब पत्रों का प्रकाशन आज पहली बार हो रहा है।

नेता जी के पत्रों में जिन व्यक्तियों का उल्लेख है उन सभी के नामों की सूची अन्त में दी गई है। आशा है उससे पत्रों का सन्दर्भ समझने में सहायता मिलेगी।

इन पत्रों को हिन्दी में अनूदित करने के गुरुतर भार के लिए हम श्रीमती सुषमा एम० ए०, निदेशिका, अनुवाद विभाग, मीनाक्षी प्रकाशन के आभारी हैं।

हमें आशा है कि देश के समस्त हिन्दी भाषा-भाषी इस प्रयास का मुक्त-हृदय से स्वागत करेंगे। उनका सहयोग एवं उनकी सद्भावनायें हमें नेता जी के अन्य साहित्य को हिन्दी में प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित करेंगी। जय हिन्द !

नेताजी भवन
३८/२ एलगिन रोड
कलकत्ता
२३ जनवरी, १९६६

शिशिर कुमार वसु

आभारोक्ति

सौभाग्य से श्रीमती वासन्ती देवी अभी हमारे बीच हैं। जो पत्र देशबन्धु जी तथा उनके नाम प्रेषित किये गए थे, उन्होंने उन्हें प्रकाशित करने की अनुमति हमें प्रदान की है। उसके लिए हम उनके आभारी हैं। हम श्रीमती सुधीर सरकार के भी आभारी हैं, जिन्होंने अपने पति के नाम प्रेषित सभी मूल्यवान् पत्रों को संस्थान को भेंट किया है। हम सर्वश्री चारु चन्द्र गांगुली, गोपाल लाल सान्याल, दिलीप कुमार राय, सन्तोष कुमार वसु तथा अन्य उन सभी व्यक्तियों के आभारी हैं, जिन्होंने बड़ी उदारतापूर्वक, नेताजी के पत्रों को संस्थान को भेंट करके उनके प्रकाशन का अधिकार हमें दिया है।

ऐसे सभी सज्जनों से, जिनके पास नेता जी के कोई पत्र हों, हमारा अनुरोध है कि वे उनको इस संस्थान के पास अध्ययन एवं प्रकाशनार्थ अवश्य भेज दें।

पत्र-सूची

प त्रा व ली

१*

श्री श्री ईश्वर सहाय

कटक
शनिवार

परमपूजनीया
श्रीमती माता ठकुरानी
श्रीचरणकमलेषु !
माँ,

आज नवमी है। इस समय आप देश में देवी की पूजा में संलग्न होंगी। इस बार पूजा सम्भवतः धूमधाम से सम्पन्न होगी। परन्तु माँ, धूमधाम से क्या प्रयोजन ? जिनकी हम पूजा करते हैं उन्हें तो हृदय में स्मरण करना ही पर्याप्त है। जिस पूजा में भक्ति-चन्दन और प्रेम-कुसुम का उपयोग किया जाए वही पूजा जगत् में सर्वश्रेष्ठ है। आडम्बर और भक्ति का क्या साथ ? इस बार एक दुःख मन में है। वह दुःख साधारण नहीं, महान् है। देश जा कर त्रैलोक्य-वन्दिता, सब दुःख हरण करने वाली, महिषासुरमर्दिनी, जगज्जननी दुर्गादेवी की पूर्ण आभूषणों से अलंकृत दीप्तिमयी मूर्ति के दर्शन करके अपने नेत्रों को सफल नहीं कर सका। पुरोहित के उन पवित्र मंत्रों की ध्वनि, उनके शंख-घंटा-निनाद सुनकर अपने कर्णरन्ध्रों को सार्थक नहीं कर पाया। कुसुम, चन्दन, धूप आदि की सुगन्ध से नासिका को पवित्र नहीं कर पाया। एक साथ बैठकर देवी का प्रसाद पा रसना को तृप्त भी नहीं कर सका। इस बार पुरोहित के दिए हुए निर्माल्य को प्राप्त कर स्पर्शेन्द्रिय को सार्थक नहीं कर पाया और शान्तिजल के अभाव में शान्ति भी प्राप्त न कर सका। सब कुछ निष्फल ही रहा। यदि देवी की चराचरव्यापी मूर्ति के दर्शन कर सकता तो यह दुःख मिट जाता। माँ, फिर काष्ठपुतली देखने की कामना न होती। किन्तु वह सौभाग्य, उतना आनन्द, क्या मनुष्य को प्राप्त होता है ? इसी कारण दुःख हुआ।

* प्रथम नौ पत्र सन् १९१२–१३ में श्रीमती प्रभावती वसु को लिखे गए थे।

विजयादशमी के दिन मैं यहाँ पड़ा रहूँगा, परन्तु हृदय तो आपके पास वहाँ ही रहेगा। इस पवित्र दिवस पर इस प्रकार के आनन्द से वंचित रहूँगा। उपाय भी क्या है ? कल विजया की सन्ध्या के उपरान्त हम यहाँ आप सबको प्रणाम करेंगे। आप और पिता जी प्रणाम स्वीकार करें। सब गुरुजनों को भी प्रणाम।

हम सकुशल हैं। आशा है कि आप सब भी कुशलपूर्वक होंगे। मेरा प्रणाम स्वीकार हो। पिता जी को भी प्रणाम। इति।

आपका सेवक
सुभाष

पुनः— शारदा कहाँ है ?

२

श्री श्री दुर्गा सहाय

कटक
शनिवार

परमपूजनीया
श्रीमती माता ठकुरानी
श्रीचरणकमलेषु !
माँ,

आज प्रातःकाल आपका पत्र पाकर विशेष प्रसन्नता हुई। पत्र के साथ मनीआर्डर से पचास रुपये भी प्राप्त हुए।

मैं जो पत्र लिख रहा हूँ उसका उत्तर देने में शीघ्रता मत करना। अवकाश के अनुसार उत्तर दे देना। यदि पढ़ने में कठिनाई हो तो और किसी से पढ़वा लेना। मटर जोवरा बाग में बोई जा रही है या शीघ्र ही बोई जाएगी। रघया मुझसे पाँच-छः दिन पहले मटर के दाने ले गया था। जोवरा बाग में मेरा जाना नहीं हुआ। नगेन ठाकुर ने इस बार पूजा नहीं की यह जानकर मुझे बहुत ही दुःख हुआ है। क्या अब वह पूर्णतः स्वस्थ हो गये हैं ? मैंने अब तक जितनी भी पूजाएँ देखीं उनमें नगेन ठाकुर तथा श्री श्री पूज्यपाद गुरुदेव महाशयों की पूजा को सर्वाधिक भक्तिपूर्ण और आकर्षक पाया। नगेन ठाकुर का दुर्गापाठ बड़ा ही मधुर तथा श्रद्धाहीन व्यक्तियों के मन में भी भक्ति जगाने वाला है।

श्री श्री गुरुदेव महाशय के कोदालिया वाले मकान की प्रतिष्ठा हो

चुकी, यह जानकर प्रसन्नता हुई। देश जाने पर ही वहाँ जाऊँगा। मिलने पर उन्हें मेरा सादर प्रणाम कहना। बड़ी दीदी बीमार हैं यह सुनकर चिन्ता हुई। अब वह कैसी हैं? आपको लंगड़ा बुखार हुआ था यह जानकर मैं चिन्तित हूँ। अब कैसी हो? बसुमती के आफिस में शंकराचार्य के समस्त स्तोत्र बहुत ही सस्ते मूल्य पर मिल जाते हैं। एक ही पुस्तक में सब स्तोत्र संकलित हैं, और मूल्य केवल बारह आने या एक रुपया है। यह सुविधा न छोड़ना। कंचि मामा से कहना एक पुस्तक खरीदकर ले आयें। वह पुस्तक आप अपने पास रख लें, और कटक आते समय साथ ले आयें।

माँ, मुझे आपसे कुछ कहना है। सम्भवतः आप जानती हों कि मांस-त्याग की मेरी प्रबल इच्छा है। किन्तु कोई कुछ कहे या इसका दूसरा अर्थ निकाले इसी कारण नहीं त्याग पा रहा हूँ। मैंने एक महीना पहले मछली के अतिरिक्त अन्य सभी मांस त्याग दिये थे, परन्तु दादा ने आज मेरी पत्तल में हठपूर्वक मांस परोस दिया। क्या करता? विवश होकर अनिच्छापूर्वक खाना पड़ा। मैं निरामिषभोजी बनना चाहता हूँ। कारण यह है कि हमारे शास्त्रकारों ने लिखा है—'अहिंसा परमो धर्मः'। केवल शास्त्रकारों ने ही नहीं अपितु स्वयं ईश्वर ने भी कहा है—हमें क्या अधिकार है कि हम ईश्वर की सृष्टि को नष्ट कर दें? इससे क्या घोर पाप नहीं होता? जो यह कहते हैं कि मछली न खाने से नेत्रों की दृष्टि क्षीण हो जाती है वह भूल करते हैं। हमारे शास्त्रकार इतने मूर्ख नहीं थे कि लोगों की दृष्टि क्षीण करने के उद्देश्य से ही मछली खाने का निषेध करते। आपका इस विषय में क्या विचार है?

आपके आदेश के बिना हमारी कुछ भी करने की इच्छा नहीं होती। हम सब कुशल हैं। आप सबको मेरा प्रणाम।

आपका सेवक
सुभाष

३

श्री श्री ईश्वर सहाय

कटक
शनिवार

परमपूजनीया
श्रीमती माता ठकुरानी
श्रीचरणकमलेषु !
माँ,

गोपाली से सुना है कि आप काशीधाम नहीं गईं। पिता जी अकेले गए हैं। पिता जी के पत्र से ज्ञात हुआ कि आलराजा ने समय पर रुपये नहीं भेजे इस कारण जाना नहीं हुआ। आपने जिस नुस्खे के सम्बन्ध में कहा था वह कल भेज चुका हूँ, परन्तु शीघ्रता के कारण उसमें अधिक कुछ नहीं लिख पाया। मुझे आपके कमरे में नीलरतन बाबू के दो नुस्खे मिले थे, परन्तु उनका क्या प्रयोजन है यह मेरी समझ में नहीं आया। इसी कारण दोनों भेज दिए। छोटे दादा से कहना, वह छाँट लेंगे।

दीदी को कल पत्र लिखा था। लिलि कहाँ है और कैसी है? उसका समाचार पाने को उत्सुक हूँ।

मेरे अनुरोध पर मँझले दादा ने मुझे एक लम्बा पत्र लिखा। वह पत्र मुझे कल प्राप्त हुआ। पत्र पाकर अति प्रसन्नता हुई। मेरे तुच्छ अनुरोध से उन्होंने कितना परिश्रम किया यह सोचकर मुझे दुःख होता है। उस पत्र को उनके आगमन तक आभूषणों की भाँति मूल्यवान् समझकर सुरक्षित रखूँगा।

और अधिक क्या लिखूँ। ईश्वर की कृपा से हम सकुशल हैं। शरत् बाबू (जीजा जी के भ्राता) यहाँ हैं। सम्भवतः मकान ठीक होने पर चले जायेंगे। श्री श्री गुरुदेव तथा माता ठकुरानी कैसी हैं? लिखना। उनको मेरा सादर प्रणाम कहना। प्रतिदिन मुझे उनकी याद आती है। वह यहाँ जो फूल चुनकर रखते थे उनकी गंध हम सूँघा करते थे। ऐसा अनुभव होता है कि अब भी उन फूलों की गंध व्याप्त है। वह पूजा के उपरान्त शान्तिजल और निर्माल्य देते थे।

वह दृश्य इन चर्मचक्षुओं से अब भी मुझे दिखाई देता है। मैं विक्षिप्त हूँ। ऐसी स्थिति में लिख रहा हूँ। सम्भवतः उसे पढ़कर आपको दुःख हो।

हमारे स्कूल सम्भवतः १५ तारीख को बन्द होंगे। निश्चित रूप से ज्ञात नहीं, क्योंकि अभी तक सूचना नहीं आई। और सब समाचार बड़े दादा से मालूम कर लेना। मैं सकुशल हूँ। मैं आशा करता हूँ कि जब आप लोग फिर मुझे देखेंगे तो अब से अधिक स्वस्थ और बलवान् पायेंगे। यदि ऐसा न हुआ तो इसमें मेरा कोई दोष न होगा, वह तो ग्रहों का दोष होगा। मैं स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जितना सतर्क रहता हूँ उतना अन्य कोई व्यक्ति नहीं रह सकता। परन्तु आप सोचते हैं कि मैं जानबूझकर स्वास्थ्य की उपेक्षा करता हूँ? एक महीना पहले जैसा था उससे अब अधिक स्वस्थ हूँ। प्रतिदिन चार रुपये खर्च हो रहे हैं—किसी दिन पाँच और किसी दिन तीन। आपके तीस रुपये खर्च हो चुके हैं। जगबन्धु ने मुझको पिता जी के साढ़े सैंतीस रुपये दिये थे, उन्हीं से खर्च चला रहा हूँ।

यहाँ भोर में ठंड होने लगी है परन्तु जाड़े का मौसम आने में अभी देर है। अभी तक गोभी नहीं बोयी गई। दो रुपये के गोभी के बीज मँगवाए थे। अब पौध निकल आई है।

भाभी जी, मामी जी तथा मझली भाभी कहाँ हैं? और कैसी हैं? उनसे मेरा प्रणाम कहना। अशोक कैसा है? क्या उसके सारे दाँत निकल चुके? मैं सकुशल हूँ। आशा है कि वहाँ पर भी सब लोग कुशलपूर्वक होंगे। सबसे हमारा प्रणाम कहिये। इति।

आपका सेवक
सुभाष

४

श्री श्री दुर्गा सहाय

कटक
गुरुवार

परमपूजनीया
श्रीमती माता ठकुरानी
श्रीचरणकमलेषु!
माँ,

क्षमा करना, बहुत दिन से आपको पत्र नहीं लिख सका। नदादा अब कैसे हैं? क्या इस बार वह परीक्षा नहीं दे

सकेंगे ? ईश्वर का अनुग्रह कम नहीं है। देखो तो जीवन में हर क्षण उसके अनुग्रह का परिचय मिलता है। वास्तव में तथ्य तो यह है कि हम अन्धे, अविश्वासी, नास्तिक हैं और भगवान् की कृपा का महत्व नहीं जान पाते। उनके अनुग्रह को कैसे जान सकते हैं ? विपत्ति में लोग ईश्वर को स्मरण करते हैं। मैं तो हृदय में पूर्ण निष्ठा से स्मरण करता हूँ। परन्तु जैसे ही विपत्ति समाप्त होती है और सुख के दिन आते हैं हम ईश्वर को स्मरण करना भूल जाते हैं। इसी कारण कुन्ती ने कहा था कि हे स्वामी, तुम मुझे सदैव विपत्ति में रखना। तब मैं सच्चे हृदय से तुम्हें स्मरण करूँगी। सुख, वैभव में तुमको भूल जाऊँगी, इसलिए मुझे सुख मत देना।

जन्म-मरण ही जीवन है। इस जीवन में हरि का नाम स्मरण करना ही जीवन की सार्थकता है। यदि हमने ईश्वर का नाम स्मरण नहीं किया तो जीवन व्यर्थ है। मनुष्य और पशु में यही अन्तर है कि पशु ईश्वर का अस्तित्व नहीं जानता और जानकर उसे स्मरण करने में असमर्थ है। हम प्रयास करने से ईश्वर को जान सकते हैं, उसे स्मरण कर सकते हैं। ज्ञान असीम है। वह सीमित बुद्धि द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। इसी कारण भक्ति की आवश्यकता है। मैं तर्क करना नहीं चाहता क्योंकि अज्ञानी हूँ। अब तो मैं केवल यह दृढ़ विश्वास करना चाहता हूँ कि ईश्वर का अस्तित्व है। यही मेरी आस्था है। विश्वास से भक्ति उत्पन्न होगी और भक्ति से ज्ञान उपजेगा। महर्षियों ने कहा है—'भक्ति ज्ञानीय कल्पते'—भक्ति ज्ञान के पीछे भागती है। शिक्षा का अर्थ बुद्धि को परिमार्जित करना है और सत्-असत् की विवेचन-शक्ति का अर्जन करना है। इन दो उद्देश्यों के पूर्ण होने पर ही शिक्षा सार्थक होती है। शिक्षित व्यक्ति यदि चरित्रहीन हो तब भी क्या उसे विद्वान् कहेंगे ? कभी नहीं। यदि कोई व्यक्ति मूर्ख होकर भी विवेक के अनुसार आचरण करता है और ईश्वरभक्त है तो वास्तव में वही महापण्डित कहलाएगा। यथार्थ ज्ञानी तो वही है जिसे ईश्वर-बोध है। यों ही शास्त्रज्ञान का प्रदर्शन करना ज्ञान नहीं है। मैं केवल विद्वान् व्यक्ति को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता। जिसके नेत्रों में ईश्वर-स्मरण करते समय प्रेमाश्रु होते हैं उसी को मैं देवता मानता हूँ। भंगी होने पर भी मैं ऐसे व्यक्ति की पगधूलि का स्पर्श करके अपने को धन्य समझूँगा। और एक ही बार दुर्गा या हरिनाम-स्मरण से जिनके तन में स्वेद, अश्रु, रोमांच आदि सात्विक लक्षण प्रकट होते हैं वह व्यक्ति तो साक्षात् भगवान् ही है। उसके चरण-स्पर्श से धरती पावन होती है। हम तो उसके समक्ष अत्यन्त तुच्छ हैं।

हम व्यर्थ में धन के लिए हाय-हाय करते हैं। हम एक बार भी तो यह नहीं सोचते कि वास्तव में धनी है कौन? जिसके पास भगवत्-भक्ति, भगवत्-प्रेम है वही इस संसार में धनी है। ऐसे व्यक्ति के समक्ष महा-राजाधिराज भी दीन भिक्षुक के समान है। भगवत्-भक्ति जैसे अनमोल धन के अभाव में हम जीवित हैं, यह भी एक विचित्र बात है।

परीक्षा का समय निकट देखकर हम बहुत घबराते हैं किन्तु एक बार भी यह नहीं सोचते कि जीवन का प्रत्येक पल परीक्षा-काल है। यह परीक्षा ईश्वर और धर्म के प्रति है। स्कूलों की परीक्षा तो दो दिन की है। परन्तु जीवन की परीक्षा अनन्त काल के लिए है, उसका फल हमें जन्म-जन्मान्तर तक भोगना पड़ेगा।

भगवान् के श्रीचरणों में जिन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है उनका जन्म सफल है। दुःख की बात तो यह है कि इस महान् सत्य को हम समझते हुए भी नहीं समझते। हम ऐसे अन्धे, अविश्वासी और मूर्ख हैं कि किसी प्रकार से भी हमारे ज्ञान-चक्षु नहीं खुलते। हम मनुष्य नहीं, कलि के राक्षस हैं।

हमारा अवलम्ब यही है कि भगवान् दयालु हैं। घोर पाप में रत रहने पर भी मनुष्य उनकी दया का परिचय पाता है। भगवान की दया असीम है।

जब वैष्णव धर्म के लोप होने के लक्षण दिखाई देने लगे तो धर्म की अवमानना से व्यथित होकर वैष्णव-श्रेष्ठ श्री अद्वैताचार्य ने प्रार्थना की थी—हे प्रभु, रक्षा करो, रक्षा करो, इस काल में सम्भवतः धर्म स्थिर नहीं रहता। अत: तुम अवतार लो और धर्म का उद्धार करो। तब नारायण ने चैतन्यदेव के रूप में अवतार लिया। पाप के अंधकार में भी कभी-कभी सत्य, ज्ञान और प्रेम की ज्योति देखकर यह विश्वास होता है कि अब भी हमारी उन्नति हो सकती है। यदि ऐसा न होता तो भगवान् क्यों बार-बार मृत्युलोक में अवतरित होते?

आप कब तक कलकत्ता में रहेंगी? आप सब लोग कैसे हैं? समाचार शीघ्र देना। हम सब सकुशल हैं। पिता जी भी कुशलपूर्वक हैं।

आपका सेवक
सुभाष

५

श्री श्री दुर्गा सहाय

कटक
रविवार

परमपूजनीया
श्रीमती माता ठकुरानी
श्रीचरणकमलेषु !
माँ,

बहुत दिन से आपको कोई पत्र नहीं लिखा। आज आपको पत्र लिखकर अपने हाथ और लेखनी को सार्थक कर रहा हूँ। मेरे हृदय-कानन में समय-समय पर जो भाव-कुसुम मंजरित होते हैं उन्हें अश्रुसिक्त करके आपके चरणों में अर्पित करता हूँ। मैं नहीं जानता मेरे भाव-कुसुमों की गंध से आप प्रसन्न होती हैं या आपको कष्ट होता है। कहीं आपको उनकी तीव्र गंध से कष्ट न होता हो इसी आशंका से अधीर हो उठता हूँ।

मेरे हृदय में भाव इस प्रकार जाग्रत होते हैं जैसे आकाश में बे-मौसम बादल घिर आते हैं। यहाँ मैं किसके समक्ष उन्हें व्यक्त करूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता। इसीलिए आपको लिख भेजता हूँ। आप मेरे भावों को जानकर कैसा अनुभव करती हैं इस बात का पता मुझे चल जाए तो प्रसन्नता होगी। मेरे मनोभाव आपको भले लगते हों या न लगते हों, किन्तु एकमात्र उपहार समझकर मैं तो उन्हें आपको ही अर्पित करने का साहस कर पाता हूँ। माँ, बताओ तो हमारी इस शिक्षा का उद्देश्य क्या है ? मेरे लिए इतना धन व्यय कर रही हो, दोनों समय गाड़ी से स्कूल भेजती हो और लौटा लाने के लिए भी गाड़ी भेजती हो। एक दिन में चार-पाँच बार भरपेट भोजन कराती हो, सुन्दर वस्त्रों से मेरे तन को सजाती हो, नौकर-नौकरानी रखती हो। मैं सोचता हूँ कि तुम इतना श्रम, इतना कष्ट मेरे लिए क्यों उठाती हो ? इसका अर्थ क्या है ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता। विद्यार्थी जीवन के समाप्त होने पर हमें कर्म-क्षेत्र में प्रवेश करना है। फिर हम जीवन भर गधे की भाँति श्रम करेंगे और अन्त में हमारा देहान्त हो जाएगा। माँ, आप जीवन में मुझे किस क्षेत्र में कार्य करता हुआ देखकर प्रसन्न होंगी ? मुझे ज्ञात नहीं कि आपकी आकांक्षा क्या है। बड़े होने पर मैं किस पद पर नियुक्त होऊँ जब आपको प्रसन्नता होगी ? माँ, क्या जज, मजिस्ट्रेट, बैरिस्टर अथवा किसी बड़े

शासकीय पद पर मेरे नियुक्त होने से आपको सर्वाधिक प्रसन्नता होगी ? जब धनकुबेर समझकर लोग मेरी पूजा करेंगे तब आपको आनन्द मिलेगा ? बहुत-सा धन, गाड़ी, घोड़ा, मोटर होंगी, बहुत से नौकर-चाकर और विशाल भवन होगा, बड़ी ज़मींदारी होगी, तब आपको सुख मिलेगा अथवा दरिद्र होकर भी मैं विद्वान् और गुणी व्यक्तियों द्वारा सम्मानित होऊँगा तब आपको प्रसन्नता होगी ? माँ, मेरी तीव्र इच्छा है कि आप मुझे बताएँ कि मुझे कैसा देखकर आपको प्रसन्नता होगी ? दयालु ईश्वर ने हमें मनुष्य योनि में जन्म दिया है और स्वस्थ शरीर, बुद्धि, शक्ति आदि प्रदान की है। आखिर क्यों ? ईश्वर ने अपनी पूजा के लिए ही मनुष्य को यह दुर्लभ गुण दिए होंगे, किन्तु हम उसकी पूजा कब करते हैं ? दिन में एक बार भी हृदय से उसे स्मरण नहीं करते। माँ, यह सोचकर दु:ख होता है कि जिस ईश्वर ने हमारे लिए इतना किया, जो सुख-दु:ख में, घर और बीहड़ वन में सदैव ही हमारा मित्र है, जो हमारे निकट सदैव ही रहता है, हमारे मन मन्दिर में निवास करता है, जो ईश्वर हमारा आत्मीय है उसे हम एक बार भी हृदय में स्मरण नहीं करते।

संसार के तुच्छ पदार्थों के लिए हम कितने रोते हैं किन्तु ईश्वर के लिए हम अश्रुपात नहीं करते। माँ, हम तो पशुओं से भी अधिक कृतघ्न और पाषाण-हृदय हैं। उस शिक्षा को धिक्कार है जिसमें ईश्वर का नाम नहीं, और उस व्यक्ति का जन्म निरर्थक है जो प्रभु का नाम स्मरण नहीं करता। प्यास लगने पर लोग नदी-सरोवर का जल पीकर प्यास बुझाते हैं, परन्तु इससे क्या मन की प्यास बुझती है ? नहीं, मन की प्यास साधारण जल से नहीं बुझती। इसीलिए शास्त्रकारों ने लिखा है—

"भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते !"

भगवान् ने इस कलियुग में एक नई सृष्टि का सृजन किया है। यह सृष्टि बाबू लोगों की है जो किसी अन्य युग में नहीं थी। हम भी बाबू सम्प्रदाय के हैं। प्रभु के दिए हुए दो पैर हैं किन्तु हम २०—२२ कोस पैदल नहीं चल सकते क्योंकि हम बाबू हैं। हमारी दो बाहें हैं परन्तु शारीरिक श्रम नहीं कर सकते, हाथ से काम नहीं कर सकते। ईश्वर ने हमें बलिष्ठ शरीर दिया है परन्तु हम श्रम करना छोटे व्यक्तियों का कार्य समझकर श्रम से घृणा करते हैं। इसका कारण यही है कि हम बाबू हैं। हम सब काम नौकरों से करवाते हैं, हाथ-पैर चलाने में कष्ट होता है। हम बाबू हैं। गर्म देश में जन्म लेकर भी हम गर्मी सहन नहीं कर सकते, साधारण ठंड से हम इतने घबराते हैं कि सारे शरीर को वस्त्रों के बोझ से लाद

लेते हैं क्योंकि हम बाबू हैं। हम प्रत्येक स्थान पर अपने को बाबू कहते हैं किन्तु वास्तव में हम मानवता से दूर हैं। मनुष्य के रूप में निरे पशु हैं। पशु से भी अधम हैं। क्योंकि हमारे पास ज्ञान है, विवेक है, पशुओं के पास वह भी नहीं। हम जन्म से ही सुख-विलास में पोषित होने के कारण तनिक-सा भी कष्ट नहीं सह सकते। इसी कारण हम इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रख पाते, उन्हें जीत नहीं पाते। जीवनभर इन्द्रियों के दास बनकर रहते हैं। बोझिल जीवन व्यतीत करते हैं।

प्रायः मैं सोचता हूँ कि बंगाली कब मनुष्य बनेंगे ? कब तुच्छ धन का लोभ त्याग कर ऊँचे विषयों के सम्बन्ध में सोचना प्रारम्भ करेंगे ? कब अपने पैरों पर खड़े होंगे ? कब सामूहिक रूप से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का प्रयास करेंगे ? और कब अन्य जातियों की भाँति अपने पैरों पर खड़े होकर वास्तविक मनुष्य के रूप में अपना परिचय देंगे ? आज पश्चिमी शिक्षा पाकर अधिकांश बंगालियों को नास्तिक और विधर्मी बनता देखकर बहुत दुःख होता है। बंगालियों में बलवान् और स्वस्थ लोग बहुत ही कम हैं। और प्रतिदिन प्रातःकाल जागकर ईश्वर का नाम स्मरण करने वाले तो और भी कम हैं। यह देखकर मानसिक वेदना होती है। माँ, यह सोचकर दुःख होता है कि आजकल बंगाली विलासप्रिय, परनिन्दक, कुटिल-हृदय, दूसरों को सुखी देखकर द्वेष करने वाले और मानवीय गुणों से रहित हो गए हैं।

हम पढ़ रहे हैं। आगे नौकरी का लालच और धन का लोभ रहने पर हमारी शिक्षा का क्या होगा ? क्या हम वास्तव में मानवता के अधिकारी हो सकेंगे ? माँ, क्या बंगाली कभी सच्चे मनुष्य बन सकेंगे ? आपका क्या विचार है ? हम और हमारा देश दिन-प्रतिदिन पतन के गर्त में गिर रहे हैं। कौन हमारा उद्धार करेगा ? बंगालियों का उद्धार केवल बंग मातायें कर सकती हैं। बंगाली मातायें यदि बंगाली पुत्रों को नये साँचे में ढाल सकें तो बंगाली फिर मनुष्य बन सकेंगे।

हम सकुशल हैं। छोटे दादा को पत्र लिखा था। पिता जी सोमवार को गोपणी पालान की यात्रा पर जाएँगे। मेरा प्रणाम स्वीकार करना। इस बार तो पागल की तरह बहुत लिख गया। पढ़ने में कष्ट हो तो फाड़कर फेंक देना और क्षमा करना।

आपका सेवक
सुभाष

श्री श्री दुर्गा सहाय

कटक
शनिवार

परमपूजनीया
श्रीमती माता ठकुरानी
श्रीचरणकमलेषु !
माँ,

भारतवर्ष भगवान् का बहुत ही प्रिय स्थान रहा है। यहाँ भगवान् ने युग-युग में अवतार लेकर पाप से बोझिल धरती का उद्धार किया और भारत के लोगों के हृदय में धर्म तथा सत्य की स्थापना की। भगवान् ने अंशावतार के रूप में बहुत-से देशों में जन्म लिया है परन्तु इतनी बार और किसी देश में अवतार नहीं लिया। इसीलिए यह कहना उचित है कि भारत भगवान् का प्रिय देश है। देखो माँ, भारत में सब कुछ है—प्रचंड गर्मी, प्रबल शीत, अधिक वर्षा, मनोहर शरद् और बसन्त। दक्षिण में स्वच्छ जल से परिपूर्ण पवित्र गोदावरी दोनों किनारों का स्पर्श करती, कलकल ध्वनि के साथ सागर की ओर निरंतर भागी जा रही है—कैसी पवित्र है वह ! देखते ही, या स्मरण करते ही रामायण की पंचवटी याद आती है। तब याद आते हैं राम, लक्ष्मण और सीता। समस्त राज्य तथा संपदाओं को त्यागकर स्वर्गिक सुख की अनुभूति करते हुए गोदावरी के तट पर समय व्यतीत कर रहे हैं। सांसारिक दुःखों की छाया उनके तन-सरोजों को मलिन नहीं कर सकती। प्रकृति की साधना और ईश्वर की आराधना करके वे तीनों अनुपम आनन्द के दिन व्यतीत कर रहे हैं। और एक हम हैं जो जगत् के दुःख-दावानल में निरंतर जल रहे हैं। कहाँ वह सुख-शांति और कहाँ यह त्रास ! हम शान्ति के लिए हाहाकार कर रहे हैं। ईश्वर के मनन और पूजन के अतिरिक्त और कहीं शान्ति नहीं है। मृत्युलोक में घर-घर गोविन्द के नामकीर्तन में ही सुख है। यही सुख-प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। माँ, दृष्टि उठाने पर और भी पवित्र दृश्य सामने आता है—पवित्र जल से भरी जाह्नवी बह रही है। रामायण का दृश्य याद आता है। देखता हूँ वाल्मीकि जी का वह पवित्र तपोवन—महर्षि के पावन कंठ से निकले हुए पवित्र वेद-मंत्रों की ध्वनि से गुंजरित। वयोवृद्ध ऋषि आसन पर बैठे हैं और उनके निकट उनके शिष्य लव और कुश बैठे हैं। महर्षि

उन्हें पढ़ा रहे हैं। पावन वेद-ऋचाओं की ध्वनि से आकर्षित होकर कराल विषधर भी अपना विष त्याग, फन उठाए, मौन हो, मन्त्र-ध्वनि सुन रहा है। गंगा में जल पीने आई हुई गउएँ भी मस्तक उठाकर वेद-मन्त्र सुन रही हैं। निकट ही मृग सोया है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह निर्निमेष दृष्टि से ऋषि की ओर देख रहा है। रामायण में सब कुछ पावन है, साधारण तृण का वर्णन भी ; परन्तु धर्म का त्याग कर देने के कारण हम उस पवित्रता को समझ नहीं पाते। एक पवित्र दृश्य और याद आ रहा है। त्रिभुवनतारिणी भागीरथी बह रही है, उसके तट पर योगी बैठे हैं, कोई अर्द्धनिमीलित नेत्रों से प्रातःसंध्या में लीन, कोई वन से फूल चयन कर, प्रतिमा बनाकर, चन्दन-धूप आदि से पूजन कर रहे हैं। कोई मन्त्रोच्चारण से दिशाओं को गुंजरित कर रहे हैं। कोई भागीरथी के पवित्र जल से आचमन कर स्वयं को पवित्र कर रहे हैं। कोई योगी गुनगुनाते हुए पूजा के लिए फूल चुन रहे हैं। सम्पूर्ण दृश्य पवित्र है, नेत्र तथा हृदय को प्रिय है। परन्तु जब स्मरण होता है कि वे ऋषि कहाँ हैं? उनके वे पवित्र मन्त्रोच्चार कहाँ हैं? और कहाँ हैं उनके यज्ञ, पूजन आदि? स्मृति से हृदय विदीर्ण हो जाता है। हमारा धर्म नहीं रहा, कुछ नहीं रहा। जातीय जीवन तक नहीं रहा। हम अब दुर्बल-तन, दूसरे के दास, धर्महीन और पापी जाति के हैं। हाय परमात्मा! उस अनुपम देश भारत की यह कैसी दीन-दशा है! क्या तुम हमारा उद्धार नहीं करोगे? यह तो तुम्हारा ही देश है। देखो, तुम्हारे प्रिय देश की कैसी हीन दशा है। तुमने अवतार लेकर जिस सनातन धर्म की प्रतिष्ठा की थी वह अब कहाँ है? हमारे पूर्वज आर्यों ने जिस जाति-धर्म को प्रतिष्ठित किया था वह अब नष्ट हो गया है। हे करुणामय हरि! दया करो, रक्षा करो, प्रभु!

माँ, मैं जब तुम्हें पत्र लिखने बैठता हूँ तब मेरी दशा पागल से भी बुरी हो जाती है। मैं सोचकर पत्र लिखने नहीं बैठता, और न ही यह जानता हूँ कि क्या लिखूंगा। मन में जो भाव उठते हैं उन्हें ही व्यक्त करता हूँ, विचार नहीं रहता कि क्या लिख रहा हूँ और क्यों लिख रहा हूँ। मन करता है लिखने को, इसीलिए लिखता हूँ। यदि कोई अनुचित बात लिख दी हो तो क्षमा करना।

पूज्यपाद गुरुजी के स्वर्गवासी होने के विषय में सोचता हूँ तो निर्णय नहीं कर पाता कि दुःखी होऊँ या सुखी। देहान्त होने पर मनुष्य कहाँ जाता है और किस स्थिति में रहता है यह मुझे ज्ञात नहीं। किन्तु

मृत्यु के पश्चात् हमारी आत्मा ब्रह्म में लीन हो जाती है। वह दिन हमारे लिए प्रसन्नता का दिन है, दुःख का नहीं। फिर हमें इस संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता, सांसारिक कष्ट नहीं भोगने पड़ते और नित्य आनन्दमय ब्रह्म में लय हो जाते हैं। जब सोचता हूँ कि गुरुजी नित्य आनन्दमय धाम को गए हैं, वह स्वर्गवासियों के साथ एक पंक्ति में बैठकर स्वर्गीय अमृत का पान कर रहे हैं, तब दुःख अनुभव करने का कारण समझ में नहीं आता। वह चिरआनन्दपुर में पहुँचकर महासुखी हैं, तब यदि उनके सुख में सुखी होता हूँ तो शोक कैसा ? दयामय भगवान् जो कुछ करते हैं वह जगत् के कल्याण के लिए ही करते हैं। इस तथ्य को पहले हम समझ नहीं पाते। जब इसका सुफल दिखाई देता है तब हमारी समझ में आता है कि हरि कल्याण ही करते हैं। भगवान् ने जब गुरुजी को उनके हित के लिए हमसे विलग कर दिया तब हमें शोक करना उचित नहीं ; क्योंकि जो वस्तु भगवान् की है वह उसने ले ली। हमारा उस पर क्या अधिकार है ?

यदि ईश्वरेच्छा से कुमार्ग पर जाने वालों को धर्मपथ दिखाने और सनातन धर्म में दीक्षित करने के लिए उन्होंने दुबारा मानव शरीर धारण किया हो या शीघ्र ही करें तब भी हमें दुःखी नहीं होना चाहिए; क्योंकि इससे जगत् का कल्याण ही होगा। जगत् का मंगल ही प्रत्येक मनुष्य का मंगल है। हम भारतीय हैं। भारत का कल्याण ही हमारा कल्याण है। यदि गुरुजी पुनः जन्म लेकर भारतवासियों को धर्म की ओर प्रवृत्त कर सकते हैं तो हमें इससे प्रसन्न ही होना चाहिए। भगवान् ने गीता में लिखा है :—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

हम सब सकुशल हैं। हम सब ईश्वर के खिलौने हैं। हमारी शक्ति कितनी अल्प है। सब कुछ ईश्वर की दया पर निर्भर है। हम तो उपवन के माली हैं, स्वामी तो वही है। हम उपवन में काम करते हैं परन्तु फल पर हमारा अधिकार नहीं है। जो फल होते हैं उन्हें उनके चरणों में अर्पित कर देते हैं। कार्य करने का अधिकार तो हमें है परन्तु फल ईश्वर के अधीन है। इस कारण गीता में भगवान् ने कहा है :—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'

लिलि अब कहाँ है और कैसी है ? मुझे ज्ञात नहीं था कि वह कहाँ है इसीलिए पत्र नहीं लिखा। मामी जी और भाभी कहाँ हैं, कैसी हैं ?

दादा कैसे हैं ? और सब लोग कैसे हैं ? मेरा प्रणाम स्वीकार करना। मँझले दादा का क्या समाचार है ? दो-तीन डाक के बाद भी कोई पत्र नहीं मिला। नये मामा जी कैसे हैं ? सुना था छोटी मामी जी अधिक बीमार हो गई थीं। वह अब कैसी हैं ? शारदा क्या कहती है ? इति।

आपका ही सेवक

सुभाष

७

राँची

रविवार

परमपूजनीया

श्रीमती माता ठकुरानी

श्रीचरणेषु !

माँ,

बहुत दिन से कलकत्ता से कोई समाचार नहीं मिला। सम्भवत: समयाभाव के कारण आपने पत्र नहीं लिखा। आशा है आप सब लोग सकुशल होंगे।

मँझले दादा की परीक्षा कैसी रही ? आपने मेरा पत्र पूरे तौर से पढ़ लिया ? नहीं पढ़ा है तो मुझे दुःख होगा।

माँ, क्या इस युग में दुःखी भारत माता की एक भी सन्तान स्वार्थ-रहित नहीं है ? क्या भारत माँ इतनी अभागी है ? हा ! कहाँ है वह प्राचीन युग ! वह आर्य वीर कहाँ हैं जो भारत माता के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर सकें। माँ, क्या आप केवल हमारी ही माँ हो अथवा आप सब भारतवासियों की माँ हो ? यदि सब भारतवासी आपकी सन्तान हैं तो उनके कष्टों को देखकर क्या आपकी आत्मा रो नहीं उठती ? माँ की आत्मा क्या इतनी कठोर होती है ? नहीं, कभी नहीं हो सकती; माँ की आत्मा कभी कठोर नहीं हो सकती। अपनी सन्तान की इस चिन्तनीय दशा को देख कर माँ कैसे मौन है ? माँ, आपने सम्पूर्ण भारत में भ्रमण किया है, भारतवासियों की दशा देखकर या उनकी दुर्दशा के सम्बन्ध में सोचकर क्या आपका हृदय रो नहीं उठता ? हम मूर्ख और स्वार्थी हो

सकते हैं किन्तु माँ को तो कभी स्वार्थ-भावना स्पर्श नहीं कर सकती। माँ का जीवन तो अपने बच्चों के लिए ही होता है। फिर माँ अपने बच्चों को संकट में देखकर भी क्यों मौन बैठी है? क्या माँ में भी स्वार्थ-भावना है? नहीं नहीं, कभी नहीं हो सकती। माँ, यह कभी नहीं हो सकता।

माँ, क्या केवल देश की ही शोचनीय दशा है? देखो, भारत के धर्म की क्या दशा है? कहाँ वह पवित्र सनातन हिन्दू धर्म और कहाँ हमारा यह पतित आचरण! कहाँ वह पवित्र आर्यकुल जिनकी चरणरज लेकर यह धरती पावन हो गई और कहाँ हम पतन के गर्त में गिरे हुए उनके वंशधर! क्या वह पवित्र सनातन धर्म लोप होने वाला है? देखो, चारों ओर नास्तिकता, अविश्वास, पाखण्ड का साम्राज्य है। इसीलिए लोगों को इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है। उस धार्मिक आर्य जाति के वंशधर अब विधर्मी और नास्तिक हो गए हैं। जिसका नाम, गुणकीर्तन और ध्यान ही जीवन का एकमात्र ध्येय था, उस भगवान् का नाम भक्ति सहित एक बार भी लेने वाले लोग बहुत कम रह गए हैं। माँ, यह दशा देखकर और इस सम्बन्ध में सोचकर क्या आपका मन रो नहीं उठता? आपके नेत्र सजल नहीं हो जाते। माँ का हृदय कभी निष्ठुर नहीं होता।

माँ, एक बार आँखें खोलकर देखो कि आपकी सन्तान की क्या दशा हो गई है। पाप से, ताप से, अन्न के अभाव से, प्रेम के अभाव से, और द्वेष तथा स्वार्थ में लिप्त रहने के कारण, और सर्वाधिक धर्म के अभाव से वे नरक की अग्नि में निशि-दिन जल रहे हैं। उस पवित्र सनातन धर्म की क्या दशा हो गई है? वह धर्म, पवित्र धर्म अब लोप होने वाला है। अविश्वास, नास्तिकता, कुसंस्कार (बुरी आदतों) में हम लिप्त हैं। हम कितने पतित हो गए हैं, भ्रष्ट हो गए हैं। इसके अतिरिक्त आजकल धर्म के नाम पर अधर्म को प्रश्रय मिल रहा है। तीर्थ-स्थानों में कितने पाप होते हैं? देखो, जगन्नाथ जी के पंडाओं की कितनी भीषण स्थिति है, छिः छिः छिः! प्राचीन काल के उन पवित्र ब्राह्मणों को देखो और फिर देखो आजकल के पापी ब्राह्मणों को। आजकल जहाँ धार्मिक कृत्य होते हैं वहाँ भी पाखंड और अधर्म का बोलबाला है। हाय! हाय! हमारी कैसी दुर्दशा हो गई है। हमारे धर्म की कैसी दशा हो गई है।

क्या यह सब बातें आपको व्याकुल नहीं करतीं? आपको मर्मवेदना नहीं होती? क्या हमारा देश दिन-प्रतिदिन पतन के गर्त में गिरता जाएगा? क्या भारत माँ की एक भी सन्तान अपने स्वार्थों को तिलांजलि

देकर माँ के लिए अपना जीवन उत्सर्ग नहीं करेगी ? माँ, हम और कब तक सोते रहेंगे ? हम कब तक निर्जीव खिलौनों की भाँति देखते रहेंगे ? क्या भारत माता और सनातन धर्म का रुदन हमें सुनाई नहीं देता ? क्या वह रुदन हमें व्यथित नहीं करता ?

हम कब तक हाथ पर हाथ धरे धर्म की यह दुर्दशा देखते रहेंगे ? हमें अब जागना चाहिए। आलस्य त्यागकर कर्मक्षेत्र में उतरना चाहिए। परन्तु दुःख तो इसी बात का है कि क्या इस स्वार्थपूर्ण युग में मनुष्य अपना स्वार्थ त्यागकर भारत माँ की सेवा करने को तत्पर होंगे ? चौरासी लाख योनियों के पश्चात् यह मनुष्य जन्म, दुर्लभ मानव देह, प्राप्त हुई है। बुद्धि, विवेक और आत्मा प्राप्त हुई है। परन्तु इन सबको पाकर भी यदि पशुओं के समान केवल आहार-निद्रा में व्यस्त रहे और धर्महीन जीवन व्यतीत करते रहे, पशुओं के समान इन्द्रियों के दास बने रहे, अपने-अपने स्वार्थ में लिप्त रहे तो इस मानव देह-प्राप्ति से क्या लाभ ? धर्म और देश के लिए जीवित रहना ही यथार्थ जीवन है।

माँ, जानती हो यह सब बातें क्यों लिख रहा हूँ ? और कहूँ भी किससे ? कौन मेरी इन बातों को सुनेगा ? जिनका जीवन स्वार्थ से पूर्ण है वह तो इन बातों को सोच ही नहीं सकते और न ही सोचेंगे—क्योंकि ऐसा करने से उनके स्वार्थों को ठेस लगेगी। परन्तु मैं जानता हूँ कि माँ का जीवन स्वार्थमय नहीं होता, सन्तान और देश के लिए होता है। यदि आप भारत का इतिहास पढ़ो तो देखोगी कि कितनी माताओं ने भारत की सेवा में जीवन उत्सर्ग कर दिया। अहिल्याबाई, मीराबाई, दुर्गावती, और भी बहुत सी हैं जिनके नाम मुझे स्मरण नहीं। हम माँ के स्तनपान करके बड़े होते हैं इसलिए माँ का उपदेश और शिक्षा हम पर जितना प्रभाव डाल सकते हैं उतना अन्य बातें नहीं।

माँ, यदि सन्तान कहे कि तुम अपने स्वार्थ में ही बँधी रहो तो समझना चाहिए कि सन्तान ही अभागी है। तब तो यह निश्चित है कि इस कलियुग में और अधिक श्रेष्ठ लोगों का आविर्भाव नहीं होगा। भारत की श्रेष्ठता नष्ट हो गई है और अब उसके उद्धार के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। चारों ओर निराशा ही दिखाई देती है। यदि वास्तव में अब निराशा की ही शरण लेनी है, बैठे-बैठे अपना पतन ही देखना है तो इतना कष्ट क्यों भोगें ? जब इस जीवन में कोई श्रेष्ठ कर्म नहीं कर सकते तो जीवित रहना व्यर्थ है।

मैं चिरकाल तक सबका सेवक बनकर रहना चाहता हूँ। आशा है

वहाँ सब सकुशल होंगे। यहाँ सब कुशल है। हमारा प्रणाम स्वीकार करें। इस पत्र का उत्तर देना। इति।

आपका चिर-स्नेहाधीन सेवक
सुभाष

८

श्री श्री दुर्गा सहाय

राँची
रविवार

परमपूजनीया
श्रीमती माता ठकुरानी
श्रीचरणेषु !
माँ,

आपका पत्र आए बहुत दिन हो गए। उस पत्र का उत्तर मैंने लिखा तो था, किन्तु जब पढ़ा तो मुझे ऐसा लगा कि आवेश में बहुत-सी व्यर्थ की बातें लिख गया। इसीलिए उस पत्र को भेजने का मन नहीं हुआ और उसे मैंने फाड़कर फेंक दिया। मेरा यह स्वभाव है कि पत्र लिखते समय संयम नहीं रख पाता और भावावेश में लिखता हूँ। मैं चाहता हूँ कि भावनापूर्ण पत्र ही लिखूँ, क्योंकि अन्य विषयों के सम्बन्ध में लिखकर पत्र भरना, या इस प्रकार का पत्र पढ़ना मुझे अच्छा नहीं लगता। यदि पत्र लिखने का मन नहीं होता है तो मैं नहीं लिखता और जब मन होता है तो बहुत कुछ लिख देता हूँ। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में लिखना मुझे निरर्थक लगता है। भगवान के ऊपर विश्वास रखने से कोई भी चिन्ता, उद्वेग और भय पास नहीं आता। फिर भी यदि कोई अस्वस्थ हो जाय तो उसमें हम कर भी क्या सकते हैं। हमारे पास ऐसी शक्ति नहीं कि इच्छानुसार किसी को रोगमुक्त कर सकें। इसलिए व्यर्थ में चिन्तित होने से क्या लाभ ? हम जिनकी गोद में रहते हैं वह त्रिलोक-धारिणी, विश्वजननी दुर्गा स्वयं हमारी रक्षक हैं। फिर इतनी चिन्ता क्यों ? भय क्यों ? अविश्वास ही सब विपत्तियों और दुःख का कारण है; परन्तु मनुष्य इस सत्य को समझना नहीं चाहता। वह सोचता है कि अपनी इच्छा से ही वह किसी को भी रोगमुक्त कर सकता है। यह उसकी मूर्खता है।

आठ-नौ दिन हुए मौसा जी कलकत्ते चले गए। वे वहाँ सकुशल हैं।

उन्हें हरा नारियल बहुत पसन्द है और इस दशा में हरा नारियल उनके लिए बहुत लाभप्रद है। अच्छे हरे नारियल मंगवाकर उनके पास भेजें तो उन्हें बहुत फायदा हो। उन्होंने इस विषय में आपको लिखने को कहा है। यहाँ सब सकुशल हैं। आप लोगों के कुशल समाचार जानकर प्रसन्नता हुई। मँझले दादा कब लौटेंगे ?

सम्भवत: मई के मध्य में हमारा परीक्षा-फल निकलेगा। मालूम नहीं यह समाचार कहाँ तक ठीक है। सुना है कि बहुत से व्यक्तियों ने तो अपने अंक तक मालूम कर लिए हैं। क्या मँझली से छोटी जीजी यहाँ आयेंगी ?

मैंने अमूल्य जीवन का इतना समय व्यर्थ ही नष्ट कर दिया है। यह सोचकर बहुत वेदना होती है, कभी-कभी तो असह्य हो उठती है। यदि मनुष्य जीवन पाकर भी जीवन का अर्थ समझ में नहीं आया और गन्तव्य स्थान पर नहीं जाया जा सका तो यह जीवन व्यर्थ है। जिस प्रकार सब नदियों का गन्तव्य-स्थान समुद्र है उसी प्रकार मानव जीवन का गन्तव्य-स्थान ईश्वर है। यदि मनुष्य ईश्वर तक न पहुँच पाए तो मनुष्य जीवन निरर्थक है और पूजा, जप, ध्यान सब व्यर्थ के पाखंड हैं। अब अन्य व्यर्थ के कार्यों में समय व्यतीत करने को मेरा मन नहीं करता, केवल यही इच्छा है कि एक कमरे में बन्द रहूँ और दिन-रात ध्यान, चिन्ता और पाठ में लगा रहूँ। हम दिन-प्रतिदिन यमलोक के निकट पहुँच रहे हैं, आखिर हम ईश्वर की साधना कब करेंगे, और कब उसे प्राप्त कर पाएँगे, कब उसकी गोद में शान्ति और विश्राम प्राप्त कर सकेंगे ? आनन्दमय को प्राप्त किए बिना आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। फिर भी लोग धन-संपदा आदि एकत्र करके किस प्रकार संतुष्ट रहते हैं यह बात समझ पाना मेरे लिए एक समस्या है। जो ईश्वर आनन्द-निधि है उसे त्याग देने से तो कुछ भी आनन्द पास नहीं रहता। जो ईश्वर आनन्द की खान है उसे प्राप्त कर लेने पर ही आनन्द प्राप्त होगा।

यदि हम जाग्रत नहीं हुए और साधना में संलग्न होकर हमने ईश्वर-दर्शन नहीं पाए तो हमारा सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ है। हम जितनी पूजा, जप, ध्यान और उपासना आदि करते हैं उसका लक्ष्य भगवत्-दर्शन या ईश्वर-लाभ ही है। यदि हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचे तो सब कुछ निरर्थक है। जिसने एक बार ईश्वररूपी अमृत का पान कर लिया है वह भला संसाररूपी गरल को क्यों चखने लगा।

ईश्वर ने हमको सांसारिक प्रलोभनों के खिलौनों से बहका रखा है और माया में फँसा रखा है। माँ अपने कार्य में व्यस्त है, बच्चा

खिलौनों से खेल रहा है, जब तक शिशु खिलौनों को फेंककर माँ, माँ, पुकारता हुआ व्याकुल नहीं हो उठता तब तक माँ उसके पास नहीं आती। माँ सोचती है बच्चा तो खेल ही रहा है, मैं क्यों जाऊँ ? परन्तु जब बच्चे का रुदन माँ के मर्म को बेध देता है तब माँ दूर नहीं रह सकती और भागकर बच्चे के पास आ जाती है। विश्व-जननी दुर्गा भी माँ की भाँति है, वह भी माँ है। पूर्ण एकाग्रता से भगवान का स्मरण किए बिना वह हमें नहीं मिलती। यदि रुपये में दो-चार आने ही मन लगाने से ईश्वर-प्राप्ति हो जाती तब तो विषय-भोगों में लिप्त रहने वाले भी उन्हें पा लेते। ईश्वर-प्राप्ति के बिना मनुष्य जीवन एक भारस्वरूप है।

इस सम्बन्ध में आपका विचार क्या है ? ईश्वर के बिना मैं किस प्रकार समय व्यतीत करूँ ? किसलिए चिन्ता करूँ, किससे बोलूँ, कैसे आनन्द प्राप्त करूँ ? ईश्वर सब प्रकार के सुख, आनन्द का अक्षय भंडार है। उसी की शरण में जाना श्रेयस्कर है। उसका दर्शन करना आवश्यक है।

ईश्वर को पाने के लिए साधना आवश्यक है। व्याकुल हृदय से ईश्वर-स्मरण करना चाहिए। यदि ध्यान पूर्णतः उसी में केन्द्रित हो तो दो-तीन वर्ष के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। हमें प्रयास करना चाहिए। उसके दर्शन होना न होना उसके अनुग्रह पर निर्भर है। जिसने एक बार भी उसे पा लिया फिर उस व्यक्ति को साधना करने की आवश्यकता नहीं रहती।

आशा है आप सब लोग सकुशल हैं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

आपका ही सेवक
सुभाष

ॐ

रांची
सोमवार (१९१३)

परमपूजनीया
श्रीमती माता ठकुरानी
श्रीचरणेषु ।
माँ,

कल आपका पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। मौसी जी की बीमारी के कारण हमें यहाँ इतने दिन तक रहना पड़ा। अब वह स्वस्थ हैं। आकाश इन दिनों निरभ्र रहा। हम कल यहाँ से चल देंगे और कलकत्ता पहुँच जाएँगे। हम सब सकुशल हैं। मुझे छात्रवृत्ति के जो २० रुपये मिलेंगे, उसके सम्बन्ध में मुझे बहुत पहले से आशा थी। एक प्रकार से वह निश्चित ही था। इसका कारण यह है कि मैंने छात्र-वृत्ति की कामना की थी। मैंने कामना अपने लिए नहीं की थी, क्योंकि रुपयों से मुझे बहुत भय लगता है। मैंने प्रण किया था कि छात्रवृत्ति की एक पाई भी अपने काम में व्यय नहीं करूँगा और मुझे आशा है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहूँगा। मैं बहुत सोचने पर भी इस बात का निश्चय नहीं कर पाया कि मुझे परीक्षा में इतने अंक प्राप्त कैसे हो गए? परीक्षा से पूर्व एक प्रकार से पढ़ा ही नहीं था। और उससे बहुत पहले से ही पढ़ना बहुत कम कर दिया था। मैं भली भाँति जानता हूँ कि मैं उस उच्च स्थान के योग्य नहीं जो कि परीक्षा में मुझे मिला है। मेरा विश्वास था कि मुझे सातवाँ स्थान प्राप्त होगा। यदि बिना पढ़े ही मैं इस स्थान को पा गया तो उन लोगों की क्या दशा होगी जो पढ़ने-लिखने में उपासना की भाँति व्यस्त रहते हैं? मैं प्रथम रहूँ या अन्तिम स्थान पाऊँ अब मैं निश्चित रूप से यह समझ गया हूँ कि पढ़ना ही छात्रों का प्रमुख लक्ष्य नहीं है। विश्वविद्यालय की उपाधि मिलने पर छात्र अपने आपको धन्य समझते हैं, किन्तु विश्वविद्यालय की उपाधि पाकर भी यदि कोई वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता तो मैं ऐसी शिक्षा से घृणा करता हूँ। ऐसी शिक्षा प्राप्त करने से तो मूर्ख रहना अच्छा है! चरित्र-निर्माण ही छात्रों का प्रमुख कर्त्तव्य है। विश्वविद्यालय की शिक्षा चरित्र-निर्माण में सहायता करती है। किसका चरित्र कितना उच्च है यह उसके कार्यों से ही ज्ञात होता है। कार्य ही शिक्षा और ज्ञान के परिचायक हैं।

पुस्तकीय ज्ञान से मुझे हार्दिक घृणा है। मैं चाहता हूँ चरित्र, ज्ञान, कार्य। इस प्रकार के चरित्र में सब कुछ समाहित है—भगवत्-भक्ति, देश-प्रेम, भगवान के लिए तीव्र व्याकुलता, सभी कुछ। पुस्तकीय ज्ञान तो अत्यधिक तुच्छ, साधारण वस्तु है। परन्तु बहुत से लोग तो पुस्तकीय ज्ञान पाकर ही उसके अहंकार में डूबे रहते हैं। कटक में पढ़ने में कई सुविधाएँ हैं, और कलकत्ता में पढ़ने में भी कई हैं। मैं अभी तक यह निर्णय नहीं कर पाया कि कहाँ पढ़ा जाए। कलकत्ता जाना ठीक रहेगा। सम्भवत: प्रेसिडेन्सी में पढ़ना नहीं हो सकेगा। इसका कारण यह है कि जो विषय मैं पढ़ना चाहता हूँ उनके लिए वहाँ सुविधा नहीं है। मेरा प्रणाम। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१०*

कटक
२२ अगस्त १९१२

परमपूजनीय मँझले दादा,

यह जानते हुए भी कि जाने की तैयारी में आप व्यस्त होंगे और समय का अभाव होगा, मैं यह पत्र आपको लिख रहा हूँ। कदाचित् आपके भारत में रहते यह आपके नाम अन्तिम पत्र है।

एक ही अनुरोध का स्मरण कराने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ। वह यह है कि विलायत के मार्ग में आप जो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ देखें उनका विवरण भेजकर मुझे शिक्षा और आनन्द प्रदान करें। विदेशी परिवेश में आपको जो अनुभूतियाँ हों उनका बोध मुझे भी करावें।

आपका जहाज बम्बई बन्दरगाह को पीछे छोड़कर तट से दूर, बहुत दूर, चला जाएगा। जब वन की रेखा, यहाँ तक कि स्वदेश की अन्तिम नील-तट-रेखा तक भी एक मेघ-खण्ड के सदृश दिगन्त में विलीन हो जायेगी, तब उत्तुंग तरंगराशियों को चीरता हुआ जलयान चला जायेगा, ऊपर नीलाकाश और तल में असीम जलराशि। प्रकृति के इन विभिन्न रूपों को देखकर आपके हृदय में कैसे-कैसे विभिन्न भाव उदित होंगे? इस दृश्य को देखकर क्या आपको अर्विंग की वह पंक्तियाँ याद आयेंगी: "ऐसा

* श्री शरत्चन्द्र वसु को लिखे गये चार पत्र।

विचार आता है कि मानों मैं विश्व का एक-एक अध्याय समाप्त करके, अगले अध्याय के प्रारम्भ के पूर्व, ध्यानमग्न हूँ" या उसी लेखक की निम्न पंक्तियाँ आप दोहरायेंगे : "इससे हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि हम निश्चित जीवन-यात्रा से पृथक् होकर संशय से भरी हुई दुनिया की ओर बहे जा रहे हैं।"

मेरा अनुमान है कि बहुत दिन तक आपको भूमि के दर्शन नहीं होंगे। जब आप अदन के निकट पहुँचेंगे तभी धरती दिखाई देगी। मुझे ज्ञात नहीं कि आपको उस समय कैसा लगेगा और कितने दिन पश्चात् आप भूमि देख पाएँगे। समुद्र में आपको सूर्यास्त का निर्मल दृश्य दिखाई देगा। समुद्र में सूर्यास्त का दृश्य वास्तव में रमणीय होता है। जिन्होंने कभी समुद्री यात्रा नहीं की वे निश्चित ही इस दृश्य को देखने से वंचित रह गए हैं। आपसे समुद्र पर सूर्यास्त का शब्दचित्र पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। वह दृश्य कितना सुन्दर होता होगा! अस्त होते हुए सूर्य की लालिमा से असीम समुद्र रंजित हो उठेगा। लहरों के साथ सूर्य-रश्मियाँ क्रीडा करेंगी। पश्चिम दिशा में अस्त होता हुआ सूर्य रक्तवर्ण हो जायेगा। इसके पश्चात् ही आकाश में सन्ध्या का आगमन होगा। देखते ही देखते चारों ओर अंधकार छा जाएगा। इधर-उधर केवल कुछ नक्षत्रों की झिलमिलाहट दिखाई देगी। यह दृश्य कितना मनोरम होगा! निरंतर एक पक्ष (१५ दिन) की समुद्र-यात्रा के पश्चात् आप विदेशियों, श्वेत त्वचा वाले विदेशियों के मध्य पहुँचेंगे। इन विदेशियों के नेत्र नीलवर्ण के होंगे। उनका विचित्र पहनावा क्या आपको अपने देश के परिवेश से अनोखा नहीं लगेगा? अवश्य लगेगा। किन्तु दो-एक दिन में ही वह विचित्रता जाती रहेगी।

मैं पागल की भाँति जो इच्छा हुई वही लिख गया हूँ। आशा है आप मेरी इच्छा पूर्ण करेंगे। यदि अनुज के नाते अनुचित न हो तो अन्तःकरण से मेरी मनोकामना है कि आपकी यात्रा शुभ हो।

हम सकुशल हैं। मेरा प्रेम और प्रणाम स्वीकार कीजिये। इति।

आपका स्नेही
सुभाष

११

कटक

१७–६–१२

परमपूजनीय मँझले दादा,

आशा है मेरा लंदन के पते पर भेजा हुआ पत्र आपको मिल गया होगा। जब आप कलकत्ता में थे तब मैंने एक पत्र आपको लिखा था परन्तु ज्ञात नहीं हुआ कि आपको वह मिला या नहीं। माता ठकुरानी के नाम आपका अदन से लिखा हुआ पत्र मैंने पढ़ा। उससे पता लगा कि आपको मेरा पत्र मिला गया था और उसे पाकर आपको प्रसन्नता हुई। मैंने तो लिखते समय एक बार भी यह नहीं सोचा था कि मेरे पत्र से आपको आनन्द मिलेगा, किन्तु आपकी प्रसन्नता की बात जानकर मुझे संतोष हुआ। मैंने जो कुछ लिखा था वह सच्चे हृदय से लिखा था, इसीलिए वह आपको आनन्द दे सका। वास्तव में हृदय का निवेदन ही हृदय को स्पर्श करता है। जो भाव हृदय से निकलते हैं वह अत्यन्त सरल स्वाभाविक भाषा में व्यक्त होने पर भी, उन भावों की अपेक्षा जो हृदय से नहीं निकलते और अलंकृत भाषा में व्यक्त होते हैं, अधिक प्रभावशाली और सार्थक होते हैं। कह नहीं सकता कि मैंने वह सब क्यों लिखा था। अनायास ही आवेग से अभिभूत होकर लेखनी उठाई थी। यह स्मरण नहीं कि क्या लिखा था और क्यों लिखा था। उस समय जो भाव हृदय में सर्वप्रथम जागे उन्हीं को मैंने व्यक्त किया है। उस समय निशा की गहन नीरवता व्याप्त थी; सम्भवत: अर्द्धरात्रि के वातावरण के प्रभाव से ही वे सब विचित्र अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हों। मेरा विश्वास है कि उन सभी व्यक्तियों को जो विदा-वेला में उपस्थित रहे होंगे इस प्रकार की अनुभूति हुई होगी।

विदा-वेला का आवेग—मैं तो कठिनाई से ही उस क्षण को सहन कर पाता। जाने दीजिये, जो बीत गया उसकी याद दिलाकर आपको उद्विग्न करना नहीं चाहता।

वहाँ आप बंगाल के ऋषि तथा कवि रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में सम्भवत: बहुत कुछ पढ़ेंगे, सुनेंगे। उनके सम्बन्ध में पढ़कर और विदेशियों ने उनको जो सम्मान दिया उसे देखकर हम गौरव अनुभव करते हैं। इससे हम कुछ दिन के लिए बंगाल और भारत के भविष्य के सम्बन्ध में आशान्वित भी होते हैं। यह सोचकर मुझे हार्दिक वेदना होती है कि बंगाल ने अपनी एक अलौकिक प्रतिभा को दीर्घकाल तक अंधकार में

रखा। उसी प्रतिभा को विदेशियों ने, अन्य भाषा-भाषियों ने, जिनकी अनुभूतियाँ और चिन्तन-पद्धति हमसे भिन्न हैं, उबार लिया और विश्व-कवियों की पंक्ति में उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया। हमारे हृदय में श्रद्धा तनिक भी नहीं है। कैसे विचित्र लोग हैं हम? इसी कारण कवि ने लिखा था—ज्ञान की महिमा अपनी महानता से है, परन्तु तो भी वह श्रद्धायुक्त होना चाहिये। मेरा विश्वास है कि मैं रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं का अर्थ समझ सकूँगा। आप अपने पुराने मित्रों से मिले? क्या आपके पुराने मित्रों में कोई वीरेन वसु भी हैं?

अंग्रेज लोग अपनी मातृभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन अत्यधिक करते हैं, क्या यह सत्य है? भारत और विलायत के प्राकृतिक सौन्दर्य की अब आप वास्तविक तुलना कर सकेंगे। हम सकुशल हैं। आशा है आप भी कुशलपूर्वक होंगे। सादर प्रणाम स्वीकार करें।

परम स्नेही
सुभाष

१२

कटक
११–१०–१२
रात्रि ८ बजे

परमपूजनीय सँझले दादा,

आज शाम को ही आपका लम्बा पत्र मिला। मेरी बचपन की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए आपने जो कष्ट उठाना स्वीकार किया है उसके लिए कैसे आभार प्रकट करूँ?

भाषा भावों को पूर्णतः व्यक्त करने में असमर्थ है। भाषा के माध्यम से भाव अधूरे ही व्यक्त हो पाते हैं, आधे तो अव्यक्त ही रहते हैं। आपके वर्णन से मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ है उसे व्यक्त करने में मैं असमर्थ हूँ। आपके द्वारा वर्णित दृश्य मेरी आँखों के आगे साकार हो उठे हैं। यही नहीं अपितु प्रेरणा के अभाव में पहले देखे हुए जो दृश्य विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गए थे वे भी स्मरण हो आए हैं। दार्जिलिंग के अपूर्व दृश्य नेत्रों के आगे चलचित्र की भाँति घूम गए हैं। पुरी का नीला सागर, जहाँ अथाह जलराशियुक्त नील तरंगें रेतीले तट पर टकराकर बिखर जाती हैं, उनके ऊपर तैरता श्वेत फेन ऐसा प्रतीत होता है मानों बाहें फैलाए

आकाश का आलिंगन करने को आतुर है। महानदी के तट पर स्थित विशाल, उत्तुंग श्रणियों से युक्त पर्वत मेरे नेत्रों के समक्ष साकार हो उठा है। भुवनेश्वर में उदयगिरि, खंडागिरि की जो ऐतिहासिक गुफाएँ मैंने देखी थीं वे भी स्मरण हो आई हैं। मेरे नेत्रों के समक्ष "हैप्पी स्नोडन" का चित्र है। कैसा अपूर्व है यह चित्र! आकाश में चंचल रंगों की छटा दिखाई दे रही है। हिमानी पर्वत-शिखरों का प्रतिबिम्ब तलहटी के सरोवर की निर्मल जलराशि में पड़ रहा है। पर्वत-शिखर पर रक्त-वर्ण प्रकाश फैला है। यह सब हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित हेमकूट पर्वत की छवि है अथवा ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रीक देवताओं के निवास-स्थान ओलिम्पस पर्वत की शोभा है। न जाने क्यों यह सब व्यर्थ की बातें लिखकर आपका समय नष्ट कर रहा हूँ। ऐसा लगता है कि कोई मेरे हृदय में बैठा मुझे प्रेरित कर रहा है, और मैं विवश होकर लिख रहा हूँ। सम्भव है आप इससे ऊब उठे हों। दो सप्ताह पूर्व आपने माता ठकुरानी के पास चुने हुए श्रेष्ठ चित्रों का संकलन भेजा था। वास्तव में आपका चुनाव अनुपम है। ऐसे अपूर्व दृश्यों का चित्र-संकलन आपकी दुर्लभ रुचि और श्रेष्ठ ज्ञान का परिचायक है। जब माता ठकुरानी ने मुझसे उनमें सर्वश्रेष्ठ चित्र छाँटने को कहा तो मैंने कह दिया कि सभी श्रेष्ठ और अपूर्व हैं। आपके भेजे हुए चित्र इतने सुन्दर हैं कि उनके समक्ष स्वर्ग का सौन्दर्य भी हेय है। वास्तविक न होने पर भी वे मनोहर हैं। उनमें से एक चित्र मैंने अपने पास रख लिया है। आपके वर्णन इतने सजीव हैं कि यदि मैं चित्रकला का ज्ञाता होता तो उनके चित्र बनाने का प्रयास अवश्य करता। परन्तु खेद है कि मैं चित्र-कला नहीं जानता। इसलिए कल्पना में ही चित्र-निर्माण कर संतोष करना पड़ेगा।

सहज में ही मैं आपकी उस मन:स्थिति की कल्पना कर सकता हूँ जो कि बम्बई से स्वेज जाते समय हुई होगी। नील जलधि और नीले आकाश को देखते-देखते आप ऊब उठे होंगे और चेतन प्रकृति के दर्शन के लिए व्याकुल हो गए होंगे। मुझे तो एक माह से अधिक कलकत्ते में रहना रुचिकर नहीं। विहँसती प्रकृति के दर्शन को मेरा हृदय व्याकुल हो उठता है। मेरी धारणा है कि हृदय की तपन बुझाने और प्रेरणा प्राप्त करने के लिए यदि प्रकृति न होती तो मनुष्य कभी भी सुखी नहीं हो सकता था। प्रकृति के संसर्ग और शिक्षा के अभाव में जीवन मरुथल के निर्वासन की भाँति रसहीन हो जाता है। आपने कष्ट उठाकर मेरे लिए

जो वर्णन भेजे हैं उनके लिए धन्यवाद के अतिरिक्त मैं दे भी क्या सकता हूँ? आशा है कि इस बीच में आपको लंदन के पते पर लिखा हुआ पत्र मिल गया होगा।

१६-१०-१२

आज डाक जाने का दिन है। यह पत्र आज ही डाक में डाला जाना चाहिए। पिछले सोमवार को आपका एक पत्र मिला था। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप कैप्टिन तथा श्रीमती वेयबैन्ड के पड़ौस ही में रह रहे हैं, और उन लोगों से प्राय: आपका साक्षात्कार हो जाता है। इन दिनों लंदन में सूर्योदय और सूर्यास्त किस समय होता है? क्या इन दिनों संसद का अधिवेशन चल रहा है? क्या लंदन में आपने कोहरा देखा? ठंड पड़नी तो आरम्भ हो गई होगी?

पुराने मित्र सुधीर राम से आपकी मुलाकात हुई, यह जानकर प्रसन्नता हुई। मार्सिलीज़ से लंदन जाते समय पेरिस गए थे क्या?

पहिले भी मैंने कहा था कि व्यस्त रहने पर मुझे पृथक् पत्र लिखने का कष्ट मत कीजियेगा। वही बात फिर दुहरा रहा हूँ। आपको बहुत से पत्र लिखने पढ़ते हैं। कितना समय आपके पास बचता होगा?

आपके लम्बे पत्र को मँझले जीजा जी के पास भेज रहा हूँ और उनके पढ़ लेने के उपरांत तीसरे जीजा जी के पास भेजने को मैंने लिख दिया है। वे पढ़कर पत्र मेरे पास वापिस भेज देंगे।

स्कूल बन्द है। ११ नवम्बर तक हमारी लम्बी छुट्टियाँ हैं। नादु, रांगा, मामा बाबू और मैं छुट्टियों में यहीं रहेंगे। और सब लोग कलकत्ते में हैं। दादा भी यहाँ नहीं आये। वहाँ पिताजी और माताजी सकुशल हैं। मेरा अनुमान है कि यह पत्र कलकत्ता के बड़ डाकखाने में माता ठकुरानी के पत्र के साथ पहुँचेगा। देर हो गई किन्तु हम सबका विजया-दशमी का अभिनन्दन स्वीकार करें। इति।

आपका परमस्नेही
सुभाष

१३

कटक
८–१–१३

परमपूजनीय मँझले दादा,

एक वर्ष और बीत गया। बारह महीनों में की हुई उन्नति और अवनति का लेखा-जोखा हमें ईश्वर के समक्ष देना पड़ेगा।

गत वर्ष के कार्यों के सम्बन्ध में विचार करने पर जीवन-लक्ष्य के विषय में प्रश्न किए बिना नहीं रह सकता। कवि टेनिसन दृढ़ आशावादी हैं। उनका विश्वास है कि संसार शनैः शनैः प्रगति कर रहा है। क्या हमारा देश प्रगति कर रहा है? मेरे विचार में तो नहीं कर रहा। सम्भव है पाप के मार्ग से शान्ति और प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा हो! विचार करने पर तो चारों ओर अन्धकार, गहन अन्धकार ही दिखाई देता है। केवल निष्ठावान् देशभक्तों को प्रेरित करने के लिए कहीं-कहीं क्षीण आलोक-किरण दृष्टिगोचर होती है। वह आशा-ज्योति कभी तो जगमगा उठती है और कभी अन्धकार में लुप्त हो जाती है। भारत के भविष्य का इतिहास, अन्धकार से आवृत और आँधी से विक्षुब्ध आकाश के समान है। सम्पूर्ण यूरोप, विशेषतः इंगलैंड, प्रगति की ओर अग्रसर हो सकता है। यूरोप के आकाश पर धर्म-नक्षत्र उदित हुआ है, परन्तु भारत के आकाश में वह अस्ताचल को जाने वाला है। भारतवर्ष की कैसी दशा थी, और अब कैसी हो गई है? कितना शोचनीय परिवर्तन है। कहाँ हैं वे परमज्ञानी, महर्षि, दार्शनिक! कहाँ हैं हमारे वे पूर्वज जिन्होंने ज्ञान की सीमा को स्पर्श कर लिया था? कहाँ हैं उनके दैदीप्यमान व्यक्तित्व? कहाँ है उनका स्वाभिमान, ब्रह्मचर्य, उनकी भगवद्-अनुभूति जिसका हम बखान किया करते हैं। सब कुछ समाप्त हो गया! अब वेदमन्त्रों का उच्चारण नहीं होता। पावन गंगातट पर अब साम गान नहीं गूँजते, परन्तु हमें अब भी आशा है कि हमारे हृदय से अंधकार को दूर करने और अनन्त ज्योति-शिखा प्रज्वलित करने के लिए आशादूत अवतरित हो गए हैं। वह हैं—विवेकानन्द। वह दिव्य कान्ति, मर्मवेधी-दृष्टि-युक्त संन्यासी के वेश में विश्व में हिन्दू धर्म का प्रचार करने के लिए ही आये हैं। अब भारत का भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है। भगवान करुणामय हैं। पाप, अधर्म और मलिनता से हटाकर वह हमें लक्ष्य की ओर ले जा रहे हैं। ईश्वर ही मूल शक्ति है। उसी के चारों ओर यह सृष्टि परिक्रमा कर रही है। हमें प्रगति करनी ही होगी। पथ

जो वर्णन भेजे हैं उनके लिए धन्यवाद के अतिरिक्त मैं दे भी क्या सकता हूँ ? आशा है कि इस बीच में आपको लंदन के पते पर लिखा हुआ पत्र मिल गया होगा।

१६–१०–१२

आज डाक जाने का दिन है। यह पत्र आज ही डाक में डाला जाना चाहिए। पिछले सोमवार को आपका एक पत्र मिला था। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप कैप्टिन तथा श्रीमती वेयबैन्ड के पड़ौस ही में रह रहे हैं, और उन लोगों से प्राय: आपका साक्षात्कार हो जाता है। इन दिनों लंदन में सूर्योदय और सूर्यास्त किस समय होता है ? क्या इन दिनों संसद का अधिवेशन चल रहा है ? क्या लंदन में आपने कोहरा देखा ? ठंड पड़नी तो आरम्भ हो गई होगी ?

पुराने मित्र सुधीर राम से आपकी मुलाकात हुई, यह जानकर प्रसन्नता हुई। मार्सिलीज़ से लंदन जाते समय पेरिस गए थे क्या ?

पहिले भी मैंने कहा था कि व्यस्त रहने पर मुझे पृथक् पत्र लिखने का कष्ट मत कीजियेगा। वही बात फिर दुहरा रहा हूँ। आपको बहुत से पत्र लिखने पढ़ते हैं। कितना समय आपके पास बचता होगा ?

आपके लम्बे पत्र को मँझले जीजा जी के पास भेज रहा हूँ और उनके पढ़ लेने के उपरांत तीसरे जीजा जी के पास भेजने को मैंने लिख दिया है। वे पढ़कर पत्र मेरे पास वापिस भेज देंगे।

स्कूल बन्द है। ११ नवम्बर तक हमारी लम्बी छुट्टियाँ हैं। नादु, रांगा, मामा बाबू और मैं छुट्टियों में यहीं रहेंगे। और सब लोग कलकत्ते में हैं। दादा भी यहाँ नहीं आये। वहाँ पिताजी और माताजी सकुशल हैं। मेरा अनुमान है कि यह पत्र कलकत्ता के बड़ डाकखाने में माता ठकुरानी के पत्र के साथ पहुँचेगा। देर हो गई किन्तु हम सबका विजया-दशमी का अभिनन्दन स्वीकार करें। इति।

आपका परमस्नेही
सुभाष

१३

कटक

८–१–१३

परमपूजनीय मँझले दादा,

एक वर्ष और बीत गया। बारह महीनों में की हुई उन्नति और अवनति का लेखा-जोखा हमें ईश्वर के समक्ष देना पड़ेगा।

गत वर्ष के कार्यों के सम्बन्ध में विचार करने पर जीवन-लक्ष्य के विषय में प्रश्न किए बिना नहीं रह सकता। कवि टेनिसन दृढ़ आशावादी हैं। उनका विश्वास है कि संसार शनैः शनैः प्रगति कर रहा है। क्या हमारा देश प्रगति कर रहा है? मेरे विचार में तो नहीं कर रहा। सम्भव है पाप के मार्ग से शान्ति और प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा हो! विचार करने पर तो चारों ओर अन्धकार, गहन अन्धकार ही दिखाई देता है। केवल निष्ठावान् देशभक्तों को प्रेरित करने के लिए कहीं-कहीं क्षीण आलोक-किरण दृष्टिगोचर होती है। वह आशा-ज्योति कभी तो जगमगा उठती है और कभी अन्धकार में लुप्त हो जाती है। भारत के भविष्य का इतिहास, अन्धकार से आवृत और आँधी से विक्षुब्ध आकाश के समान है। सम्पूर्ण यूरोप, विशेषतः इंगलैंड, प्रगति की ओर अग्रसर हो सकता है। यूरोप के आकाश पर धर्म-नक्षत्र उदित हुआ है, परन्तु भारत के आकाश में वह अस्ताचल को जाने वाला है। भारतवर्ष की कैसी दशा थी, और अब कैसी हो गई है? कितना शोचनीय परिवर्तन है। कहाँ हैं वे परमज्ञानी, महर्षि, दार्शनिक! कहाँ हैं हमारे वे पूर्वज जिन्होंने ज्ञान की सीमा को स्पर्श कर लिया था? कहाँ हैं उनके दैदीप्यमान व्यक्तित्व? कहाँ है उनका स्वाभिमान, ब्रह्मचर्य, उनकी भगवद्-अनुभूति जिसका हम बखान किया करते हैं। सब कुछ समाप्त हो गया! अब वेदमन्त्रों का उच्चारण नहीं होता। पावन गंगातट पर अब साम गान नहीं गूँजते, परन्तु हमें अब भी आशा है कि हमारे हृदय से अंधकार को दूर करने और अनन्त ज्योति-शिखा प्रज्वलित करने के लिए आशादूत अवतरित हो गए हैं। वह हैं—विवेकानन्द। वह दिव्य कान्ति, मर्मवेधी-दृष्टि-युक्त संन्यासी के वेश में विश्व में हिन्दू धर्म का प्रचार करने के लिए ही आये हैं। अब भारत का भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है। भगवान करुणामय हैं। पाप, अधर्म और मलिनता से हटाकर वह हमें लक्ष्य की ओर ले जा रहे हैं। ईश्वर ही मूल शक्ति है। उसी के चारों ओर यह सृष्टि परिक्रमा कर रही है। हमें प्रगति करनी ही होगी। पथ

कंटकाकीर्ण हो सकता है; यात्रा कष्टप्रद हो सकती है; किन्तु हमें चलना ही होगा। हो सकता है वह दिन देर में आये, परन्तु आएगा अवश्य। यही मेरी एक मात्र आशा है। क्या हम अनुभव नहीं करते कि ईश्वर हमें उसी प्रकार अपनी ओर आकर्षित करता है जैसे चुम्बक लोहे को। मेरा विचार है कि हम अनुभव अवश्य करते हैं। उसने हमारे चारों ओर प्रकृति के अनेक रूप प्रस्तुत किए हैं जिनसे हमें उसकी सत्ता का ज्ञान हो जाए। अनन्त आकाश और असंख्य नक्षत्र हमें उसका स्मरण दिलाते हैं। वह तो करुणामय है, हम ही अधम हैं, पापी हैं। मँझले दादा, पता नहीं कि क्यों यह सब लिख रहा हूँ ? मैंने देखा है कि कभी-कभी हृदय का भार उतारने के लिए अपनी भावनाओं को व्यक्त करना आवश्यक होता है। मेरे लिए यह क्षण ऐसा ही है।

पिछली डाक में आपका पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। कुछ दिन से अनुभव कर रहा था कि विदेश की दूरी ने हमारे मध्य भी एक दूरी पैदा कर दी है, परन्तु आपके पत्र ने उस भावना को पनपने नहीं दिया।

हम अपने भूतपूर्व उपाचार्य (वर्त्तमान आचार्य सम्बलपुर जिला स्कूल) बाबू सुरेशचन्द्र गुप्त की स्मृति-रक्षा करना चाहते हैं। हम लंदन से उनकी आवक्ष मूर्ति बनवाना चाहते हैं। यदि एक पौंड में बन जाये तो व्यय अधिक नहीं मानना चाहिए। उसको लंदन से यहाँ तक भेजने का व्यय क्या ३०–४० रुपये से अधिक होगा ?

इन दिनों हमारे टैस्ट चल रहे हैं। पर्चे अच्छे ही हो रहे हैं। हम सकुशल हैं। आशा है, आप भी कुशल-पूर्वक होंगे। मेरा प्रणाम। इति।

आपका परमस्नेही
सुभाष

१४*

बृहस्पतिवार
१९–६–१४

ट्राम से उतर, सीना ताने मैंने घर में प्रवेश किया। सत्येन मामा और एक परिचित सज्जन से बाहर के कमरे में भेंट हुई। मुझे देखकर

* श्री हेमन्त कुमार सरकार को लिखे गए ४१ पत्र।

वे आश्चर्यचकित रह गये। भीतर जाकर फूफा जी और दादा जी आदि से मिला। माता जी के पास समाचार गया। रास्ते में उनसे भी मिला। मैंने प्रणाम किया तो वह अपने आपको रोक न सकीं, और रो पड़ीं। केवल यही कहा, "मुझे मारने के लिए ही तेरा जन्म हुआ है। मैं इतने दिन तक रह नहीं सकती थी, गंगा में कूदकर प्राण दे देती, किन्तु लड़कियों के कारण ही ऐसा नहीं कर सकी।" मैं चुपचाप मन ही मन हँसता रहा। इसके उपरांत पिता जी से मिला। मैंने प्रणाम किया तो उन्होंने मुझे सीने से लगा लिया और अपने कमरे की ओर ले गए। रास्ते में ही वे रो पड़े, और कमरे में पहुँचने पर भी बहुत देर तक मुझे सीने से लगाकर रोते रहे।

आकाश में और पृथ्वीतल पर शुभ्र ज्योत्स्ना फैली हुई थी। मैं स्तब्ध था। परन्तु, माँ का सुकोमल आनन बरबस मेरे मानस-पटल पर—विस्मृति के समस्त प्रयासों को पराजित करता हुआ—छाया जा रहा था। पिताजी सो रहे थे और मैं उनके चरणों को धीरे-धीरे सहला रहा था। उस समय सम्भवतः उन्हें ईश्वर-प्राप्ति का सा सुख मिल रहा था। थोड़ी देर पश्चात् माँ और पिताजी दोनों ने ही मुझसे पूछा—कहाँ गए थे ? मैंने सब बातें उन्हें स्पष्ट रूप से बता दीं, रुपयों के सम्बन्ध में भी कहा। हरिपद् की बात उन्हें ज्ञात थी, तुम्हारी बात बताने से कोई लाभ नहीं था इसलिए नहीं बताईं। मामा जी ने पूछा था इसलिए उन्हें बता दीं। उन्हें बताने में कोई हानि नहीं। उन्होंने केवल यह कहा कि पत्र क्यों नहीं लिखा।

अनेक स्थानों से समाचार मंगवाए थे। माता जी व्यग्र थीं, परन्तु पिताजी ने धैर्य रखा। उन्होंने सोचा कि जो होना होगा वह होगा ही। एक पुलिस कर्मचारी, जो कि अपने सम्बन्धी थे, उन्होंने मना कर दिया था। इसलिए पुलिस को समाचार नहीं दिया गया। माता जी तो पागल-सी हो गई थीं, और कहने लगी थीं कि मैं घर छोड़कर चली जाऊँगी। विवश होकर मामा (अमरीका से लौटे हुए) मेरी खोज में गए और वैद्यनाथ, देवघर के पर्वतों में मेरी खोज करके उन्होंने यहाँ जो पत्र लिखा था, वह आज ही आया है। उस पत्र का सारांश मैंने सुना है। मामा जी बालानन्द जी के पास गए थे। वहाँ एक ब्रह्मचारी ने बताया था कि यदि अनधिकरी होकर संन्यास लिया होगा तो धक्के खाकर लौटेगा और यदि वह संन्यास के योग्य है तो लौटाने का सब प्रयास व्यर्थ है।

बेलूर में भी खोज की गई। रामकृष्ण मिशन, हरिद्वार को तार दिया गया; परन्तु उत्तर नहीं मिला। वह हावड़ा के एक ज्योतिषी के

पास भी गए थे। उन्होंने कहा, 'वह १६-२० के भीतर लौटेगा, अच्छा है, अकेला नहीं है; साथ में दो व्यक्ति हैं। उत्तर-पश्चिम दिशा के 'ब' से प्रारम्भ होने वाले स्थान में है।' सम्भव है कि उस समय मैं बनारस में होऊँ। ज्योतिषी ने यह भी कहा था कि 'देश के प्रभाव से वह संन्यासी नहीं संसारी होगा।' इन सबमें रणेन मामा मेरे पक्ष में हैं। सत्येन कहता है, बहुत निष्ठुर हो। उसके जीवन का आदर्श सम्भवतः यही है; इसके अतिरिक्त किसी ने कुछ नहीं कहा।

एक सज्जन से परिचय हुआ। उनकी बात उचित प्रतीत होती है। कहते हैं—साहस के साथ इस सम्बन्ध में वार्तालाप करो और तब संन्यास लो। तुम्हारे मार्ग में कौन बाधक हो सकता है?

मध्याह्न में पिता जी से फिर बहुत सी बातें हुईं। अनेक विषयों पर बातें हुईं—संन्यासियों के दर्शन के सम्बन्ध में, और भ्रमण के सम्बन्ध में। मेरी बातें किसी को भी नहीं रुचीं। मेरे आदर्श के सम्बन्ध में भी बातें हुईं। सम्पूर्ण वाद-विवाद में जो कुछ वह कहना चाहते थे उसका सार यह है—(१) संसार में रहते हुए धर्म का पालन किया जा सकता है या नहीं? (२) क्या त्याग के लिए साधना की आवश्यकता है? (३) क्या कर्त्तव्य को त्याग देना उचित है? मैंने उत्तर दिया—(१) सब रोगियों को एक ही औषधि रोगमुक्त नहीं कर सकती, क्योंकि सब लोगों की शक्ति एक सी नहीं होती और न ही सब एक रोग के रोगी होते हैं। (२) त्याग करना व्यक्ति के संस्कार पर अधिक निर्भर है—सबके लिए कष्ट-प्रद साधना आवश्यक नहीं है। सब व्यक्तियों की सहन-शक्ति समान नहीं होती। आध्यात्मिक प्रेरणा मिलने पर सांसारिक कर्त्तव्य और सम्बन्ध पीछे छूट जाते हैं। वास्तविक ज्ञान प्राप्त होते ही कर्म क्षीण हो जाते हैं। उन्होंने पूछा—क्या "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" का अद्वैत ज्ञान केवल एक सिद्धान्त है या सत्य है?

उत्तर—जब तक मुख से उच्चारण किया जाए तब तक तो यह सिद्धान्त है, परन्तु जब अनुभूति की जाती है तब वास्तविक तथ्य है। जिन्होंने यह बात कही उन्होंने इसकी अनुभूति की थी और कहा कि हम अद्वैत की अनुभूति कर सकते हैं।

प्रश्न—अद्वैत ज्ञान की अनुभूति किसने की थी और इसका प्रमाण क्या है?

उत्तर—ऋषियों ने अनुभूति की। और प्रमाण में मैंने यह श्लोक उद्धृत किया—'वेदाहमिति'।
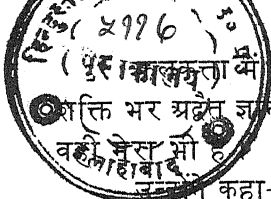
कलकत्ता में महर्षि देवेन्द्र, केशवचन्द्र और परमहंसदेव थे, जिन्होंने शक्ति भर अद्वैत ज्ञान की अनुभूति की थी। जो आदर्श विवेकानन्द का है वही मेरा भी है।

उन्होंने कहा—ठीक है, जब तुम्हारी अलौकिक पुकार होगी तब हम देखेंगे।

मैंने इतने दिन तक पिता जी का सक्रिय विरोध नहीं किया, परन्तु धैर्य के साथ मैंने विजय पा ही ली। अब बलपूर्वक वह मुझसे कुछ भी नहीं कह सकते और सम्भवतः अगली बार चले जाने पर मुझे लौटा लाने का निश्चय और प्रयास नहीं करेंगे। जैसा भी है, अब यह तो अनुभव होता ही है कि यहाँ आना ठीक ही रहा। माता जी आवेश में हैं। कहती हैं कि यदि वह फिर जाएगा तो मैं भी उसके साथ ही जाऊँगी और घर में नहीं रहूँगी। ऐसा प्रतीत होता है कि उनको समझाने का प्रयास सफल नहीं होगा। पिताजी को तो इसमें औचित्य दिखाई देता है। मैं तो सकुशल हूँ। तुम कैसे हो ? लिखना।

तुम्हारे वेणी बाबू के सम्बन्ध में सभी का अच्छा विचार है। सभी उनका आदर करते हैं। वेणी बाबू ने मेरे सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं कहा और मेरी कष्टप्रद साधना के लिए तुमको बिल्कुल उत्तरदायी नहीं ठहराया। इस बात से उनकी सहृदयता का परिचय मिलता है।

१५

२१–६–१४

मैं बहुत निर्मम हो गया हूँ। नहीं जानता क्यों इतना पाषाण-हृदय हो गया हूँ कि माँ और पिताजी के प्रति स्नेह-बन्धन अनुभव नहीं करता। वे रोते रहे और मैं हँसता रहा। यह सत्य है कि मेरे हृदय में प्रेम की भावना तनिक भी नहीं है। क्या करूँ ? यदि हृदय में प्रेम और ममता होती तो धन्य हो जाता। आज पिताजी से बातें हुईं, उन्होंने तीन उपदेश दिए और कहा कि सिरदर्द ठीक होने पर अन्य विषयों के सम्बन्ध में बात करेंगे। उनकी यही चेष्टा है कि मैं संसारी व्यक्ति बन जाऊँ। मैंने कुछ कहा नहीं,—धैर्य के साथ मौन धारण करने का अर्थ ही आधीनता को अस्वीकार करना है। यदि आवश्यकता पड़ी तो उनसे स्पष्ट ही कह

दूँगा। माताजी को तो समझा नहीं सकता क्योंकि वे कुपित हैं और समझती हैं कि मैं उन्हें कुछ समझता ही नहीं।

सामान्य मनुष्य मातृ-स्नेह को स्वार्थरहित और प्रगाढ़ समझकर कहते हैं कि मातृ-स्नेह समुद्र जैसा अगाध है। वेणी बाबू ने सम्भवतः कभी प्रेम का परिचय नहीं पाया इसीलिए वह ऐसा कहते हैं। मैंने भी सुना है परन्तु मैं मातृ-स्नेह को इतना अधिक महत्व नहीं देता। क्या वास्तव में मातृ-स्नेह पूर्णतः स्वार्थरहित होता है? जब तक माँ किसी भी अपरिचित बालक को अपने पुत्र के समान प्यार नहीं करती तब तक क्या उसका पुत्र-स्नेह स्वार्थरहित कहला सकता है? माँ स्वयं पुत्र का लालन-पालन करती है इसीलिए उसका ममत्व उस पर होता है।

मैंने इस जीवन में प्रेम का अनुभव किया है। जिस स्नेह-उदधि, प्रेम-सागर में मैं संतरण कर रहा हूँ उसके समक्ष मातृ-स्नेह का बन्धन कैसे मानूँ! इस स्वार्थपूर्ण संसार में मनुष्य केवल मातृ-स्नेह को ही स्वार्थरहित समझता है। इसी कारण वह उसकी बहुत प्रशंसा करता है। अपने द्वारा पोषित वस्तु पर तो सभी की ममता होती है। इसमें कौन-सी बात है? परन्तु जो किसी अपरिचित पथिक को हृदय-सिंहासन पर बैठा सकता है, विशालता तो उसके हृदय की है! उसी का प्रेम महान् है। जानकर भी लोग इस तथ्य को नहीं जानते। पता नहीं मैंने भी वास्तविकता को समझा अथवा नहीं।

१६

३८/२ एलगिन रोड
कलकत्ता
१८—७—१४
शनिवार, मध्याह्न ११ बजे

अभी-अभी तुम्हारा पत्र मिला है। कल के पत्र में सम्भवतः मैं लिखना भूल गया था कि माँ, पिताजी आदि सोमवार को कलकत्ता आ पहुँचेंगे। तुम बाद में आना। क्योंकि मेरी समझ में नहीं आता कि मकान भरा होने पर मिलने का अवसर भी मिल सकेगा या नहीं। रविवार को जिस समय इच्छा हो आ जाना। भगवान की अनुभूति सदैव रहती है।

शरीर से साथ न होने पर भी अदृश्य रूप से वह मेरे साथ है। उसकी मंगलकामना मुझे सदैव कल्याण-पथ पर ले जाती है।

सेवा तो आत्मा और अदृश्य प्रेम से की जाती है। जब तुम किसी कार्य में व्यस्त रहते हो तो तुम्हें देखकर प्रसन्नता होती है। क्या तुमने परसों रात को खाना नहीं खाया? तुम अधिक कष्ट मत उठाना। तुम्हारे मन में सेवा करने की प्रेरणा ईश्वरेच्छा से ही जाग्रत होगी। ईश्वर के प्रति प्रेम और सेवा उसी की कृपा से आती है। अधिक क्या लिखूँ? तुम अभिप्राय समझते हो। मैं ठीक हूँ। कल न्यूनतम तापक्रम ९७, रात्रि को उच्चतम १००.२ था। आज न्यूनतम ९६.४ है। तुम चिन्ता मत करना। शेष बातें मिलने पर होंगी। यदि रविवार को तुम प्रातःकाल से सन्ध्या या रात्रि तक रहो तो अच्छा है। किसका साहस है कि कोई कुछ कर सके। तुम अकेले आओ तो सम्भवतः अच्छा रहेगा।

१७

कलकत्ता
शुक्रवार रात्रि
३–१०–१४

सबसे बड़ा दान हृदय-दान है। इसे देने के पश्चात् कुछ भी शेष नहीं रहता। जिसको हृदय दिया जाता है क्या वह कम सौभाग्यशाली है? उससे अधिक सुखी कौन होगा? परन्तु जो प्रतिदान में हृदय नहीं दे सकता उसके समान भी और कौन है? परिणाम? हृदय का दान और प्रतिदान करने वाले दोनों ही व्यक्तियों को शान्ति मिलती है।

*　　　　*　　　　*

दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर का एक चित्र स्मरण आता है। कमलासन पर विराजनेवाली माँ काली, खड्ग हाथ में लिए, शिव के आसन पर खड़ी हैं। उनके आगे एक बालक है। बालक स्वभाववश अस्पष्ट वाणी में रोता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो कह रहा हो—माँ, यह लो अपना भला-बुरा। यह लो अपना पाप, और यह लो अपना पुण्य। विकराल मुखवाली, भंयकर दाँतों वाली माँ काली थोड़े में संतुष्ट नहीं होती इसलिए सबका भक्षण करना चाहती है, पुण्य भी चाहती है और

पाप भी चाहती है। बालक को सब कुछ देना पड़ेगा। नहीं देगा तो माँ को शान्ति न होगी। माँ छोड़ेगी भी नहीं।

*   *   *

बहुत कष्ट हो रहा है। माँ को सर्वस्व देना पड़ेगा। माँ किसी भी प्रकार संतुष्ट नहीं होती। इसीलिए बालक रोता है, और रोते हुए कहता है—यह लो, यह लो। अश्रुधार बन्द हो गई, कपोल और वक्ष सूख गए, हृदय की तपन शान्त हो गई। जहाँ बहुत-से काँटों की चुभन जैसी पीड़ा होती थी अब वहाँ उसका चिह्न तक शेष नहीं है। अमृत से हृदय परिपूर्ण हो गया। बालक उठकर खड़ा हो गया, अब उसके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं बचा। उसने सर्वस्व दे दिया माँ को। वही बालक रामकृष्ण है।

१८

२७–३–१५

पिताजी के साथ अप्रैल के अन्त में जाऊँगा। बर्दवान के महाराज का भवन निश्चित हुआ है। विलासिता और बन्धन में कष्ट अनुभव होने पर भी रहूँगा। वहाँ रहकर विस्तृत अध्ययन करूँगा। अपने अध्ययन को चार भागों में विभाजित करूँगा :—

१. मनुष्य और उसके इतिहास का अध्ययन।

२. विज्ञान के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का सामान्य अध्ययन।

३. सत्य की समस्या, मानव प्रगति का उद्देश्य, अर्थात् दर्शन-शास्त्र।

४. विश्व की महानता।

इसके अतिरिक्त एक बार विद्यालय की पुस्तकों को भी समाप्त करने का विचार है। अब मेरा पढ़ने को बहुत जी चाहता है। परिस्थितियाँ विपरीत हैं। जैसे ही परीक्षा समाप्त हुई, मेरे मन में पढ़ने का उत्साह जाग उठा। मन होता है कि सब पुस्तकों को एकदम पढ़ डालूँ। बी० ए० में दर्शन ऑनर्स लूँगा, और प्रथम रहूँगा ऐसा सोचता हूँ; अभी निश्चित नहीं कर सकता कि और क्या लूँगा, संस्कृत या अर्थ-शास्त्र। अर्थ-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किए बिना आधुनिक विश्व में जीवित

नहीं रहा जा सकता। संस्कृत तो अपने आप भी पढ़ी जा सकती है। अब प्रश्न यह है कि जो अर्थ-शास्त्र विद्यालय में पढ़ाया जाता है वह वास्तविक जीवन में कितना काम आता है? कुछ भी हो, मैं शीघ्र ही निर्णय कर लूँगा। तुम्हारे स्वस्थ होने पर जर्मनी जाऊँगा और भविष्य का कार्यक्रम निश्चित करूँगा। मैं किस प्रकार क्रम से आगे बढ़ूँ यह निश्चित करने के लिए एक बार हम दोनों का मिलना आवश्यक है।

यदि स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हुआ तो मैं कलकत्ता में नहीं पढ़ूँगा। वैसे कलकत्ता में पढ़ने से एक लाभ यह है कि वहाँ अच्छे प्राध्यापक हैं।

कटक में पढ़ने से यह लाभ है कि वहाँ की जलवायु अच्छी है। वहाँ कार्य करने की सुविधा है, क्योंकि जब तक पिताजी हैं तब तक जनता पर उनका बहुत प्रभाव है। कार्य हो तो कटक या हजारीबाग में पढ़ सकता हूँ। विवरण-पत्र के लिए हजारीबाग पत्र लिख दिया है। यदि सुविधा हो तो करस्योंग से लौटने पर कलकत्ता में पढ़ाई समाप्त कर सकता हूँ। ऐसा हुआ तो मेरा ऋण तुम्हें चुकाना पड़ेगा और आरम्भ में कुछ सहायता भी करनी पड़ेगी, क्योंकि वहाँ ट्यूशन करने की सुविधा नहीं होगी, और दत्त गुप्ता को भी कुछ देना पड़ेगा।

१६

कटक
शनिवार
३–४–१५

मेरे दोनों पत्र तुम्हें मिल गए होंगे। परसों और कल एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना हुई। अभी सब कुछ स्पष्ट लिखना तो असम्भव है। फिर गिरीश और सुरेश दादा ने अनुरोध भी किया है कि तुमसे कुछ दिन पश्चात् ही कहूँ। एक माह के भीतर ही कलकत्ता आऊँगा, वहाँ मिलना होगा, तभी सब बातें स्पष्ट रूप से बताऊँगा। एक बहुत ही सुन्दर परिवर्तन हो गया है। गिरीश दादा कुछ-कुछ मध्यस्थता के पक्ष में हो गए हैं। सुरेश दादा ने तो कहा—मैं इस सम्बन्ध को अवांछनीय तो समझता था परन्तु इतना गया बीता नहीं। उन्होंने कहा कि पवित्रता के सम्बन्ध में

तो तनिक भी संदेह मुझे नहीं हुआ किन्तु तुम्हारे पृथकत्व, और सबके द्वारा शिकायत किए जाने के कारण मैं बहुत दुखी हुआ था।

उनके हृदय में मेरे व्यवहार से प्रतिदिन जो वेदना हुई थी उसे देखकर मैंने कह दिया कि मैं जो कुछ कह सकता था वह मैंने कह दिया। गिरीश दादा का यह विश्वास है कि मैं उनके चरित्र पर मुग्ध हूँ। उन्होंने कहा—कुछ भी हो अब सब ठीक है और इसका अन्त भी ठीक ही होगा। अन्त भला सो भला। एक भूल हमसे हो गई (भविष्य में इस विषय में हमें सतर्क रहना चाहिए)। हम लोगों ने यह अनुभव नहीं किया कि हमारी एक-एक बात का क्या मूल्य है, और भाइयों के ऊपर उसका कितना प्रभाव पड़ेगा। सुरेश दादा ने कहा कि तुम्हें जनता में व्यावहारिक होकर बर्तना होगा जिससे किसी को यह ज्ञात न हो पाए कि कौन किसे कितना प्यार करता है।

२०

१८—७—१५

क्या मनुष्य को पूर्ण सत्य के दर्शन हो सकते हैं? प्रत्येक मनुष्य एक सम्बन्धित सत्य को अपने जीवन में पूर्ण सत्य मान कर, उसी के मापदण्ड से भले-बुरे का निर्णय करता है और सुख-दुःख को तोलता है; परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के वैयक्तिक दर्शन में दखल देने और उसके विरुद्ध कुछ कहने का किसी को अधिकार नहीं है। वस्तुतः जीवन-दर्शन का आधार वास्तविक और सत्य होना चाहिये। स्पेन्सर का सिद्धान्त है, 'मनुष्य तब तक सोचने और कर्म करने को स्वतन्त्र है जब तक कि वह अन्य किसी व्यक्ति की स्वाधीनता को भी वैसा ही अक्षुण्ण रखता है, जैसा कि अपनी को।'

* * *

आगे मानसिक तैयारी की आवश्यकता है। फिर चिंतन तथा कर्म साथ-साथ चलेंगे। अन्त में कर्म-स्रोत में अपने आप को बहा देना है। पहले तो दो-एक आवश्यक कार्य निबटा लें अन्यथा कार्य करने की क्षमता ही समाप्त हो जावेगी।

जीवन के दो पक्ष हैं—बौद्धिक एवं चारित्रिक। देश के लिये केवल

अपना उत्तम चरित्र होना ही पर्याप्त नहीं है। एक बौद्धिक आदर्श भी सामने रखना होगा।

*　　*　　*

प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में आंशिक ज्ञान प्राप्त करने से तो चलता नहीं। कार्य-सिद्धि तो तभी हो सकती है जबकि कुछ ही वस्तुओं के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जावे और वह सब एक व्यवस्थित क्रम में हो। यह कार्य केवल उस ज्ञान को एकत्रित करने मात्र से ही सफल नहीं बनाया जा सकता, बल्कि इसके लिये तो सृजनात्मक प्रतिभा की आवश्यकता है।

मैं अपने बौद्धिक जीवन का एक आभास तुम्हें दूँ। इस क्षण मन में कुछ विचार आ रहे हैं—वे बहुत ही भव्य हैं। कह नहीं सकता कि अपने जीवन में उन्हें कार्यरूप में परिणत कर सकूँगा। विचार यदि श्रेष्ठ हों, और मैं उन्हें कार्यरूप में परिणत न भी कर पाऊँ, तो भविष्य में और कोई उन्हें कार्यरूप में परिणत कर सकता है।

२१

२७–७–१५

मेरे पास इस समय कोई विशेष कार्य नहीं है। केवल अकाल-पीड़ित सहायता कोष का कार्य है। अन्य सभी कार्य इस समय बन्द हैं।

२२

२९–७–१५

मैं इन दिनों कोई विशेष कार्य नहीं करता। पूअर-फन्ड-डिबेटिंग-मैगज़ीन (पत्रिका) अभी आरम्भ नहीं हुई है। एक सप्ताह से पढ़ा भी नहीं पा रहा हूँ। अध्ययन में विघ्न पड़ रहा है। बाद में सहायक बनूँगा। आवश्यकता होने पर पढ़ाऊँगा भी। मैं कालेज की अकाल-पीड़ित सहायता कोष समिति का मंत्री बना दिया गया हूँ। इसलिए उस कार्य

में भी पर्याप्त भाग-दौड़ करनी पड़ेगी। यहाँ कोई भी नहीं है। मेरी तो यह इच्छा है कि सहायता के लिए स्वयं जाऊँ। इससे व्यावहारिक अनुभव भी होगा। फिर अकाल-पीड़ा का अनुभव प्रत्येक समय होता भी तो नहीं। भावना को देखते हुए तो मेरी जाने की तीव्र इच्छा है, परन्तु परिस्थिति देखते हुए नहीं जाना चाहता। इसके अनेक कारण हैं—

१. श्रम करूँगा। इससे स्वास्थ्य बिगड़ सकता है।

२. कालेज की सहायता समिति का कार्य भी पड़ा रह जायेगा।

३. यदि गया तो मेरे विचार में कालेज संघ की ओर से जाना उचित रहेगा, क्योंकि मैं उससे सम्बद्ध हूँ। मैंने कह दिया है कि विचार करने के बाद उत्तर दूँगा। अधिक सम्भावना तो इस बात की है कि जाने से मना कर दूँ। तुम्हारा क्या विचार है? दुनिया की असलियत जानने की प्रबल इच्छा है। परन्तु यदि न गया तो यह आकांक्षा अधूरी ही रह जायेगी।

२३

३८/२, एलगिन रोड
कलकत्ता
३१–८–१५

मैंने जो प्रबन्ध किया है उससे अप्रत्यक्ष रूप से मेरा भाव प्रकट हो जाता है। मैंने इसे सर्वोत्कृष्ट अभिन्नता के रूप में व्यक्त किया है। मैं यह भली भाँति समझता हूँ कि मेरा जीवन एक निश्चित लक्ष्य के लिए है। उस लक्ष्य-सिद्धि के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। जनता का जीवन के प्रति विशिष्ट मापदण्ड मुझे प्रभावित नहीं करता। मैं जानता हूँ लोग मुझे भला-बुरा कहेंगे; किन्तु यह तो संसार की रीति है। परन्तु मेरी उत्कृष्ट आत्मचेतना प्रेरित करती है और मैं उससे प्रभावित नहीं होता। यदि संसार की प्रतिक्रिया से मेरे भाव परिवर्तित हो जावें, मैं दुखी और निराश हो जाऊँ, तो यही समझूँगा कि मेरी यह दुर्बलता है। जिस प्रकार आकाश की ओर देखने वाले को मार्ग में पड़ने वाले पर्वत, कुएँ आदि का ध्यान नहीं रहता, उसी प्रकार जिसका ध्यान एकमात्र आदर्श की ओर है उसकी दृष्टि बाधाओं पर नहीं पड़ती। मुझे अपनी आत्मचेतना को गर्व के

साथ एक ही विचार के गाढ़े रंग में रंगना पड़ेगा।

अब मैं समझता हूँ कि उन्नति करने के लिये तीन बातें आवश्यक हैं—

(१) मुझे इतिहास या यों कहें कि विश्व की पुरातन सभ्यताओं का अनुशीलन करके उन्हें आत्मसात् करना है।

(२) मुझे स्वयं अपने आपका एवं अपने चारों ओर के वातावरण का अध्ययन करना है। साथ-साथ भारत और विदेशों का भी, जिसके लिये विदेश-यात्रा आवश्यक है।

(३) मुझे भविष्य का नेता बनना ही पड़ेगा। उन्नति के साधनों की खोज करनी ही होगी। सभ्यता की प्रवृत्ति तथा उसके आधार पर भविष्य में मानव जाति के लक्ष्य एवं उसकी उन्नति को निर्धारित करना होगा। इस कार्य में मेरा जीवन-दर्शन ही एकमात्र सहायक होगा।

(४) इस उद्देश्य की प्राप्ति किसी राष्ट्र के द्वारा ही हो सकती है—तो फिर यह भारत राष्ट्र के द्वारा ही क्यों न की जावे?

कितना उत्तम विचार है। उद्देश्य की महानता हमारी पुरानी कड़वाहटों को धो देगी और भविष्य का सूर्य अपने पूर्ण वैभव के साथ उदय होगा।

तुम कैसे हो? तुमने पत्र क्यों नहीं लिखा? शीघ्र ही कुशल-पत्र लिखना। तुमसे बहुत सी बातें करनी हैं, कब मिलोगे?

२४

१६–६–१५

बहुत से लोग कहते हैं कि जब दर्शन-शास्त्र एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा पाता तो उसे पढ़ने से क्या लाभ? एक दार्शनिक एक बात कहता है और दूसरा आकर उसका खण्डन कर देता है और उससे भी श्रेष्ठ मत का प्रतिपादन करता है। ऐसा है तुम्हारा दर्शन-शास्त्र।

जब हीगल के दर्शन का प्रचार हुआ था तब सब लोगों ने यह सोचा था कि यह अन्तिम सिद्धान्त है और अब कोई चिन्तक इससे श्रेष्ठ बात नहीं कह सकेगा। परन्तु संसार मूर्ख है। दर्शन-शास्त्र हीगल के सिद्धान्त को पीछे छोड़कर अपनी गति से आगे बढ़ा। जैसे फूल के खिलने

पर सुगन्ध उसमें स्वयमेव ग्रा जाती है, उसके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता, उसी प्रकार जीवन में स्वाभाविक रूप से मनुष्य को व्याकुल कर देने वाले प्रश्न उठते रहते हैं ग्रौर दर्शन नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता रहता है।

दर्शन के ग्रध्ययन से क्या लाभ ? लाभ यही है कि हमें व्याकुल करने वाले प्रश्न ग्रौर संदेह का समाधान हो जाता है। साथ ही इस बात का भी ज्ञान होता है कि ग्रब तक मनुष्य किस प्रकार चिन्तन करता रहा है। ग्रपनी चिन्तन-पद्धति का प्रचलन भी हम दर्शन द्वारा कर सकते हैं।

पागल बने बिना कोई महान् नहीं हो सकता, परन्तु इसका यह ग्रर्थ नहीं कि प्रत्येक पागल व्यक्ति महान् होता है। सभी पागल प्रतिभाशाली, महान् नहीं होते। महान् बनने के लिए ग्रौर भी कुछ करना पड़ेगा। ग्रावेग की स्थिति में भी प्रकृतिस्थ रहना पड़ेगा ग्रौर ग्रात्मसंयम भी रखना होगा। केवल तभी जीवन को एक सृजनात्मक ग्राधार पर विकसित किया जा सकता है। भाव ग्रथवा ग्रावेग पर नियंत्रण रखकर ही स्थिर चिन्तन किया जा सकता है।

ग्रावेग के ग्रभाव में चिन्तन नहीं हो सकता। परन्तु केवल ग्रावेग से ही चिन्तन का फल नहीं मिलता। बहुत से व्यक्ति ग्रावेगयुक्त तो हैं परन्तु चिन्तन करना नहीं चाहते। बहुत से चिन्तन करना जानते ही नहीं।

* * *

यदि एक बार चिन्तन पद्धति समझ में ग्रा गई तो फिर भय का कोई कारण नहीं रह जाता। किसी निर्णय पर पहुँचना कठिन ग्रवश्य होता है परन्तु ग्रसम्भव नहीं। इसीलिए मेरा विश्वास है कि मेरी चिन्ता, जिज्ञासा, संदेह व्यर्थ नहीं जायेंगे। उनसे मेरा कुछ लाभ ही होगा। इस बार तुमसे भी मैं यही ग्राशा करता हूँ। मेरा विश्वास है कि यदि कोई ग्रादर्श है तो उसे साकार किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि ग्रादर्श पूर्ण है तो मनुष्य भी पूर्ण बन सकता है, ग्रन्यथा ऐसा कोई ग्रादर्श ही नहीं है जिसे पूर्ण कहा जा सके। ग्रादर्श कुछ भी क्यों न हो, उसे साकार किया ही जा सकता है। इसी नियम पर मेरा जीवन-दर्शन ग्राधारित है।

ग्रधीरता से काम नहीं चलेगा। जिस प्रश्न के समाधान के लिए कितने ही लोगों ने प्राणोत्सर्ग कर दिया वह क्या एक दिन में पूर्ण हो

सकता है ?

*   *   *

जीवन का मौलिक सिद्धान्त निश्चित न करूँ तो फिर जीवन में किसका अनुसरण करूँगा ? क्या तुम कान्ट के दर्शन से परिचित हो ? पहले एक तथ्य को लेकर उसका विश्लेषण किया जाता है; फिर उसके प्रत्येक अंश की आलोचनात्मक समीक्षा करके सत्य तक पहुँच जाते हैं। उसके पश्चात् उसका विश्लेषण करके और उसके प्रत्येक अंश की आलोचनात्मक समीक्षा करके महत्तम सत्य को प्राप्त करते हैं। जीवन भी ऐसा ही है। अपने वर्त्तमान जीवन-कर्मों में सामंजस्य लाने के लिए किसी भी प्रकार एक जीवन-दर्शन निश्चित करो और उसी के अनुसार जीवन में आचरण करो। साथ ही साथ अपने मन में उसे हर क्षण नष्ट करके निर्मित करते रहो। जीवन निरंतर सृजन और विनाश के मध्य विकसित होता है। एक का निर्माण करो, फिर उसे नष्ट करो, फिर बनाओ, इस क्रम से चलते रहो। मनुष्य सत्य से महत्तर सत्य की ओर अग्रसर होता है। शून्य से कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। हमें असंगतियों के मध्य में होकर जाना पड़ेगा। वे जीवन को पूर्णता देती हैं। आवेग की तीव्रता के कारण बोध, आलोचना-शक्ति, विश्लेषण और समन्वय की शक्ति क्षीण हो जाती है। यह सब बातें शान्ति के क्षणों में ही सम्भव हैं।

२०–९–१५

शारीरिक स्थिति को देखकर तो विश्वास नहीं होता कि जीवन में मैं कुछ कर भी सकूँगा। विवेकानन्द की सभी बातें सत्य हैं: 'लोहे के समान सुदृढ़ नाडियाँ और श्रेष्ठ प्रतिभाशाली मस्तिष्क तुम्हारे पास है तो सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे चरणों पर झुकेगा।' स्थान-परिवर्तन से यदि पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ कर सकूँगा तो समझूँगा जीवित रहने से कुछ लाभ है।

२५

२६–९–१५

मैंने लॉज को पढ़ लिया है। जेस्युइट आन्दोलन के सम्बन्ध में विचार पूछना मैंने उचित नहीं समझा। उस सम्प्रदाय के भले और बुरे

दोनों ही पक्ष हैं। जो भला है वह तो अब भी भला ही कहलाता है परन्तु जिसे बुरा कहा जाता है वह भी वस्तुतः बुरा नहीं था। तत्कालीन समय के संदर्भ में वह अच्छा ही था। यह बात अवश्य है कि वह वर्त्तमान के लिए अच्छा नहीं होगा।

इसका कारण यह है कि स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में मनुष्य के विचार परिवर्तित हो गए हैं। प्राचीन भारत में लोग स्वतन्त्रता का अर्थ आध्यात्मिक स्वतन्त्रता, संन्यास, काम-लोभ आदि से मुक्ति मानते थे। परन्तु इस स्वतन्त्रता में राजनैतिक और सामाजिक बन्धनों से मुक्ति भी निहित थी। यदि संन्यासी चाहता तो अनायास ही राजनैतिक और सामाजिक नियमों का उल्लंघन कर सकता था। शासन-प्रणाली में परिवर्तन भी कर सकता था।

पाश्चात्य जगत् राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं के समाधान में व्यस्त है। वहाँ व्यक्तिवाद का विकास अधिक हो गया है। समाज और शासन का क्या सम्बन्ध होना चाहिए इस विषय पर अब वे अधिक नहीं सोचते। इस संघर्ष का कारण समान अधिकारों का समझौता ही रहा है। हम देखते हैं कि समाज तथा राज्य में प्रत्येक मनुष्य के कुछ अधिकार हैं। उन अधिकारों की सीमा में रहने और उनका दुरुपयोग न करने तक की स्थिति में मनुष्य उनके उपयोग में स्वतन्त्र है। सब लोग इस तथ्य को समझते हैं कि वह भी मनुष्य है, उसके भी अधिकार हैं, उसका भी व्यक्तित्व है।

हमने प्रजातन्त्रात्मक युग में जन्म लिया है। प्रजातन्त्रात्मक प्रभाव हमारे दिलों और दिमागों में है। यहाँ जोर-जबर्दस्ती से कुछ भी कर पाना सम्भव नहीं।

परन्तु व्यक्तिवाद तो संगठन के लिए हानिप्रद है! इसका क्या समाधान हो सकता है? फिर समता! इसका उपाय एक ही है—भय मत करो। शान्तिकाल में जर्मनी में सब अपने-अपने अधिकारों का उपभोग कर रहे हैं, उनका निर्णय कर रहे हैं। (वहाँ के विश्व-विद्यालयों में राजकीय हस्तक्षेप नहीं है।) परन्तु अवसर आने पर सब लोग अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को त्यागकर शस्त्र धारण कर लेते हैं। सामान्यतः काम चलाने के लिए सब एकमत हैं। सामूहिक रूप से सबका निश्चय एक है।

यदि उपयुक्त व्यक्ति न हों तो निरंकुश शासन के कारण काम की बहुत हानि होती है। सदन में नैसर्गिक नियमों के अनुसार उसी की बातों

का मूल्य अधिक होगा जो ज्ञानी, समझदार और बहुदर्शी है। लोग उसी की बात अधिक मानेंगे। उसके उपदेश को ग्रहण करेंगे। उसकी बातों का महत्त्व उनके वास्तविक मूल्य के कारण है, इसलिए नहीं कि वे व्यक्ति-विशेष के द्वारा कही जाती हैं।

संगठन के लिए ऐसा मापदण्ड होने के कारण जेस्युइट सम्प्रदाय की आलोचना की जा सकती है। अब इन बातों को देखें :—

१. परिष्कृत ईसाई धर्म—पाश्चात्य सभ्यता और पाश्चात्य प्रभाव।

२. प्रतिक्रियात्मक सुधार—राष्ट्रीय और आध्यात्मिक जीवन में भारतीय पुनरुत्थान।

३. लायला (इग्नैटियस लायला, जेस्युइट सम्प्रदाय का संस्थापक)—ने एक सक्रिय मनुष्य के रूप में जीवन आरम्भ किया तथा धार्मिक व्यक्ति के रूप में समाप्त किया।

४. पेरिस— !

५. चर्च—धार्मिकता और देश।

६. पवित्रता—निर्धनता और कर्त्तव्यपरायणता। (पूर्ण)

७. सेनापति—पूर्ण अधिकार-युक्त।

८. जीवन के सामान्य कर्त्तव्यों से मुक्ति।

* * *

प्रत्येक सम्प्रदाय तथा समवाय के इतिहास प्रायः समान होते हैं।

इनका उद्देश्य सामान्यतः बुरा नहीं है। पवित्रता और निर्धनता में समानता आवश्यक है। कर्त्तव्यपरायणता का उल्लेख पहले कर ही चुका हूँ। इस युग में जैसा बनना चाहते हो वैसा कर्म करो, और वैसे भी यह उचित है। इतने त्याग के कारण वर्त्तमान और अतीत में बहुत समता है। इसकी ओर तुम्हारा ध्यान होना स्वाभाविक है।

मंगलवार

तुम्हारा पत्र कल मिला। स्वास्थ्य ठीक-ठाक है। कहाँ जाऊँगा यह अभी निश्चित नहीं है। सम्भवतः करस्योंग जाऊँ। कारण यह है कि पिता जी ने वहाँ जाने का निश्चय किया है। पिताजी पहले से स्वस्थ हैं। पूर्ण स्वस्थ होने में तो अभी समय लगेगा। काम करना छोड़ दें तो अच्छा रहे, परन्तु कठिनाई यह है कि फिर गृहस्थ नहीं चलेगा।

अधिक क्या लिखूँ।

२६

२६–९–१५

कभी-कभी निराशा की छाया। फिर उस घोर अंधकार में आशा-किरण विद्युत की भाँति कौंध जाती है। कोई भी शक्ति निराशा में छिपी आशा को मिटा नहीं सकती। ऐसे ही प्रकाश से जीवन को आलोकित करता रहता हूँ। इसी से जीवन की मधुरता बनी रहती है। शायद ऐसा करने में ही जीवन की सार्थकता है।

२७

३–१०–१५
शनिवार

एक ओर ब्रह्मानन्द की बात स्मरण हो आती है तो दूसरी ओर पाश्चात्य आदर्श—कर्मण्यता ही जीवन है। एक ओर मौन और शान्ति-पूर्ण जीवन, एक आत्मदर्शी योगी जिसने जगत् की असारता का अनुभव किया है; दूसरी ओर पश्चिम वालों की विशाल प्रयोगशालायें, उनका विज्ञान, दर्शन, उनके द्वारा आविष्कृत और उद्‌भावित अद्‌भुत ज्ञानराशि। तब इच्छा होती है कि उनके देश में जाकर दस-बारह वर्ष तक ज्ञानार्जन में व्यस्त रहूँ। जिसने कुछ उपलब्ध किया है, वही तो कुछ दे सकता है? तब विचार करता हूँ कि एक बार उनके कर्मक्षेत्र में कूद पड़ूँ। फिर देखूँ कि उस धारा में न बहकर धारा को ही मोड़ सकता हूँ या नहीं।

२८

१९–१०–१५

भावुक महाशय,

तुम्हारा पत्र कल मिला। मेरा वजन अब एक मन साढ़े इक्कीस सेर हो गया है। मैं इस बात से आश्चर्यचकित रह गया हूँ, क्योंकि कटक में वजन एक मन साढ़े सोलह सेर था। कुछ भी हो

यहाँ एक महीना और रहूँ तो आशा है पाँच सेर वजन बढ़ जाएगा। जब से यहाँ हूँ हर तरह से ठीक-ठाक हूँ, इसीलिए मुझे पहाड़ बहुत प्रिय लगते हैं। वर्षा के कारण कभी-कभी रंग में भंग हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई कठिनाई नहीं है। तेज धूप और कोहरा, यह यहाँ का सुन्दर मौसम है। पढ़ाई-लिखाई कुछ भी नहीं हो सकी। देखता हूँ इसके बाद भी पढ़ना होता है या नहीं।

* * *

देखो पर्वत बड़ा विचित्र है। मेरा विचार है कि वीर्यवान् आर्यों के निवास-स्थल हैं—यह पर्वत। मैदानी वातावरण में रहकर मनुष्य ह्रासोन्मुख होता है। वहाँ रहना अनुचित है, यह कहने से कोई लाभ नहीं और न इससे कोई सहायता ही मिलेगी। कलकत्ता में दो काठा धरती पर पचास हजार रुपये लगाकर मकान बनाने की अपेक्षा पहाड़ पर एक मकान बनवाना अधिक अच्छा है। मांस खाकर पहाड़ पर चढ़ने से आर्यों का रक्त जिस प्रकार धमनियों में प्रवाहित होता है वैसे किसी अन्य प्रकार से नहीं होता।

हमारी धमनियों में अब वह पवित्र रक्त नहीं रहा। दीर्घकालीन पराधीनता और कितना भ्रष्टाचार............

पहाड़ पर घूमते समय यह बात बहुत बार मन में आती है कि हममें रजोगुण का प्राबल्य होना चाहिए, ऐसा कि कूदकर पर्वत लाँघ जाएँ। आर्य लोग ऐसा करते थे तभी तो उनके कण्ठ से वेद-मंत्र निकलते थे। अब हिन्दुओं में वह पुरातन स्फूर्ति नहीं रही। वह यौवन की ताज़गी नहीं, और वह मनुष्यता भी नहीं है। इन सबको वापस लाने के लिए हमें अपने देश से ही शुरुआत करनी चाहिए। उत्तुंग हिमालय—भारत में यदि कुछ अमूल्य और श्रेष्ठ है, कुछ गौरवपूर्ण है तो उस सबकी स्मृतियाँ हिमालय के साथ सम्बद्ध हैं। इसीलिये हिमालय-दर्शन से वह स्मृतियाँ जाग जाती हैं। इति।

तुम्हारा
तार्किक

२६

हॉक्स नैस्ट, करस्योंग
२१–१०–१५
बृहस्पतिवार

कल तुम्हारा पत्र मिला ।

*　　*　　*　　*

तुम पहाड़ पर गये थे, परन्तु भीरु मन में वास्तविकता अनुभव नहीं हुई । तुमको वहाँ एक बार और जाना चाहिये, परन्तु स्वस्थ मन से ।

पहाड़ पर शारीरिक श्रम बहुत बढ़ जाता है । हृदय को पावन करने वाली शान्ति मिलती है । पर्वतों के शान्ति-पूर्ण एकान्तवास में जीवन स्वप्नवत् लगता है । पर्वतों के निकट फैलता हुआ कुहासे का आवरण किसी सुन्दर कविता के स्वप्निल आवरण के समान प्रतीत होता है ।

कदाचित् पोप ने कहा है—

'जीऊँ तो इस जीवन में यों जीऊँ,
देखे मुझे न कोई, कोई मुझे न जाने ।
अश्रु न बरसें कभी किसी के
मेरे महानिधन पर ।
छुपा रहूँ मैं सदा जगत की इन नज़रों से ।
हो न कहीं कोई पाषाण
मेरा पता बताने ।'

इन बातों का वास्तविक अर्थ पहाड़ पर आने से ज्ञात होता है । फिर भी एक बात माननी पड़ेगी कि यहाँ जीवन में मस्ती रहती है, और निरंतर कार्य करने की जो चेष्टा कलकत्ता में रहती है वह यहाँ नहीं रहती । कलकत्ता में मेरा मन निरंतर किसी न किसी काम में लगा रहता है । वहाँ दिमाग़ काम करने के लिये विवश रहता है । जीवन में निरंतर गंभीरता, उलझनें और विविधता रहती है । परन्तु यहाँ पहाड़ पर आकर मनुष्य आरामतलबी में आ जाता है और सोचता है कि क्या जीवन श्रम के लिये ही है ?

तुम्हारा
तार्किक

३०

२६–१०–१५

अधिकांश अपनी ही बातें सोचता हूँ। यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है कि मनुष्य के जीवन को कितने प्रकार की परस्पर-विरोधी कामनाएँ और उद्देश्य प्रेरित करते हैं। इतनी वासनाएँ कहाँ से आती हैं और फिर थोड़े ही दिनों में कहाँ चली जाती हैं? यह वासनाएँ क्यों आती हैं और क्यों चली जाती हैं, कुछ भी समझ में नहीं आता। हम गर्व करते हैं कि मनुष्य बहुत तर्कशील प्राणी है, परन्तु मनुष्य तार्किक से अधिक अतार्किक है। मनुष्य पशुओं की भाँति तर्क या कारण की अपेक्षा प्रवृत्ति और भावनाओं से प्रेरित होकर कार्य करता है। जीवन में बहुत से कार्यों का अर्थ खोजने पर भी नहीं मिल पाता। यह कितनी विचित्र बात है!

* * *

आज बहुत दिन पहले के एक संदेह का समाधान हो गया। मन्दिर में बैठे-बैठे मन में समाधान आया।

तुम्हारा
पाश्चात्य दार्शनिक

३१

२९–१०–१५

जेस्युइट लोगों का इतिहास मैंने समझ लिया है। पत्र में लिखना उचित नहीं इसलिए मिलने पर सुनाऊँगा। उनकी प्रमुख शिकायत यह है कि वर्त्तमान इतिहास की पुस्तकों में उन्हें उचित स्थान नहीं मिला है, जिसका कारण यह है कि अधिकांश इतिहासकार और राजवंश, परिष्कृत ईसाई धर्म के अनुयायी हैं। दर्शन के इतिहास में भी उनको कोई स्थान नहीं दिया गया है। हम जो पुस्तक पढ़ते हैं—स्क्वैगलर का 'दर्शन का इतिहास'—उसमें मध्यकालीन दर्शन को एक प्रकार से छोड़ दिया गया है।

मेरी इच्छा थी कि मध्यकालीन बुद्धिमत्तापूर्ण दर्शन अर्थात् धर्म-तत्व को पढ़ा जाए, परन्तु जब सना कि वे यहाँ चार साल धर्म-तत्व पढ़ने के

पश्चात् डी० डी० उपाधि देते हैं, तब से उसके प्रति मेरा कोई आकर्षण नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त समयाभाव के कारण अब अवसर भी नहीं मिलेगा।

जेस्युइट लोग कहते हैं कि मध्यकाल में जो दर्शन था वह धर्म-तत्त्व ही था। और साहित्य तथा शिक्षा विकास में जेस्युइट लोग अग्रणी माने जाते थे। उनके हाथों में समस्त यूरोप की शिक्षा का दायित्व था। परन्तु उनके उपदेश और रूप बहुत ही रूढिवादी थे। विस्तार से बाद में बताऊँगा। परन्तु उनका संगठन बहुत सुन्दर है। वे संस्थापक की पूजा नहीं करते। कट्टरपन उनमें नहीं है। उनका कट्टरपन कम नहीं होता—सब सिद्धान्त स्पष्ट वर्णित हैं। जो नहीं मानता उसका स्थान संगठन में नहीं है।

तुम्हारा
विवेकी

३२

विश्राम कुटीर
करस्योंग
७–११–१५

कविवरेषु,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे दुःख हुआ क्योंकि तुमने मुझे 'दुष्ट' की संज्ञा दी है। तुम तो जानते हो कि मैं सदैव से ही एक सुशील लड़का रहा हूँ। मुझसे क्या दुष्टता सम्भव है ? तुम्हारे इस अभियोग का अर्थ क्या है ? जो सदैव से सुशील रहा है, वह लड़का क्या दुष्टता कर सकता है ? अतः वास्तविकता यह है कि मैं दुष्ट हो ही नहीं सकता, और मुझसे दुष्टता होना असम्भव है।

मैं न तो भावुक हूँ न ही कवि हूँ। अतः काव्यरस अथवा काव्यानन्द को क्या जानूँ ? तुम्हारी चार चरण वाली भक्तिपूर्ण कविता का रस लेने में असमर्थ होकर मैंने उसके बाह्य रूप को लेकर ही खींचतान की। जो स्थूल-दृष्टि और नीरस व्यक्ति हैं वे तो वाल्मीकि को वल्मीक, मधुसूदन को अट्टहास्य-पूर्ण भग्न-पदी कविता, रवीन्द्रनाथ को कलकतिया भाषा एवं अवीन्द्रनाथ को हाड़-कण्ठ ही समझते हैं। इसी कारण सामान्य पाठक तुम्हारी भाव-भरी कविता में केवल छन्द-दोष खोजता फिरेगा।

फिर भी यदि कोई भूल हुई है तो यह मेरी स्थूल बुद्धि, विचार-शक्ति, और प्रशंसा करने की इच्छा का दोष है। मेरे मानसिक दैन्य के लिए क्षमा करना।

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र यहाँ से चले गए हैं। उनसे कुछ बातें हुई थीं, जिन्हें बाद में बताऊँगा।

प्रबन्ध लिखने या अपने जीवन के सम्बन्ध में किसी के विचार पर ध्यान देने से काम नहीं चलेगा। जो कुछ स्वयं कहना चाहते हो वही कहते चले जाओ, उसमें दूसरे का हाथ क्यों हो?

मैंने जो निबन्ध दिया है, वह क्यों दिया, किस अभिप्राय से दिया है, यह यदि समझ में नहीं आया तो निबन्ध लिखना ही निरर्थक है। कुछ लोग वैसा समझें तो आश्चर्य क्या? परन्तु उससे क्या आता-जाता है? हो सकता है कि एक व्यक्ति का एक संगठन या समाज में बहुत ऊँचा स्थान है परन्तु दूसरे प्रकार के दल में उसका स्थान निम्नतर हो। मैं यह बात भली भाँति समझ रहा हूँ कि जिस व्यक्ति का जैसा विचार होगा वैसा ही उसका अनुमान भी होगा।

इसलिए किसी की प्रशंसा और निन्दा से किसी का क्या बनता-बिगड़ता है। हाँ, 'आत्मदीपो भव'—यह बात तो उचित ही है। इति।

बुद्धिहीन दीन
पाठक

२३

विश्राम कुटीर
करस्योंग
१७ नवम्बर, १९१५

बुद्धिदेव का उपदेश तो रुचिकर लगने की वस्तु है ही। मुझे उस उपदेश का अक्षरशः पालन करके प्रसन्नता होगी। तुम क्या करोगे?

* * *

जीवन की समस्या बहुत कुछ हल हो गई है। आज अचानक एक समाधान मिल गया। बुद्धिमत्तापूर्वक समस्या हल की परन्तु कई छोटी-छोटी बातें निश्चित नहीं कर पाया। मैं योजना को क्रमबद्ध विवरण तक

ले जाने के दृढ़ निश्चय को नहीं रख पाता। मैं क्रमबद्ध रूप से कार्य नहीं कर सकता। अभ्यास से इस स्वभाव को ठीक करना पड़ेगा।

* * *

बहुत सम्भव है कि कल दार्जिलिंग जाऊँ। वहाँ से सिंचल पर्वत जाने की इच्छा है। सिंचल पर्वत से निरभ्र आकाश में माउण्ट ऐवरेस्ट का शिखर दिखाई पड़ता है। मैं दो-तीन दिन में यहाँ वापस आऊँगा।

३४

क्रेग पर्वत
दार्जिलिंग
शनिवार
२०–११–१५

यहाँ परसों आया हूँ। एक तरह से यह स्थान करस्योंग से अच्छा है। यहाँ खाने-पीने का सामान उत्तम मिलता है और प्राकृतिक दृश्य भी सुन्दर हैं। इसके अतिरिक्त कई दर्शनीय स्थल हैं: वेधशाला पर्वत, वानस्पतिक उद्यान, अजायबघर, घुड़दौड़ का मैदान। गोरों की बैरकें और सिंचल पर्वत देखने गया था। सिंचल पर्वत से कंचनजंघा की चोटी तो दिखाई पड़ती ही है, इसके अतिरिक्त ऐवरेस्ट भी देखा। सिंचल लगभग ८४०० फुट ऊँचा है। वहाँ आज प्रातःकाल गया था। आज आकाश साफ था और ऐवरेस्ट दिखाई पड़ा।

यह नगर ऐसा लगता है जैसे कलकत्ता पर्वतों पर स्थानान्तरित हो गया हो। यही एक दोष इसमें है। परन्तु अब तो निर्जन है क्योंकि लोग नीचे उतर गए हैं। इसीलिए सुहावना लग रहा है।

बरामदे में से बहुत साफ़ हिम का आवरण दिखाई देता है। चारों दिशाओं में केवल पर्वत ही पर्वत हैं, और मेघों को वेधकर ऊपर उठी हुई हिमालय की चोटी कंचनजंघा है। शुभ्र-तुषार-किरीटी कंचनजंघा का यह स्थल कितना सुन्दर है। आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक शुभ्र तुषारमय गिरि श्रेणी ऐसी प्रतीत होती है मानो आकाश की तरंगें हों। बहुत दूर पर्वतों के मध्य बौद्ध लामाओं के मठ हैं। पूर्णरूपेण व्यक्तिगत जीवन का आनन्द उठाने के लिए परिव्राजकों का

जीवन अनुकरणीय है। मेरी तो इच्छा होती है कि पहाड़ों में होकर सिक्किम-नेपाल जाऊँ। तिब्बत जाने का मार्ग भी है। उस रास्ते से व्यापार भी होता है। परिव्राजक का जीवन बंगाली युवक को शोभा नहीं देता, उसके कन्धों पर कर्त्तव्य का गुरुतर भार है। करस्योंग में एक सज्जन ने मुझसे पूछा कि कैसा आनन्द ले रहे हो ? शिष्टता के कारण मुझे कहना पड़ा कि बहुत अच्छा, परन्तु मन में सोचा कि आनन्द लेने का समय बीत गया। याद है आठ वर्ष पहले जब पूजा की छुट्टियों में पहली बार दार्जिलिंग आया था, तब कैसा आनन्द लिया था ? हम घर में एक प्रकार से बन्द रहते थे, इसलिए बाहर जाने की बात सोचकर ही कितना आनन्द मिलता था ? उस समय अवश्य आनन्द लेने आए थे, परन्तु अब मुझमें कितना परिवर्तन हो गया है। उस समय बचपन की भावुकता में कहा था—जीवन का वह सबसे अधिक प्रसन्नता का दिन होगा जब स्वतन्त्र हो जाऊँगा और उसके बाद सबसे अधिक आनन्द तब आएगा जब दार्जिलिंग जाऊँगा। परन्तु आज मेरा जीवन आनन्द के लिए नहीं है। यह तो सत्य है कि मेरा जीवन निरानन्द नहीं है परन्तु मेरा जीवन केवल आनन्द के लिए भी नहीं है। मेरा जीवन एक उद्देश्य के लिए है। एक कर्त्तव्य के लिए है। वह शिष्ट महाशय, सम्भवतः, आनन्द लेने के लिए ही करस्योंग आए थे, परन्तु मैं जानता हूँ कि मेरा करस्योंग आना शारीरिक और मानसिक विकास के लिए था। इस पर्वत को छोड़कर जाने की इच्छा नहीं होती। बंगाल में अवश्य ही और बहुत-से आकर्षण हैं परन्तु यह पर्वतीय वन प्रदेश अतुलनीय है। वास्तव में हिमालय प्रदेश देवताओं का निवास स्थान—स्वर्ग है। हमारे एक अशिक्षित रसोइये ने करस्योंग की ओर उंगली उठाकर कहा था—"वह देखो स्वर्ग।" उसकी बात सुनकर सब हँस पड़े थे, परन्तु मैंने मन ही मन सोचा कि उसकी बातें सहज ही सत्य हैं।

जाने दो, इन बातों को। कहना भी चाहूँ तो समाप्त नहीं होंगी। मैं यहाँ एक धनी सम्बन्धी के पास ठहरा हूँ। वे बहुत सत्कार कर रहे हैं—अकल्पनीय।

मैं और मेरे एक मामाजी साथ ही यहाँ आए हैं। यहाँ मेरे पागलपन की बात सबको ज्ञात है और इस बार आने से और भी स्पष्ट हो गई है।

अपनी तो मैंने बहुत कहानी लिख दी। कल करस्योंग जाऊँगा—परसों कलकत्ता को चल दूँगा। परसों ११ बजे स्यालदा पहुँचूँगा, उसी

दिन ही कालेज जाने का प्रयास करूँगा।

तुमसे मिलने पर ही तुम्हारे सम्बन्ध में विचार करूँगा। शरीर की उपेक्षा करने का कारण खोजना पड़ेगा। तुम्हारा पत्र तो मिलता है परन्तु उसमें तुम्हारे सम्बन्ध में अधिक बातें नहीं होतीं। इस पर भी सोचना पड़ेगा।

३५

बुधवार रात्रि
८–१२–१५

आज विश्वविद्यालय में जगदीशचन्द्र के स्वागतार्थ एक सभा हुई। मैं बहुत निश्चय करके गया था कि जगदीशचन्द्र की दो-चार बातें सुनूँगा। उन्हें देखा और बोलते हुए सुना। न जाने क्यों बचपन से ही विवेकानन्द और जगदीशचन्द्र दोनों पर अटूट श्रद्धा है। उनके चित्र देखकर तथा उनके सम्बन्ध में दो-चार किम्वदन्तियाँ सुनकर उनकी ओर बहुत आकृष्ट हुआ था। निश्चित ही सभा का यह उद्देश्य था कि "स्वागत करके उन्हें सम्मानित किया जाए", परन्तु बंगाली छात्रों और बंगालियों ने उनको किस प्रकार अपमानित और लांछित किया इस बात को एक देश-भक्त के अतिरिक्त कोई नहीं समझ सकता। गान, वाद्य, कविता-पाठ आदि बहुत अच्छा था। परन्तु उस कार्य-क्रम में अंग्रेजी थियेटर के अभिनेता छात्र ही थे। तुम स्वयं समझ सकते हो कि कार्य-क्रम कैसा रहा होगा।

अन्त में "ईश्वर सम्राट् की रक्षा करे।" जब कार्य-क्रम में देखा कि अभिनय होगा तो एक बार सोचा कि उठकर चला आऊँ, परन्तु उसके बाद जगदीशचन्द्र का भाषण सुनने के प्रलोभन से अभिनय के समय नींद की सहायता लेने का प्रयास किया। जोर से हँसने वाले युवकों के मध्य अविचल साधु की भाँति आँखें बन्द किए बैठा रहा। किन्तु जब सभा विसर्जित होने लगी तो मेरा निश्चय अधूरा रह गया। निराश होकर लौटा, और सोचने लगा कि जब तक हम अपने महापुरुषों का उपयुक्त सम्मान करना नहीं सीखते, तब तक बंगालियों का और इस भारत का उद्धार सम्भव नहीं। अभिनन्दन के समय अभिनय—हाय भारत, हाय बंगाली, तुम्हारा कैसा पतन हुआ? यह वाक्य मेरे मर्म-स्थल को स्पर्श

कर गया। पूज्यपाद् धर्मपाल जी की कही हुई एक बात सभा में बैठे हुए बार-बार याद आई—जब तक भारतवासी इन्द्रिय-सुख के पीछे भागते रहेंगे तब तक भारत उन्नति नहीं कर सकता।

इसके बाद की बात ठीक-ठीक याद नहीं आती। मैंने देखा है कि इन्द्रिय-सुख की वासना बंगालियों की नस-नस में बसी है। और यही मूल कारण है बुद्धिमान बंगालियों की दुर्बलता का। इसका उपाय ही क्या है? मेरी धारणा है कि सुधार के लिए पवित्र सिद्धान्तों का पालन करने वाले युवकों के एक संगठन की आवश्यकता है। देशवासियों की आँखें खोल देनी चाहिएँ। वास्तव में रामकृष्ण ने चरित्र को जातीय जीवन का मूल माना है।

कह नहीं सकता जगदीशचन्द्र ने यह अभ्यर्थना किस रूप में ग्रहण की। देशभक्त जगदीशचन्द्र देश के लिए दोनों हाथ पसार कर दान लेंगे। उन्हें भले ही कोई दान में मिट्टी दे, अथवा पुष्प और चन्दन।

इस अभ्यर्थना में उनको पीड़ा अनुभव हुई है, इसमें कोई संदेह नहीं।

मैं सोमवार को परिषद् में पढ़ने के लिए एक निबन्ध लिख रहा हूँ, इसका विषय है—"वैदिक और पौराणिक काल में भारतीय सभ्यता।" यदि तुम इस सम्बन्ध में दो-एक पुस्तकें या उनके नाम भेज सको या सुझाव दे सको अथवा अपने नोट्स भेज सको, तो अच्छा होगा।

३६

रविवार
१६–१२–१५

मैं आजकल बहुत तार्किक और अड़ियल हो गया हूँ। भावुकता अन्तर्ध्यान हो गई है। आत्म-संयम की दृढ़ता आ गई है। दिन प्रतिदिन जीवन का आदर्श स्पष्ट रूप से समझ में आ रहा है, परन्तु कुछ कर सकने की शक्ति अभी नहीं जुटा पाया।

हम आवरण का त्याग किये बिना जगत् में दूसरों से घुल-मिल नहीं सकते। क्या मैं अपने समस्त आवरणों का त्याग कर पाया हूँ?

३७

शुक्रवार
२७–१२–१५

दिसम्बर मास फिर ग्रा गया है ग्रौर जनवरी भी ग्राने वाली है। ग्राज से दो वर्ष पूर्व इस समय हम शान्तिपुर में थे ग्रौर शान्तिपुर के उन संन्यासियों के दल की मधुर स्मृतियाँ—

भारत का सर्वस्व नष्ट हो गया है। परन्तु ऐसी भावना रखने से काम नहीं चलेगा। हताश होने में ही क्या रक्खा है। कवि ने तो कहा भी है—'तुम पुनः मनुष्य बनो।' हाँ हमें पुनः पुरुषत्व प्राप्त करना है। भारत के शस्य-श्यामल खेत, ग्रब श्मशान में विचरण करने वाले भूतों का डेरा बन गये हैं। चतुर्दिक् निराशा, मृत्यु, भोग, रोग ग्रौर शोक—कैसी ग्रापदा भारत के भाग्य में लिखी है! परन्तु यह निराशा, यह निःस्तब्धता, यह दुःख-दारिद्रय, यह भूखों का हाहाकार—विलासिता को मिटाकर हमें पुनः भारत का वही राष्ट्रीय गान गाना है—'उत्तिष्ठत् जाग्रत'।

३८

बुधवार रात्रि
२–२–१६

स्वास्थ्य का ध्यान रखना। ग्रावश्यक व्यायाम ग्रौर प्रातःभ्रमण करते रहना। ग्रभी जीवन बहुत लम्बा है, तुम ग्रधिक श्रम मत करना, दूध ग्रौर ग्रंड खाते रहना। ग्रब मूर्ख की भाँति समय के सदुपयोग के बहाने ग्रधिक श्रम करने का कोई ग्रर्थ नहीं है।

सुरेश भैया कल चले गए। तुमसे न मिल पाने के कारण उन्हें खेद रहा। उन्हें विशेष कार्य था इसीलिये विवश होकर उन्हें कल ही जाना पड़ा। मैंने भोजनालय बदल लिया है,—२/११ छोड़कर ग्रब ४५/१ एमहर्स्ट हो गया है। उस मकान में बहुत सील थी। ग्रतः छोड़ना पड़ा। कलकत्ता के मैस में दो-एक लोगों को छोड़कर सभी को ग्रसनी-शोथ होना प्रारम्भ हुग्रा था। सुरेश भैया शंका करते हैं कि तुममें भी ग्रसनी-शोथ (ग्रक्षर ठीक ज्ञात नहीं) के लक्षण हैं।

क्या अब भी गले से रक्तस्राव हो रहा है ? मेरा अनुरोध है कि तुम इसका और पेचिश का इलाज कराओ। ज्ञान दादा या किसी और को भी दिखला सकते हो। आवश्यकतानुसार औषधि सेवन करना। इस काम में लापरवाही मत बरतना। तुम्हारी अस्वस्थता का समाचार अरविंद के द्वारा सब जगह फैल गया है। बहुत-से लोगों ने मुझसे तुम्हारे बारे में पूछा था। यदि तुम अरविंद को दण्ड देना चाहो और स्वयं लज्जित होना नहीं चाहते तो इस बीच में तुम स्वस्थ हो जाओ। तब जो कोई तुम्हें देखेगा अपेक्षाकृत स्वस्थ ही देखेगा।

सुना है कि सुरेश भैया को श्रसनी-शोथ हो गया है। यह समाचार मुझे विधु से मिला था। कुछ भी हो, इस समाचार से यह सिद्ध होता है कि अस्वास्थ्यकर स्थान में अधिक श्रम करने से अत्यन्त सबल शरीर भी ढल जाता है।

तुम्हारी, मानसिक शक्ति से शारीरिक रोग को दबाने की प्रवृत्ति बुरी है। इसी भाँति तुम उस समय भो सख्त बीमार पड़े थे। ध्यान न रखने पर अब भी बीमार पड़ने की आशंका है। मेरा अनुरोध है कि समय रहते तुम शरीर का ध्यान रखो। और अधिक क्या लिखूँ ?

३९

३८/२, एलगिन रोड, कलकत्ता
२९–२–१६

हेमन्तकुमार,

तुमको जो दो-एक दिन पत्र नहीं लिखा इसका कारण यही है कि कोई विशेष समाचार नहीं थे। मेरे बारे में परेशान और विचलित होने से काम नहीं चलेगा। धैर्य के साथ थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

सिन्डीकेट में प्रार्थना करने के कारण वे अब मेरे सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं देंगे। ज्ञात होता है कि जब तक कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित नहीं होगी तब तक प्रतीक्षा करेंगे। आज कमेटी में प्रार्थनापत्र दिया है जिससे वे मेरी साक्षी ले लें और पुनर्विचार करें। कमेटी अब प्रोफेसरों की साक्षी ले रही है। ऐसा अनुमान है कि यह क्रम तीन-चार दिन तक और चलेगा; तदोपरांत लड़कों को बुलाएँगे। तभी हम जाकर साक्षी देंगे। कमेटी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। वे निम्नलिखित विषयों का

निरीक्षण करेंगे—

(१) प्रेसिडैन्सी कालेज के यूरोपियन और भारतीय प्राध्यापकों का परस्पर सम्बन्ध।

(२) भारतीय छात्रों और यूरोपियन प्राध्यापकों का परस्पर सम्बन्ध।

(३) भारतीय छात्रों और भारतीय प्राध्यापकों का सम्बन्ध।

(४) उस अनुशासन-हीनता का कारण जिससे हड़ताल हुई।

तदर्थ समिति की सिफारिश के अनुसार सम्भवतः सरकार प्रेसिडैन्सी कालेज को एक बार नये ढंग से चलाने का प्रयास करे, जिससे भविष्य में कोई गड़बड़ी न हो। समझ लो कि घटना बहुत गम्भीर है। आशु बाबू हैं, इसलिए हमें विश्वास है कि छात्रों के हित की उपेक्षा न होगी। समिति यदि हमें निर्दोष बताती है या शंका का लाभ देती है तो हम सिन्डीकेट को प्रार्थना-पत्र देंगे कि प्रेसिडैन्सी कालेज के छात्र होने के कारण हमें पुनः उसी स्थिति में मान्यता मिले जिसमें हम हड़ताल से पूर्व थे। यदि ऐसा न हुआ तो स्थानान्तरण की माँग की जाएगी। स्थानान्तरण की अनुमति मिलने पर हम दूसरे कालेज में प्रवेश पा सकेंगे। यदि वे स्थानान्तरण की अनुमति नहीं देते तो मुझे कालेज से निष्कासित कर दिया जाएगा। इस प्रकार का निष्कासन एक वर्ष से अधिक के लिए नहीं होता। गम्भीर अपराध करने पर जीवन के लिए निष्कासित कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में पढ़ाई समाप्त हो जाती है। मेरे बच जाने की सम्भावना अधिक है। मेरी ख्याति भले लड़के के रूप में है। बड़े-बड़े आदमी मुझे जानते हैं। फिर विशाल जनमत मुझे निर्दोष समझता है। स्वयं आशु बाबू मुझे जानते हैं। मेरे विरुद्ध चपरासी की जो साक्षी है वह बहुत ही अशक्त है। अतः मेरे निर्दोष छूट जाने की सम्भावना अधिक है। मुझे इतना विश्वास है कि कम से कम स्थानान्तरण प्राप्त हो जाएगा। कुछ नहीं तो बाद में कानूनी कार्यवाही की जा सकती है।

४०

३८/२, एलगिन रोड, कलकत्ता
६–३–१६
सोमवार

हेमन्त,

तुम्हारा पत्र नहीं मिला, इस कारण चिन्तित हूँ। क्या तुम्हें मेरा पत्र नहीं मिला ? हमारे पत्र रोके जा रहे हैं। मैंने सम्भवत: समिति के समक्ष साक्षी देने के अगले दिन ही पत्र लिखा था। तुमने सुना होगा कि छात्रावास बन्द हो गया है और अवकाश के उपरांत ही कालेज खुलने की अधिक सम्भावना है। हमारे प्रति समिति का व्यवहार अच्छा है। मैं आशा करता हूँ कि यदि वे निर्दोष न मानेंगे तब भी शंका का लाभ अवश्य देंगे। अब केवल प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मेरे पत्रों को फाड़कर फेंक देना उचित होगा। वहाँ के समाचार लिखना। वेणी बाबू से एक दिन वार्ता हुई थी। उन्होंने लड़कों को बहुत अपशब्द कहे और जेम्स साहब के प्रति बहुत सहानुभूति दिखाई। तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है ? तुम कैसे हो, लिखना। मैं आशा करता हूँ कि तुम उपयुक्त सावधानी से रह रहे होगे और मुझे इस सम्बन्ध में और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उत्तर शीघ्र देना। इति।

तुम्हारा
सुभाषचन्द्र

४१

मंगलवार
४–७–१६

जब तुम्हें छोड़कर आया तब मैंने समझा था कि तुम्हारी मन:स्थिति ठीक नहीं है। किन्तु विवश होकर मुझे आना ही पड़ा। मैंने कई दिन से तुम्हें पत्र नहीं लिखा परन्तु क्या इसीलिए तुम्हें भी पत्र नहीं लिखना चाहिए था ? इच्छा तो यह थी कि अगले दिन प्रात:काल तुमसे मिलूँ परन्तु विशेष कारणवश मिलना न हो सका। कैसे हो, विस्तार से लिखना। मैं यह बात सुनना चाहता हूँ कि तुम्हारे स्वास्थ्य को देखकर किसने क्या कहा ?

ऐसा लगता है कि अब मेरा पढ़ना-लिखना छूट जाएगा। मेरे समक्ष एक कठिन समस्या है। इतने दिन तक इस-उसकी सहायता माँगता रहा और उनका मत जानने को उत्सुक रहा, परन्तु अब स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि इस बात की मीमांसा प्रमुख रूप से मेरे ऊपर ही निर्भर है। इसके अतिरिक्त अब मेरी मन:स्थिति भी ठीक नहीं है। कुछ भी तो नहीं मालूम कि बचूँगा या मरूँगा। तो भी मेरे जीवन का अनुभव यह है कि विश्वास ही मुझे सदैव जीवित रखता आया है। विश्वास मुझे जीवन से कभी विमुख नहीं होने देता। कह नहीं सकता यह माया है या और कुछ। मेरी इस विपत्ति में तुम मेरा साथ दोगे न? विपत्ति इतनी भीषण होगी, यह मैंने कभी नहीं सोचा था। अधिक क्या लिखूँ? तुम पत्र लिखना और विस्तार से वहाँ के समाचार लिखना।

४२

शुक्रवार
(१९१७)

स्नेहास्यदेषु,

तुम्हारा पत्र मिला। अतुल बाबू मिले थे। उन्हें खोजने पर अब भी अच्छा स्थान प्राप्त नहीं हुआ। नया आदमी विश्वविद्यालय में स्थान पा सकता है ऐसा विश्वास तो है परन्तु इसके लिए प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता। अतुल बाबू को जो समाचार मिले वे पूर्ण रूप से गलत हैं। देखता हूँ क्या होता है? शम्भु चटर्जी स्ट्रीट में जो भोजनालय है उसमें दूसरी मंज़िल पर एक स्थान है, परन्तु वहाँ प्रकाश और हवा ठीक से नहीं पहुँच पाती। अत: वह स्थान नहीं लिया जा सकता।

मैंने स्कटिश चर्च में तीसरे वर्ष में प्रवेश लिया है। मैं तुम्हारे पत्र का अर्थ नहीं समझ पाया। मैंने निर्धन परिवार में जन्म नहीं लिया, किन्तु इस बात के लिए क्या मैं उत्तरदायी हूँ? क्या इसके लिए मुझे ही प्रायश्चित करना पड़ेगा? जिन सांसारिक परिस्थितियों में हमने जन्म लिया है उनका सम्पूर्ण लाभ ग्रहण करने के अतिरिक्त हमारे पास अन्य उपाय है भी क्या? जो संन्यासी हो उसकी बात और है। मैं संन्यासी नहीं हूँ।

मैं तो अपने भीतर कोई परिवर्तन नहीं देखता। बाहर कुछ परिवर्तन हो गया हो तो वह अनिवार्यता के कारण होगा। यौवन की उच्छृङ्खलता के स्थान पर स्थिरता आती जा रही है। आयु और ज्ञान के साथ-साथ चित्त भी धैर्य धारण कर लेता है। मेरे विचार में वही हुआ होगा। यौवन में जो भावनाएँ सब विघ्न-बाधाओं को हटाकर व्यक्त होना चाहती हैं, वही सब आयु बढ़ने पर रुक जाती हैं।

एक बात और भी है कि यदि कोई मनुष्य यह मानता है कि किसी के भीतर भावना परिवर्तित हुई है तो कितना भी समझाओ, सफाई दो, किन्तु वह कभी इस बात पर सहमत नहीं होगा कि उसकी भावनाएँ परिवर्तित नहीं हुईं। ऐसी स्थिति में यदि मनुष्य अपने आपको समझाने की अधिक चेष्टा करता है तो विपरीत धारणा की ही जड़ मजबूत हो जाती है। जाने दो—

यदि किसी का यह विचार है कि मेरी भावनाओं में परिवर्तन हुआ है या मैं वैसा नहीं हूँ जैसा कि पहले था तो वह मेरे लिए बड़े ही दुःख और दुर्भाग्य की बात होगी। क्या तुम्हारे मन में ऐसी कोई बात है? मेरे मन में ऐसा कुछ नहीं है।

जिस संसार में हम रह रहे हैं उसमें भावों को अनवरुद्ध रूप से व्यक्त न करके रोक कर रखना पड़ता है। समस्त प्रकृति हमें स्वभाव के विपरीत इस ओर प्रवृत्त कर रही है।

वास्तविक तथ्य तो यह है कि यह व्याधि तुम्हारी ही है, किसी अन्य की नहीं। मैं इस बात को बहुत दिन से कहता आ रहा हूँ और जिसे संशोधित करने की भी थोड़ी बहुत चेष्टा करता आ रहा हूँ, वह है—मानसिक विकार। जब तक इससे मुक्ति नहीं मिलेगी तब तक मुझे ही क्यों, संसार भर को विकृति प्रतीत होती रहेगी।

क्या तुम्हें प्रेसीडैन्सी कालेज से कोई उत्तर मिला? इति।

सुभाष

४३

वाई० एम० सी० ए०
कलकत्ता विश्वविद्यालय
इन्फैन्ट्री शूटिंग कैम्प
बेलगुरिया, ई० बी० रेलवे
५–४–१८

तुम्हारा पत्र मिला था। मैं उस दिन विश्वविद्यालय इन्स्टीट्यूट में नहीं गया क्योंकि उस दिन कैम्प में जाना था। डाक्टर की अनुमति के अभाव में कैम्प नहीं जा सका। हम परसों आए हैं और सम्भवत: दो-तीन सप्ताह यहाँ रहें। आज से राइफल का अभ्यास आरम्भ हुआ है। बहुत रुचिकर लग रहा है। हमें २४ अप्रैल से पूर्व ही छुट्टी मिलने की आशा है। इसी कारण जो दिन तुमने बताया है उस दिन मैं विद्यालय के वार्षिक अधिवेशन में कृष्णनगर में उपस्थित नहीं हो सकता। मैं स्वस्थ हूँ। तुम्हारा स्वास्थ कैसा है? यहाँ सब कुशल है।

४४

कलकत्ता
मंगलवार
३०–४–१८

हेमन्त,

तुम्हारा पत्र यथा समय मिल गया था। गत शुक्रवार को हम सब घर लौट आये थे। स्वास्थ्य ठीक ही है। सम्भवत: अवकाश के समय में अब और कोई काम नहीं होगा, क्योंकि अवकाश के दिनों में कलकत्ता में बहुत ही कम लोग रहेंगे। अवकाश के पश्चात् क्या होगा, इस सम्बन्ध में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। मेरा अनुमान है कि दिल्ली महासभा से मुझे सूचना मिलेगी। कप्तान ग्रे आगामी पहली मई से जनरल आई० डी० एफ० का पद ग्रहण करेंगे। अभी उनका प्रशिक्षण समाप्त होने में डेढ़ माह की देर है।

हमारे अनुभव अधिकांश बहुत ही सुखद हैं और जो कुछ सीखा है उससे सबका ही कुछ न कुछ लाभ हुआ है, इसमें शंका नहीं। तीन माह

का प्रशिक्षण उतना स्थायी हो भी नहीं सकता। फिर किसी वस्तु की लाभ-हानि उसे ग्रहण करने वाले की उपयुक्तता और अनुपयुक्तता पर निर्भर है।

हमारे अनुभवों में कोई विशेष नवीनता नहीं है इसीलिए कलकत्ता में रहते हुए कभी-कभी ऊब अनुभव होती थी। परन्तु बेलगुरिया में रहते समय जब वर्षा से तम्बू बह गया था और अगले दिन प्रातःकाल साढ़े चार बजे तक निरंतर झड़ी लगी रही थी तब कुछ क्षेत्रीय-सेवा की सी अनुभूति हुई थी। बाद में शौचालय बनाना, दूर गाँव से पीने का पानी लाना, रात में पहरा देना और सबसे अधिक रात्रि-कालीन सैनिक कार्यवाही ने जीवन को मधुर बना दिया था। वहाँ जो गोली चलाने की प्रतिद्वन्दिता हुई थी उसमें ब्रिटिश निर्देशकों को लड़कों ने परास्त कर दिया था। शेष कई दिन तक कैम्प जीवन बहुत सुन्दर प्रतीत हुआ था। सबको थोड़ा-बहुत पारस्परिक लगाव हो गया था। कैम्प छोड़ने में दुःख अनुभव हुआ था।

कल नीलमणि और मंडल से साक्षात्कार हुआ। आज भी हो सकता है। सुना है कि तुम इतना पढ़ते हो कि किसी से मिलने तक का समय नहीं मिलता? तुम्हारे बोलपुर जाने का क्या हुआ? अवकाश के दिनों में गोपारी रहोगे या और कहीं जाओगे? मैं तुम्हारे स्वास्थ्य का समाचार चाहता हूँ।

मैं सम्भवतः कलकत्ता में रहूँगा। परन्तु एक बार यह भी सोचता हूँ कि पुरी की ओर हो आऊँ। तुम्हारे वहाँ जाने की इच्छा है?

मेरा स्वास्थ्य ठीक ही है। अभी पढ़ना लिखना प्रारम्भ नहीं किया है। कालेज-पत्रिका के लिए कैम्प जीवन के सम्बन्ध में एक निबन्ध लिखूँगा। पूरा होने पर तुम्हें दिखाऊँगा। पत्रोत्तर शीघ्र देना।

सुभाष

पुनः—तुमने मेरी प्रगति के सम्बन्ध में जानने की इच्छा प्रकट की है। मेरी उन्नति कुछ नहीं हुई। अन्त तक मैं प्राइवेट रहा था। इसका कारण यह है कि कप्तान ग्रे के आदेश से एन० सी० ओ० लोगों के चिह्न वाले फीते वापस ले लिये गये थे, और नियुक्ति के स्थान पर मतदान द्वारा नये चुनाव हुए थे। उस समय मैं अस्वस्थ होने के कारण अनुपस्थित था। इसलिए समस्त पद भर गए थे।

४५

३८/२, एलगिन रोड, कलकत्ता
२६–८–१६

मेरे समक्ष एक कठिन समस्या है। कल घर से मुझे विलायत भेजने का प्रस्ताव आया। मुझे अभी विलायत जाना पड़ेगा। वहाँ पहुँचकर अब किसी अच्छे विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने की आशा नहीं है। सब लोगों की कामना है कि मैं कुछ महीने पढ़कर सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठूँ। मुझे सिविल सर्विस परीक्षा में सफल होना सम्भव नहीं लगता। सब लोगों का मत है कि यदि मैं परीक्षा में असफल हो जाऊँ तो आगामी अक्टूबर मास में केम्ब्रिज में या लन्दन में प्रवेश ले लूँ। मेरी अपनी प्रबल इच्छा भी विलायत जाकर विश्वविद्यालय की उपाधि प्राप्त करने की है। यदि ऐसा न हुआ तो फिर शिक्षा के क्षेत्र में अवसर नहीं मिलेगा। अब यदि मैं यह कहूँ कि सिविल सर्विस की पढ़ाई के लिए विलायत नहीं जाता तो सदा के लिए विलायत जाने का प्रस्ताव रक्खा रह जाएगा। भविष्य में कभी कोई अवसर मिल पाएगा अथवा नहीं, यह अनिश्चित है। ऐसी स्थिति में क्या मुझे यह अवसर छोड़ देना चाहिए? सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि यदि मैंने सिविल सर्विस परीक्षा में सफलता प्राप्त की तो लक्ष्यभ्रष्ट हो जाऊँगा। पिताजी कलकत्ता आए थे। कल ही प्रस्ताव रखा गया था और कल ही मुझे अपना निर्णय भी देना पड़ा। पिताजी कल ही कटक चले गए। मैं विलायत जाने के लिए सहमत हो गया हूँ। परन्तु अपना कर्त्तव्य अभी ठीक से निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ। तुमसे परामर्श करना चाहता हूँ। यदि तुम शीघ्र ही कलकत्ता आ सको तो अच्छा रहेगा। सुना था कि तुम चार तारीख को आ रहे हो? परन्तु उसमें तो अभी बहुत देर है।

४६

३८/२ एलगिन रोड, कलकत्ता
३–९–१९

पिछले कई दिन मैंने मानसिक संघर्ष में व्यतीत किए हैं। मानसिक द्वन्द्व के पश्चात् मैंने विलायत-यात्रा के सम्बन्ध में अपनी सहमति प्रकट की थी किन्तु मन को अभी तक आश्वस्त नहीं कर पाया कि मेरा यह निश्चय उचित था या नहीं। तुम्हारा पत्र पाकर कुछ तसल्ली हुई।

बहुत परेशान होने के कारण कल तुम्हें पत्र नहीं लिख सका। मैं कलकत्ता से ग्यारह सितम्बर के जहाज द्वारा जा रहा हूँ। इस बीच में सब प्रबन्ध होना आवश्यक है।

परिचय-पत्रों की आवश्यकता पड़ेगी या नहीं यह तुमसे मिलने पर निश्चय किया जायगा। अध्ययन के सम्बन्ध में भी तुमसे परामर्श करना है। तुम्हारे यहाँ आने पर सब ठीक हो जाएगा। तुम्हें यहाँ आने में शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि मैं दो-तीन दिन तक व्यस्त रहूँगा। आशा है कि बाद में अवसर मिलेगा। तुम्हारी परीक्षा निकट होने के कारण कुछ कठिनाई हुई है।

४७

८ ग्लेनमोर रोड
बेलसाइज पार्क
लन्दन एन० डब्ल्यू० ३
(१९१९)

हेमन्त,

तुम्हें एक विस्तृत पत्र लिख रहा हूँ, परन्तु अभी वह पूरा नहीं हुआ है। इस पत्र में तो तुम्हें केवल अपने पहुँचने का समाचार और पता दे रहा हूँ। मैं बहुत व्यस्त हूँ क्योंकि कहाँ पढ़ूँगा यह अभी निश्चित नहीं कर सका हूँ। अगली डाक से तुम्हें विस्तृत पत्र भेजूँगा। मेरे बड़े भैया भी इस मकान में ही हैं। मैं बीस अक्टूबर को लन्दन पहुँच गया था। प्रमथ को समाचार देना कि युगल दादा अभी तक मार्सिलीज़ में हैं। वह नवम्बर या दिसम्बर मास में अपनी रैजीमैंट के साथ भारत आयेंगे। वहाँ सम्भवत:

अप्रैल १९२० में वह सेना छोड़ दें। मुझे यह समाचार धीरेन के पिता श्री एम० एम० धर से मिला था। मैं स्वयं युगल को पत्र लिखकर समाचार मंगवाऊँगा और फिर तुमको दूँगा।

भारतचन्द्र धर महाशय के सुपुत्र भी इसी मकान में हैं। वह लन्दन में बी० कॉम० पढ़ने आए हैं। मैं यहाँ इस समय बहुत ठण्ड महसूस कर रहा हूँ। अच्छा तो फिर नमस्ते। अब मुझे जल्दी है, इस कारण और नहीं लिख रहा हूँ। इति।

तुम्हारा
सुभाष

४८

फिट्ज विलियम हाल
केम्ब्रिज
१२-११-१९

जिनके पत्र आने की आशा नहीं थी उन्होंने पत्र लिखे, परन्तु तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया। आशा है भविष्य में पत्र लिखोगे।

पिछले पत्र में मैंने लिखा था कि मुझे केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में स्थान मिल गया है। स्थान मिलने में एक मित्र की सहायता, कुछ बी० ए० का परीक्षाफल, और कुछ आई० डी० एफ० सर्विस ही कारण बने हैं। स्थान की कमी होने पर भी सौभाग्य से निवास-स्थान मिल गया है।

सफल होऊँ या असफल परन्तु मेरा निश्चय है कि अगले वर्ष सिविल सर्विस परीक्षा में अवश्य सम्मिलित होऊँगा। १९२१ के मई मास में मुझे नैतिक विज्ञान ट्राइपास की परीक्षा देनी है और यहाँ की उपाधि लेनी है, क्योंकि भविष्य में यह मेरे बहुत काम आएगी।

यहाँ भारतवासियों की एक समिति है—"इन्डियन मजलिस"। इसका साप्ताहिक अधिवेशन होता है। कभी-कभी बाहर से भी वक्ता आते हैं। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने एक बार "जवानों का राज्य" के सम्बन्ध में भाषण दिया था। श्री एन्ड्रूज़ ने "ठेके की श्रमिक प्रणाली" तथा फिजी द्वीप के भारतीयों की माँगों के सम्बन्ध में भाषण दिए। मेरे यहाँ आने से पूर्व श्री तिलक महाराज यहाँ आए थे। इंडिया आफिस द्वारा उन्हें रोकने की चेष्टा की गई थी, परन्तु सफलता नहीं मिली। यहाँ के भारतीयों का स्वर

बहुत उग्र है, वे नरम भाषण सुनकर प्रतिवाद करते हैं।

पिछले दो दिन से बर्फ पड़नी प्रारम्भ हो गयी है। इच्छा से या अनिच्छा से यहाँ की जलवायु लोगों को परिश्रमी बना देती है। यहाँ की सक्रियता देखकर हार्दिक प्रसन्नता होती है। प्रत्येक मनुष्य समय का ध्यान रखता है और प्रत्येक कार्य करने की एक निश्चित पद्धति है। मुझे सर्वाधिक सुख उस समय अनुभव होता है जब मैं देखता हूँ कि गोरा मेरी सेवा कर रहा है और मेरे जूते साफ कर रहा है। यहाँ के छात्रों का एक स्तर है और प्राध्यापकों का व्यवहार भी भिन्न प्रकार का है। यहाँ मनुष्य के प्रति मनुष्यता का व्यवहार दिखाई पड़ता है। इनके भीतर बहुत से दोष हैं परन्तु इनके गुणों के समक्ष सिर झुकाना पड़ता है। तुम कैसे हो? परीक्षा-फल का क्या हुआ? इसके बाद क्या करोगे, यह जानने के लिए मैं अधीर हूँ। विस्तृत पत्र देना। सुनीति बाबू लन्दन में शोध-कार्य कर रहे हैं। मैं स्वस्थ हूँ। युगल दादा फ्रांस में हैं।

४६

फिट्ज विलियम हाल
केम्ब्रिज
७–१–२०

हेमन्त,

तुम्हारा २७ नवम्बर का पत्र कई दिन पहले मिला था। इतने दिन तक तुमने पत्र क्यों नहीं लिखा?

* * *

मेरे पत्र से तुम्हें मेरे केम्ब्रिज आने का समाचार मिल गया होगा। यहाँ पढ़ने-लिखने का अवसर देखकर आना निश्चित किया था। स्थान तो सौभाग्य से अच्छा ही मिल गया है। कुछ मेरे विश्वविद्यालय के परीक्षाफल के कारण और सबसे अधिक एक मित्र की सहायता से यह सब हो सका।

* * *

प्रफुल्ल अब क्या करेगा? भारत में मेरा निबन्ध प्रकाशित होने पर मुझे भेज देना।

प्रफुल्ल दादा अब प्रेसिडैन्सी कालेज में ही काम कर रहे हैं या

और कहीं बदली हो गई है ? सुरेश दादा से तुम्हारी जो बातचीत हुई थी वह सब लिखना। वह जो स्कूल खोलने की बात कह रहे थे, वह नौकरी से मुक्त होने के पश्चात् के लिए ही तो कह रहे थे ? युगल दादा ने एक माह पूर्व लिखा था कि शीघ्र मुक्त हो जाएँगे परन्तु शीघ्रता का अभी तो कोई लक्षण दिखाई पड़ा नहीं।

सुरेश दादा तो एक प्रकार से मुझे भूल ही गये हैं। यदि मैं नौकरी न करूँ तो उनसे पुनर्मिलन हो सकता है। मैं नौकरी करूँ या न करूँ परन्तु इससे पारस्परिक सम्बन्ध कैसे समाप्त हो सकते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता। इस प्रकार के दूकानदारी जैसे भाव को क्या स्वाभाविक समझें ? मेरी इच्छा है कि किसी से विवाद न करूँ और अपना कर्त्तव्य पालन करता रहूँ। इसमें पाँच जनों का साथ रहे तो उत्तम है और न रहे तो भी कुछ हानि नहीं है।

लन्दन में सुनीति बाबू मिले थे।

वेणी बाबू के क्या समाचार हैं ? लिखना कि तुम क्या सोच रहे हो। देश के विस्तृत समाचार लिखना।

तुम्हारे पत्र में निहित व्यथा के करुण स्वर की अनुभूति मुझे हुई। अन्ततः यह व्यथा, यह पीड़ा क्यों है ?

मैं स्वस्थ हूँ। प्रमथ, हेमेन्दु या चारु से साक्षात्कार हो तो उन्हें पत्र लिखने को कहना। प्रिय रंजन से मिलो तो कहना कि उसका पत्र मुझे मिला था। आगामी डाक से उत्तर भेजूँगा। इति।

तुम्हारा
सुभाष

५०

केम्ब्रिज
सोमवार
१९ जनवरी १९२०

हेमन्त,

तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने एक साथ कई कार्य हाथ में ले रखे हैं। विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्य करने से मनुष्य की पर्याप्त शक्ति क्षय होती है—उसके बाद दुकान का कार्य। और भी न जाने क्या-क्या काम होंगे। जब तुम्हें अनुभव हो रहा है कि

शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है तब इस प्रकार के आचरण का क्या अर्थ है। हमारे देश की जलवायु का प्रभाव है कि जो लोग काम नहीं करते वे तनिक भी काम नहीं करते, और जो लोग काम करते हैं वे अत्यधिक काम करने का प्रयास करते हैं और स्वास्थ्य आदि सब कुछ खो देते हैं। जब तुम्हारा प्रस्ताव था कि पी० आर० एस० के लिए प्रयास करना और उसके साथ-साथ शिक्षण कार्य करना, तब सम्भवत: दुकान के काम में हाथ न डालते तो अच्छा रहता। यदि मनुष्य किसी स्थायी कार्य को करने की चेष्टा करे तो उसको बहुत वर्षों तक उसी काम में व्यस्त रहना पड़ेगा। दो-एक वर्ष में उसकी इच्छा पूर्ण होना सम्भव नहीं। अतएव तुम यदि देश के लिए कोई स्थायी कार्य करने की इच्छा रखते हो तो तुम्हें ऐसा काम करना चाहिए जिससे बहुत समय तक काम करने की शक्ति शेष रहे। यह तो सत्य है कि इस संसार से जाने का कब किसका बुलावा आ जाए इसे निश्चित रूप से कोई नहीं जानता। किन्तु इसी कारण पहले से ही अपने गले में चाकू भोंक लेने से क्या लाभ? अत्यधिक परिश्रम करके शरीर नष्ट करने से कोई लाभ नहीं। मैं बहुत कटु बात लिख रहा हूँ परन्तु आशा है कि तुम मुझे गलत नहीं समझोगे। खेद की बात तो यह है कि तुम अत्यधिक काम हाथ में ले लेते हो और सामर्थ्य न होते हुए भी केवल मानसिक बल के आधार पर उसे समाप्त करते हो। ऐसी स्थिति अवांछनीय है।

बुधवार २१ जनवरी

तुम्हारी परीक्षा का विस्तृत समाचार पाकर प्रसन्नता हुई। विश्व-विद्यालय के अनेक कार्य मिल गए यह सुनकर और भी प्रसन्नता हुई। मेरा विश्वास है कि तुम उन कामों में सफलता प्राप्त करोगे। केवल तुम्हारे स्वास्थ्य की चिन्ता है।

यहाँ के निवासियों का एक गुण है जिसके कारण वे इतने बड़े बन गए हैं। पहला गुण तो यह है कि ये घड़ी की भाँति निश्चित समय के अनुसार काम करते हैं। दूसरा गुण इन लोगों का अत्यधिक आशावाद है। हम लोग जीवन के दु:खों के सम्बन्ध में सोचते हैं किन्तु ये लोग सुख और प्रगति के सम्बन्ध में सोचते हैं। यह विचित्र सामान्य ज्ञान के धनी हैं और फिर इन लोगों की व्यावहारिक बुद्धि बड़ी कुशाग्र है। अपने जातीय स्वार्थों के सम्बन्ध में भली भाँति जानते हैं। हमारे यहाँ हमारी जलवायु

का प्रभाव है, जिसे हमें परिवर्तित कर देना चाहिए।

* * *

तुम्हारी अपने तथा अपने शरीर के सम्बन्ध में लापरवाही का कारण पूर्वी देशों की उदासीनता है। "शरीर का ध्यान रखने से क्या होगा, मिट्टी का शरीर तो दो दिन बाद मिट्टी में मिल जाएगा"—ऐसी उदासीनता कर्मवीर के लिए अवांछनीय है। यदि सबल आशावादी भावना लानी है तो तुम्हें थोड़ा पाश्चात्य बनना चाहिए।

वेणी बाबू को एक पत्र लिखा था। दत्तगुप्त महाशय को अभी पत्र नहीं लिखा।

मैं अधिक कुछ नहीं कह सकता, किन्तु अपनी लापरवाही के कारण यदि अल्पायु में ही तुम्हारा शरीर नष्ट हो गया तो उसके लिए तुम्हीं उत्तरदायी होगे। अनेक विषयों में मनुष्य का जोर नहीं चलता, परन्तु शरीर का ध्यान न रखना एक अपराध है। यह अपराध केवल अपने प्रति ही नहीं अपितु देश के प्रति भी है। यदि छोटी आयु में शारीरिक शक्ति नष्ट हो जाय तो समझना चाहिए कि देश के नवयुवकों के आदर्श में कुछ कमी है। तुम्हारा शरीर केवल तुम्हारा ही नहीं है। तुम तो केवल उसके संरक्षक हो। इसीलिए मैं इतने कटु वाक्य कह रहा हूँ। मुझे आशा है कि तुम शरीर का ध्यान रखोगे और अपने शरीर रूपी ट्रस्ट के सही रूप में ट्रस्टी बने रहोगे।

मैं अभी तक समझ नहीं पाया हूँ कि कहीं मैं आदर्शच्युत तो नहीं हो गया हूँ। मैं आत्म-प्रतारणा करके अपने आपको नहीं समझाना चाहता कि सिविल सर्विस के लिए पढ़ना अच्छा है। चिरकाल से उससे घृणा करता आया हूँ, अब भी करता हूँ। अब ऐसी स्थिति में इसके लिए प्रयास करना मेरी दुर्बलता है, या भविष्य में कभी इससे मेरा लाभ होगा यह समझ में नहीं आता। मेरा एक मात्र निवेदन है कि मेरे हितैषी मेरे सम्बन्ध में शीघ्रता से कोई धारणा न बनाएँ।

अनेक घटनाओं में अन्त तक पहुँचने से पूर्व कोई निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। क्या मेरे साथ ऐसा होना सम्भव नहीं ? इति।

सुभाष

५१

केम्ब्रिज
४ फरवरी १९२०

हेमन्त,

तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। देश के प्राय: सभी समाचार-पत्र और प्रमुख मासिक पत्र यहाँ आते हैं। परन्तु मुझे पढ़ने का समय ही नहीं मिलता। साथियों के मुँह से देश के सब समाचार सुनता हूँ।

प्रफुल्ल के सम्बन्ध में सुनकर प्रसन्नता हुई। सुहृत की नियुक्ति हो गई—क्या यह समाचार ठीक है?

*   *   *

तुम्हें जो विस्तृत पत्र लिखने वाला था उसका विवरण मन में है। कुछ लिख भी लिया है। मेरी इच्छा थी कि कुछ भ्रमण-वृत्तान्त लिखूँ परन्तु समय न होने के कारण अभी पूरा नहीं कर पाया।

तुम अपने सिर पर कितने काम और लादोगे? दुकान का काम, शिक्षण, अध्ययन, नैश विद्यालय, और भी न जाने क्या-क्या हैं? परिणाम क्या होगा? अल्प काल में ही शरीर नष्ट कर लोगे! हमारे देश की जलवायु में यह दोष है कि हम लोग संयम और साहस में समन्वय नहीं कर पाते। जहाँ साहस है वहाँ संयम नहीं है, और जहाँ संयम है वहाँ साहस नहीं है। तुम अपने आपको कितना भी व्यावहारिक मानो किन्तु अभी तक तुम व्यावहारिक नहीं बन पाए हो।

अब कैसे हो? मैं स्वस्थ हूँ। दत्तगुप्त को अभी पत्र नहीं लिखा है, सम्भवत: आगामी डाक से भेजूँगा। इति।

सुभाष

५२

फिट्ज विलियम हाल, केम्ब्रिज
२ मार्च १९२०

हेमन्त,

बहुत दिन से तुम्हारा पत्र नहीं आया। मैंने भी नहीं लिखा। जब समय कम रहता है तब उन्हें ही पत्र लिखे जा सकते हैं जिन्हें दो पंक्ति लिखने से काम चल जाए।

उस दिन "इन्डियन मजलिस" का वार्षिक भोज था। श्री हॉर्निमैन

हमारे अतिथि के रूप में वहाँ आए थे। वहाँ के विदेशी बन्धुओं में से भी कोई कोई आए थे। श्रीमती राय ने गत रविवार को मजलिस की बैठक में "भारतीय माताओं के अधिकार" के सम्बन्ध में भाषण दिया था। भारत की रमणियाँ कब समाज-शिक्षिका का आसन ग्रहण करेंगी ? यदि भारत की महिलाएँ न जागीं तो भारत कभी नहीं जागेगा। जिस दिन श्रीमती सरोजिनी नायडू ने यहाँ भाषण दिया उस दिन प्रसन्नता से छाती फूल गई। उस दिन प्रत्यक्ष देखा कि भारत की रमणी अब भी ऐसी शिक्षा-दीक्षा, गुण और चरित्र रखती है कि पाश्चात्य समाज के समक्ष खड़ी होकर अपना परिचय दे सकती है। लंदन में डॉक्टर मृगेन मित्र की पत्नी के साथ परिचय हुआ। देखा कि डॉ० मृगेन मित्र तो राजनीति में शांति के समर्थक हैं, और श्रीमती मित्र अतिवादी हैं। दिल बाग-बाग हो गया। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। बाद में गिरीश दादा की माताजी श्रीमती धर के साथ बातें हुईं। वह भी अतिवादी हैं। यह देखकर तो प्रतीत होता है कि जिस देश की रमणियों के आदर्श इतने उच्च हैं उस देश की उन्नति कभी नहीं रुक सकती। यहाँ जो भारतीय महिलाएँ आती हैं उनके हृदय में गम्भीर देश-प्रेम होता है। इसका कारण यह है कि मातृ-हृदय अत्यन्त कोमल और गम्भीर होता है।

जाने दो, मैं व्यर्थ की बातें कर रहा हूँ। क्या गिरीश दादा से मुलाकात होती है ? वे कैसे हैं, और कहाँ हैं ? मिलें तो पत्र लिखने को कहना। दुकान के तथा और अन्य क्या समाचार हैं ? सुना है कि जगदीश बाबू एफ० आर० एस० हो गए हैं। उनसे श्रमिक नेताओं ने कहा था कि "जो देश अमृतसर हत्याकांड को सह सकता है वह इसी योग्य है।" हॉर्निमैन वास्तव में भारत के मित्र हैं। वह अपने अपनाये हुए देश में लौटने को व्याकुल हैं परन्तु प्रवेशाधिकार नहीं मिल रहा है।

* * *

मैं कहाँ बहा जा रहा हूँ यह मुझे नहीं मालूम। किस किनारे जाकर लगूँगा यह भी मुझे ज्ञात नहीं। फिर भी विश्वास है कि तुम्हारे प्रेम और आशीर्वाद के सहारे पथभ्रष्ट नहीं होऊँगा।

लेख सम्भवत: दिन प्रतिदिन बुरा होता जा रहा है। आज इतना ही पर्याप्त है। तुम वहाँ के समाचार लिखना।

५३

केम्ब्रिज
१० मार्च (१९२०)

हेमन्त,

तुम्हारा विस्तृत पत्र मिला था। कई बार पढ़े बिना इसका उत्तर नहीं दे सकूँगा। इसी कारण इस डाक से इसका उत्तर नहीं दे रहा हूँ। केवल काम की बातें लिख रहा हूँ।

१—व्यय की बात।

पहली बार कुर्ता और अन्य सामान के लिए जो व्यय होगा उसके अतिरिक्त मेरे विचार से दो सौ पचास पौण्ड में काम चल सकता है। सम्भवतः तुम सामान्य विद्यार्थी के रूप में प्रवेश नहीं लोगे, इसलिए तुम्हारा वक्तव्य शुल्क नहीं लगेगा। सामान्य विद्यार्थी को काम चलाना कठिन है, किन्तु मेरा विचार है कि शोध-छात्र को कोई कठिनाई नहीं होगी। यहाँ वर्ष में तीन अवधि निश्चित हैं।

बहुत सोचने पर उलझन में पड़ जाता हूँ कि दो सौ पचास पौण्ड से काम चलेगा या नहीं। यहाँ भोजन और निवास-स्थान आदि में चार सप्ताह में (एक माह कहा जा सकता है) १५ से १६ पौण्ड से कम का व्यय होना असम्भव है। किसी-किसी कालेज में व्यय और भी अधिक है। इसके अतिरिक्त रहा विश्व-विद्यालय शुल्क और पुस्तकें खरीदना। तुम्हें एक सुविधा सामान्य विद्यार्थी की अपेक्षा मिलेगी। वह यह कि वक्तव्य शुल्क कम लगेगा। यहाँ विश्वविद्यालय के सभी व्यय का ब्यौरा अवधि के अन्त में बनकर आता है। वर्ष में तीन निश्चित अवधि हैं। अन्तिम ब्यौरा पर्याप्त भारी बनकर आता है। किसी-किसी कालेज में तो ब्यौरा अत्यन्त भारी बनता है। अवधि के भीतर २० पौण्ड से काम चलाना तुम्हारे लिए असम्भव होगा। किन्तु कुछ भरोसा इस बात का है कि अवधि में केवल दो माह बीतते हैं। शेष दो माह में खाने-पीने के अतिरिक्त और किसी प्रकार का व्यय नहीं लगता। इस कारण उस समय प्रतिमाह १५ पौण्ड से अधिक व्यय नहीं होना चाहिए। इस प्रकार अन्त में सम्भवतः २५० पौण्ड में निर्वाह हो जाएगा परन्तु इस सम्बन्ध में दृढ़तापूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मेरे विचार से तो तुम्हें कुछ और अधिक रुपयों का प्रबन्ध करना चाहिए, जिससे कभी आवश्यकता पड़े तो काम आ जाएँ। सम्भव है हेम बाबू (दत्तगुप्त) तुमको कुछ रुपये उधार दे दें। वह रुपया स्थायी जमा-खर्च में तुम्हारे नाम से रहेगा। यदि आवश्यकता न पड़ी तो

वह सूद सहित अपने रुपये वापस ले लेंगे और यदि व्यय हो गए तो तुम बाद में कमाकर उनका उधार चुका देना।

तुम्हें छात्रवृत्ति में जो आवश्यकता के लिए धन मिलेगा उससे सम्भवतः सब व्यय नहीं चल पाएगा।

२—पढ़ाई के सम्बन्ध में।

विलायत में पढ़ने के तीन उपाय हैं, लन्दन की डी० लिट० और आक्सफोर्ड की डिग्री, अथवा केम्ब्रिज की डिग्री। आक्सफोर्ड के सम्बन्ध में अधिक नहीं जानता। मालूम करके समाचार दूँगा। केम्ब्रिज में अब केवल बी० ए० डिग्री है। वह डिग्री तुम सामान्य विद्यार्थी की भाँति परीक्षा देकर प्राप्त कर सकते हो अथवा शोध-स्नातक के रूप में शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करके प्राप्त कर सकते हो।

निश्चित ही तुम शोध-स्नातक होगे। इस वर्ष केम्ब्रिज में पी-एच० डी० खोलने का नया प्रस्ताव हो रहा है। सम्भवतः अक्टूबर की अवधि से पूर्व ही इसका सब प्रबन्ध हो जाएगा। डा० तारपोरवाला सम्भवतः तुम्हें बता सकते हैं कि लन्दन, आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज में से कौन-सा स्थान तुम्हारे लिए लाभदायक होगा। व्यय के लिए लन्दन सबसे अधिक अनुकूल है परन्तु लन्दन विश्वविद्यालय में अधिकांशतः एम० ए० परीक्षा से मुक्त नहीं करते और एम० ए० की परीक्षा देना है एक पूरा झंझट। सुनीति बाबू को मुक्त किया था, परन्तु सुशील डे को मुक्त करना नहीं चाहा। लन्दन का वातावरण भी लिखाई-पढ़ाई के लिए सर्वथा प्रतिकूल है। मेरा अपना विचार है कि केम्ब्रिज अथवा आक्सफोर्ड की पी-एच० डी० डिग्री के लिए पढ़ना श्रेष्ठ होगा। और आशा है कि अक्टूबर से पूर्व ही केम्ब्रिज में पी-एच० डी० का प्रबन्ध हो जाएगा।

जब तुम राजकीय शोध-छात्र हो तो तीनों ही स्थानों पर प्रोफेसर कोजेजी के द्वारा आवेदन करना होगा। आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज में आज-कल प्रवेश मिलना कठिन है। फिर भी आशा है कि शोध-स्नातक को प्रवेश मिलने में कठिनाई न होगी। सुनीति बाबू तुम्हें भली भाँति बता सकते हैं कि लन्दन में रहने में उन्हें कैसी सुविधा और असुविधा हुई।

जब अवधि अक्टूबर के शुरू में आरम्भ हो रही है तब बहुत पहले आने से कोई लाभ नहीं होगा। यहाँ जून के बाद लम्बी छुट्टियाँ हैं। तुम्हारा अप्रैल की अवधि में आना कठिन है, तब अक्टूबर की अवधि के लिए आना ही उचित है। आज इतना ही पर्याप्त है। इति।

सुभाष

५४

केम्ब्रिज
२३–३–२०

तुम राजकीय छात्रवृत्ति लेकर यहाँ आ रहे हो, यह जानकर प्रसन्नता हुई। प्रवेश कहाँ लोगे इस सम्बन्ध में शीघ्र ही एक निश्चय पर पहुँचकर तुम्हें यहाँ आवेदन करना चाहिए। फिर रुपयों के सम्बन्ध में। तुमको छात्रवृत्ति के अतिरिक्त पचास पौण्ड का प्रबन्ध करना पड़ेगा। सम्भव है कि आवश्यकता न पड़े परन्तु अधिक सम्भावना इसी बात की है कि आवश्यकता पड़ेगी। बाद में अतिरिक्त व्यय की बात है। सुना है कि राजकीय छात्रवृत्ति में परिधान-व्यय के लिए कुछ भी नहीं मिलता। मेरा अनुमान है कि कुल मिलाकर वस्त्रों में एक हज़ार रुपये व्यय होंगे (सारे सामान सहित)।

तुम्हारी भेजी हुई एम० ए० की लिस्ट यथा समय मिल गई।

तुम्हारे लम्बे पत्र में बहुत कुछ सत्य है परन्तु दो विषयों में तुमने सच नहीं कहा। मुझे संन्यासी कहा, किन्तु संन्यासी कहने से मुझे दु:ख नहीं होता। मैं संन्यासी नाम के अयोग्य हो सकता हूँ परन्तु संन्यासी कहने से अब भी मैं पहले के समान गौरव अनुभव करता हूँ।

दूसरे मैंने किसी से नहीं कहा कि आई० सी० एस० पास करके बंगाल नहीं लौटूँगा। तुम्हारे पत्र का किसी सीमा तक पूर्णत: समर्थन करता हूँ। उत्तर देने से पत्र विस्तृत हो जाएगा। जब तुम आ ही रहे हो तब सामने ही सारी बातें हो जावेंगी। अब रहने दो।

मैं स्वस्थ हूँ। तुम कैसे हो? इति।

५५*

केम्ब्रिज
२३ मार्च (१९२०)

चारु,

तुम्हारा पत्र प्राप्त करके तथा परीक्षाफल जानकर प्रसन्नता हुई। अब तुम जीवन-परीक्षा में प्रवेश कर रहे हो। आशा है तुम्हें सभी

* श्री चारुचन्द्र गांगुली के नाम।

परीक्षाओं में समान रूप से सफलता मिलेगी।

अभी तक मुझे अधिक व्यक्तियों से मिलने का अवसर नहीं मिल पाया है। सम्भवत: अगस्त की परीक्षा के उपरांत पर्याप्त अवकाश मिले।

नीलमणि, सत्येन, धर आदि अच्छे हैं। प्राणकृष्ण पारिजा का वनस्पति-शास्त्र सम्बन्धी शोध-कार्य उत्तम प्रकार से चल रहा है। क्या तुम्हें विदेश आने की कोई आशा नहीं है? हमको यहाँ भारत के सभी समाचार मिल जाते हैं और भारत के सम्बन्ध में यथेष्ट रूप में आलोचना भी प्रकाशित होती है। जिन्होंने अपने देश के सम्बन्ध में कभी नहीं सोचा वे भी यहाँ आकर बिना सोचे नहीं रह सकते। मैं विनम्र भाव से पूछता हूँ, तुमने मेरे सभी पत्रों का उत्तर क्यों नहीं दिया? और मेरा पत्र न मिलने पर भी क्या मुझे पत्र लिखना उचित नहीं?

तुम्हें मेरा एक काम करना पड़ेगा। डॉ० वार्ड के मनोविज्ञान के सम्बन्ध में डॉ० पी० के० राय ने जो पुस्तिकायें लिखी हैं, वे मुझे चाहियें। इनके अतिरिक्त तुम्हारे एम० ए० के मनोविज्ञान के नोट्स भी चाहिएँ। अब मेरे पास पुस्तक पढ़ने का समय नहीं है, अत: नोट्स पर ही निर्भर रहना पड़ेगा।

यहाँ आकर और यहाँ के लोगों को देखकर तथा उनकी कार्य-प्रणाली को देखकर मैं अनुमान करता हूँ कि हमारे देश में दो चीजं बहुत आवश्यक हैं—(१) जन-साधारण में शिक्षा का प्रसार, और (२) श्रमिक आन्दोलन।

स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि भारत की उन्नति किसान, धोबी, मोची और मेहतरों से ही होगी। यह बात सत्य है। पाश्चात्य जगत ने यह दिखा दिया है कि 'जनशक्ति' क्या कर सकती है। उसका उज्ज्वलतम उदाहरण है विश्व का प्रथम समाजवादी गणतन्त्र—रूस। यदि कभी भारत की प्रगति हुई तो वह जनशक्ति के द्वारा ही होगी।

आधुनिक काल में जो देश उन्नत हुए हैं उनमें जनशक्ति का जागरण हुआ है।

स्वामी विवेकानन्द 'वर्त्तमान भारत' में कह गए हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णों के आधिपत्य के दिन बीत चुके। पाश्चात्य जगत में वैश्य वर्ण में होते हैं पूँजीपति और उद्योगपति। मजदूर दल के शक्तिशाली होते ही उनका समय भी समाप्त होने वाला है। भारत के शूद्र या अछूत जाति के लोगों ने इतने दिन केवल कष्ट भोगा

है। इन्हीं के त्याग और शक्ति से भारत की उन्नति होगी। इसलिए अब हमें जन-शिक्षा और श्रमिक संगठन का प्रयास करना चाहिए।

समय नहीं है, इसलिए आज इतना ही लिखूँगा। पुस्तकें अवश्य ही भेज देना। मैं स्वस्थ हूँ। आशा है तुम सकुशल होगे। इति।

तुम्हारा
सुभाष

५६*

ले० एन० सी०
एसेक्स
२२-६-२०

परमपूजनीय मँझले दादा,

आपका अभिनन्दन-सूचक पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। आई० सी० एस० परीक्षा पास करके मेरा ऐसा क्या लाभ हुआ है? परन्तु, इस संवाद से सब लोगों को जो प्रसन्नता हुई है और विशेष रूप से पिताजी और माताजी का हृदय इस दुर्दिन में कुछ हल्का हुआ, उसी में मुझे आनन्द है।

मैं यहाँ बेट्स परिवार के अतिथि के रूप में रह रहा हूँ। श्रीमती बेट्स के द्वारा अंग्रेज चरित्र का श्रेष्ठ परिचय मिलता है। बेट्स महोदय परिमार्जित बुद्धि के हैं, विचारों में उदार हैं और उनकी भावनाएँ विश्व-बन्धुत्व की हैं।.....रूस, पोलैंड, लिथुयानिया एवं आयरलैंड निवासियों और अन्य विदेशी मित्रों से उनके सम्बन्ध हैं। रूसी, आइरिश और भारतीय साहित्य में उनकी रुचि है। रमेशदत्त और रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में उनकी गहरी दिलचस्पी है। परीक्षा में चतुर्थ स्थान प्राप्त करने के कारण मुझे राशि-राशि अभिनन्दन मिल रहे हैं। किन्तु मुझे आई० सी० एस० होने से कोई आनन्द प्राप्त हुआ है, यह नहीं कहा जा सकता। यदि इस नौकरी में ही योग देना है तो इस परीक्षा के लिए पढ़ने-लिखने में जिस अनिच्छा के साथ सम्मिलित हुआ था उसी अनिच्छा से नौकरी भी करनी पड़ेगी।

यह मैं जानता हूँ कि नौकरी के जीवन में भारी वेतन और उसके पश्चात् पेन्शन मेरे लिए तैयार रहेगी। यदि दासत्व में कुशलता प्राप्त कर

* ये तीन पत्र श्री शरत्चन्द्र वसु को लिखे गये।

सकूँ तो एक दिन कमिश्नर के पद पर भी पहुँच सकता हूँ। योग्यता होने और दासता में प्रतिष्ठा प्राप्त करने से सम्भवत: किसी प्रदेश का चीफ सेक्रेटरी भी हो जाऊँ! परन्तु क्या नौकरी ही मेरे जीवन का उद्देश्य है? नौकरी में सांसारिक सुख मिलेगा, परन्तु क्या उसे आत्मा का सुख देकर खरीदूँ? मेरा यह विचार है कि आई० सी० एस० गोष्ठी के प्रत्येक व्यक्ति को नौकरी के कानून से जिस तरह बँधकर चलना पड़ता है, उसके साथ जीवन के उच्चादर्श को स्थिर रखने की चेष्टा करना, अपने आपको धोखा देने के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

साधारण लोगों के शब्दों में जिसको जीवन की उन्नति कहा जाता है उसके द्वार पर खड़े होकर मेरे मन की जो दशा हुई है वह आप समझ रहे हैं। इस नौकरी के पक्ष में कहने को बहुत कुछ हो सकता है। प्रतिदिन असंख्य लोग जिस अन्न की चिन्ता से कष्ट पा रहे और व्यग्र हो रहे हैं इससे वह चिन्ता सदैव के लिए समाप्त हो जाएगी। जीवन की सफलता-असफलता के सम्बन्ध में कोई शंका या संदेह भी नहीं रह जाएगा। परन्तु मेरे जैसे विचार वालों के लिए, जिनका जीवन एक अजीब बेढंगापन लिए हुए हो, निश्चिन्त रहना ही श्रेष्ठ मार्ग नहीं है। सांसारिक उच्चाकांक्षा जिसके जीवन में पथ-प्रदर्शन का कार्य नहीं करती, उसके लिए संशय एवं विपदा उतने भयानक नहीं होते। यह बात सत्य है कि सिविल सर्विस की शृङ्खला में बँधकर देश के लिए वास्तविक कार्य करना असम्भव है। सिविल सर्विस के कानूनों का अनुगामी होकर राष्ट्रीय तथा आध्यात्मिक भावों को उसमें मिलाया नहीं जा सकता। मैं समझ रहा हूँ कि मेरी इन सब बातों से कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि मेरी इच्छा-नुसार कुछ होगा नहीं। मैं जानता हूँ कि सिविल सर्विस के सम्बन्ध में आपका कोई मोह नहीं है। परन्तु, मेरे नौकरी छोड़ने से पिताजी को बहुत दु:ख होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। जितना शीघ्र हो सके वह मुझे जीवन में सुप्रतिष्ठित पद पर देखने को उत्सुक हैं। इसलिए मैं देखता हूँ कि आर्थिक और नैतिक कारणों से तथा स्नेह-बन्धन के कारण मैं अपनी ही अभिलाषा को केवल अपनी नहीं कह सकता। परन्तु इतनी बात तो कह ही सकता हूँ कि यदि मेरी इच्छा ही सर्वोपरि होती तो मैं सिविल सर्विस में कदापि नहीं जाता।

सम्भवत: आप यह कहेंगे कि इस नौकरी को ठुकराना नहीं चाहिए और इसमें प्रवेश करके इसके पाप को दूर करना चाहिए। ऐसा कहना असंगत भी नहीं है। किन्तु, यही किया जाय तो भी किसी दिन स्थिति

असह्य बन सकती है और तब त्याग-पत्र के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं रहेगा। यदि पाँच-दस वर्ष पश्चात् ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई तो जीवन में नए मार्ग खोजने का उपाय नहीं रहेगा। अभी तो मेरे सम्मुख मार्ग खुला है। एक बार नौकरी कर लेने से मेरा सम्पूर्ण तेज समाप्त हो जाएगा। मैं यह विनाशकारी प्रभाव अपने ऊपर किसी भी दशा में नहीं पड़ने दूँगा। मैं इस विषय में दृढ़प्रतिज्ञ हूँ। मैं विवाह नहीं करूँगा और जो सत्य समझूँगा उसको पालन करने के मार्ग में मुझे सांसारिक विवेचन के अधीन होकर नहीं रहना पड़ेगा।

अपने मन को देखते हुए मुझे तो संदेह है कि मैं सिविल सर्विस के योग्य भी हूँ, या नहीं। मेरा अनुभव है कि मुझमें जितनी शक्ति है उसे मैं और तरह से अपने और देश के उपकार में लगा सकूँगा। इस सम्बन्ध में आपके विचार जानकर मुझे प्रसन्नता होगी। मैंने पिताजी को इस विषय में कुछ नहीं लिखा। कह नहीं सकता कि क्यों नहीं लिखा, किन्तु उनके विचार भी जान लेता तो ठीक रहता।

५७

२६-१-२१

आप कह सकते हैं कि इस कुत्सित व्यवस्था का त्याग नहीं करना चाहिए अपितु इसमें प्रवेश करके अन्त तक इससे संघर्ष करना ही उचित होगा। किन्तु संघर्ष करना पड़ेगा सरकार की फटकार सहते हुए, स्वास्थ्य की हानि करके, स्थान-परिवर्तन सहन करते हुए, उन्नति के मार्ग बन्द करके। नौकरी में रहकर इस प्रकार जो साधारण कार्य किये जा सकते हैं वह नौकरी से पृथक् रहकर सम्पूर्ण समय काम में व्यतीत करने की अपेक्षा बहुत महत्त्वहीन हैं। श्रीयुत रमेशचन्द्र ने अवश्य ही सर्विस के बन्धन में रहते हुए बहुत कार्य सम्पादन किया था, फिर भी मेरा विचार है कि नौकरी से पृथक् रहकर उनका काम देश के लिए अधिक कल्याणकारी होता। इसके अतिरिक्त यहाँ वास्तविक प्रश्न नीति का है। नीति के अनुसार मैं इस शासन-यंत्र का पुर्जा होने की बात सोच ही नहीं सकता। कट्टरपन, स्वार्थान्धता, हृदयहीनता और सरकारी चालाकी से यह शासन-यंत्र भरा हुआ है और इसके वास्तविक उद्देश्य के दिन बीत चुके हैं।

अब मैं दो मार्गों के सन्धि-स्थल पर पहुँच गया हूँ और आश्रय प्राप्त करने के लिए कोई अन्य मध्यम मार्ग नहीं है। या तो मुझे इस नौकरी का मोह त्याग कर सम्पूर्ण हृदय से देश के लिए जीवन उत्सर्ग करना पड़ेगा, नहीं तो समस्त आदर्शों और आकांक्षाओं को तिलांजलि देकर सिविल सर्विस में प्रवेश करना पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि मेरे इस हठ के कारण स्वजन-सम्बन्धियों में से बहुत से लोग नाराज़ होंगे। परन्तु उनके विचारों से, निन्दा और प्रशंसा से, मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। अपने आदर्शवाद में मेरी आस्था है। इसीलिए आपके समक्ष स्थिति स्पष्ट कर रहा हूँ। पाँच वर्ष पूर्व मेरे ऐसे ही एक और प्रयास का आपने नैतिक समर्थन किया था। उस समय एक वर्ष तक मुझे भविष्य अन्धकारमय लगता रहा, फिर भी मैंने उसका परिणाम अपने ऊपर ले लिया। उस त्याग के लिए मैं अभी तक गर्व अनुभव करता हूँ। उस घटना का स्मरण करके मैं हृदय में शक्ति संचय कर रहा हूँ। मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ होता जा रहा है कि भविष्य में आत्म-त्याग के किसी भी आह्वान को मैं साहस और धैर्य के साथ स्वीकार करूँगा। पाँच वर्ष पूर्व आपने जो नैतिक समर्थन दिया था क्या वह आज फिर नहीं मिल सकता ?

इस बार पिता जी से अनुमति माँगने के लिए उन्हें अलग से पत्र लिख दिया है। मुझे आशा है कि यदि आप मेरे साथ एकमत हों तो पिताजी को भी सहमत करने का प्रयास किया जा सकता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस सम्बन्ध में आपके मत का विशेष महत्त्व है।

५८

१६–२–२१

मेरा 'विस्फोटक' पत्र अब तक आपको मिल गया होगा। उस पत्र में मैंने अपने जिस कार्यक्रम का उल्लेख किया था, वह विचार करने पर दृढ़ ही हुआ है। यदि चितरंजनदास इस आयु में संसार का सब कुछ त्याग कर जीवन की अनिश्चितता का सामना कर सकते हैं तो मुझ जैसे, संसार की समस्याओं से रहित तरुण व्यक्ति के जीवन में तो वह क्षमता और भी अधिक है। नौकरी छोड़ने पर भी मुझे काम का तनिक-सा भी अभाव नहीं होगा। शिक्षण, समाज-सेवा, समवाय प्रतिष्ठान, ग्राम-संगठन

आदि बहुत से कार्य हैं जिनमें हजारों कर्मठ तरुणों को व्यस्त रखा जा सकता है। व्यक्तिगत रूप से अब मैं शिक्षण और पत्रकारिता की ओर आकृष्ट हो रहा हूँ। राष्ट्रीय विद्यालय तथा नए समाचार-पत्र 'स्वराज' के काम में ही मेरे कुछ दिन व्यतीत हो सकते हैं। मैं आत्म-त्याग के आदर्श को लेकर ही जीवन प्रारम्भ करना चाहता हूँ। मेरे विचार में आडम्बर-रहित जीवन, उच्च विचार तथा देश के कार्यों में उत्सर्ग किया हुआ जीवन ही आकर्षक है। विदेशी शासक के अधीन नौकरी करना मैं घृणास्पद मानता हूँ। मेरे लिए अरविन्द घोष का मार्ग ही महान है। वह ही स्वार्थ-रहित अनुप्रेरणा का मार्ग है। सम्भवतः यह पथ रमेशदत्त के मार्ग की अपेक्षा कंटकाकीर्ण है।

माताजी और पिताजी को पत्र लिखकर मैंने दारिद्रय और सेवाव्रत ग्रहण करने की अनुमति माँगी है। इस पथ में भविष्य में लांछित होने का भय है इस कारण सम्भवतः वे व्यथित होंगे। मैं दुःख-क्लेश से भयभीत नहीं होता, उस प्रकार के दिन आने पर मैं भागूँगा नहीं। अपितु आगे बढ़कर दुःख सहन करूँगा।

५६*

दि यूनियन सोसायटी,
केम्ब्रिज
१६ फरवरी १६२१

प्रणाम के उपरांत निवेदन,

सम्भवतः आप मुझे नहीं जानते, परन्तु परिचय देने पर हो सकता है कि जान जाएँ। मैं आपको किसी गम्भीर विषय के सम्बन्ध में यह पत्र लिख रहा हूँ परन्तु काम की बात आरम्भ करने से पूर्व मुझे अपनी गम्भीरता प्रमाणित करनी पड़ेगी। अपना परिचय मैं स्वयं देता हूँ।

मेरे पिता श्री जानकीनाथ वसु कटक में वकालत करते हैं और कई वर्ष पूर्व वहाँ के राजकीय वकील थे। मेरे एक ज्येष्ठ भ्राता श्री शरत्-चन्द्र वसु कलकत्ता हाईकोर्ट में बैरिस्टर हैं। सम्भवतः आप मेरे पिताजी

* देशबन्धु चितरंजनदास के नाम।

को जानते हों ग्रौर मेरे ज्येष्ठ भ्राता को तो निश्चय ही जानते होंगे।

पाँच वर्ष पूर्व मैं कलकत्ता के प्रेसीडैन्सी कालेज में पढ़ता था। सन् १६१६ के ग्रान्दोलन के समय में मुझे विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया था। दो वर्ष पश्चात् मुझे कालेज में पढ़ने की ग्रनुमति मिली थी। फिर सन् १६१६ में मैंने बी० ए० पास किया ग्रौर ग्रानर्स में प्रथम श्रेणी प्राप्त की।

१६१६ के ग्रक्टूबर मास में मैं यहाँ ग्राया था। सन् १६२० के ग्रगस्त मास में मैंने सिविल सर्विस परीक्षा पास की ग्रौर चतुर्थ स्थान प्राप्त किया। इस वर्ष जून में मैं नैतिक विज्ञान ट्राइपॉस परीक्षा में सम्मिलित होऊँगा; उस माह में ही मैं यहाँ की बी० ए० की उपाधि प्राप्त करूँगा।

ग्रब काम की बातों पर ग्राता हूँ। सरकारी नौकरी करने की मेरी इच्छा नहीं है। मैंने पिताजी, भाईसाहब को घर लिख दिया है कि मैं नौकरी छोड़ना चाहता हूँ। ग्रभी तक मुझे उनका उत्तर नहीं मिला है। यदि मुझे उनकी ग्रनुमति प्राप्त करनी है तो दिखाना पड़ेगा कि नौकरी छोड़ने के उपरांत मैं कौन-सा वास्तविक कार्य करना चाहता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि नौकरी छोड़कर यदि मैं कमर कसकर देश के कामों में लग जाऊँ तो करने योग्य बहुत से काम मिल जायेंगे, जैसे राष्ट्रीय विद्यालय में शिक्षण, पुस्तक तथा समाचार-पत्र प्रणयन, प्रकाशन, ग्राम्य समिति-स्थापन, जनसाधारण में शिक्षा का प्रसार ग्रादि। परन्तु ग्रब यदि मैं घर में यह बतला सकूँ कि वस्तुत: मैं क्या कार्य करना चाहता हूँ तो सम्भवत: नौकरी छोड़ने के सम्बन्ध में सहज ही ग्रनुमति प्राप्त कर सकूँगा। यदि ग्रापकी ग्रनुमति लेकर नौकरी छोड़ सकूँ तो ग्रापकी इच्छानुसार मैं किसी भी कार्य में सहर्ष लग सकता हूँ।

ग्राप देश की स्थिति के सम्बन्ध में सबसे ग्रधिक जानते हैं। मैंने सुना है कि ग्रापने कलकत्ता तथा ढाका में राष्ट्रीय विद्यालय की प्रतिष्ठा की है ग्रौर ग्रब ग्रंग्रजी तथा बंगला में 'स्वराज' पत्र प्रकाशित करना चाहते हैं। मैंने यह भी सुना है कि बंगाल के ग्रनेक स्थानों पर ग्रापने ग्राम्य-समिति ग्रादि की स्थापना की है।

मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस स्वदेश-सेवा यज्ञ में ग्राप मुझे किस काम में लगा सकते हैं। मुझमें विद्या तथा बुद्धि कुछ भी नहीं है, परन्तु युवावस्था का उत्साह मेरे पास है। मैं ग्रविवाहित हूँ। मैंने दर्शन-शास्त्र पढ़ा है। कलकत्ता में उस विषय में मेरा ग्रॉनर्स था ग्रौर यहाँ भी उस

विषय में ट्राइपास पढ़ रहा हूँ। सिविल सर्विस परीक्षा की कृपा से कुछ सर्वांगीण शिक्षा प्राप्त की है, जैसे अर्थ-शास्त्र, राजनीति, इंगलैंड और यूरोप का इतिहास, अंग्रेजी कानून, संस्कृत, भूगोल आदि।

मुझे विश्वास है कि यदि मैं इस काम में लग सकूँ तो यहाँ के दो-एक बंगाली मित्रों को भी इस काम में खींच सकूँगा। परन्तु जब तक मैं इसमें नहीं लगता तब तक किसी को नहीं खींच सकता।

अब हमारे देश में कौन-कौन से क्षेत्रों में काम करने का अवसर होगा यह यहाँ से अनुमान नहीं लगाया जा सकता। मेरा विचार है कि देश लौटने पर कालेज में अध्यापन और समाचार-पत्रों में लिखना, इन दो ही कामों में मैं लग सकूँगा। मेरी इच्छा स्पष्ट योजना को लेकर नौकरी छोड़ने की है। यदि ऐसा कर सकूँ तो नौकरी छोड़ने के बाद मुझे सोचने में समय नष्ट नहीं करना पड़ेगा और मैं तुरन्त ही कर्मक्षेत्र में उतर सकूँगा।

आजकल आप बंगाल में स्वदेश-सेवा के प्रधान ऋत्विक् हैं। इस कारण आपको ही यह पत्र लिख रहा हूँ। आप लोगों ने भारत में जिस प्रकार आन्दोलन किए हैं, उनके समाचार, बाढ़ की लहरों की भाँति, निजी पत्र और समाचार-पत्रों के माध्यम से, यहाँ तक आ पहुँचे हैं। इसी कारण यहाँ भी मातृभूमि का आह्वान सुनाई पड़ता है। आक्सफोर्ड का एक मद्रासी छात्र अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़कर काम करने के लिए देश लौट रहा है। केम्ब्रिज में अभी कोई कार्य नहीं हुआ है फिर भी असहयोगिता के सम्बन्ध में बहुत चर्चा चल रही है। मेरा विचार है कि यदि कोई मार्ग दिखा सके, तो उस मार्ग का अनुसरण करने वाले लोग यहाँ हैं।

आप बंगाल में सेवा-यज्ञ के प्रधान ऋत्विक् हैं। इसलिए अपनी किंचित् विद्या, बुद्धि, शक्ति और उत्साह को लेकर आपके समक्ष मैं उपस्थित हो रहा हूँ। मातृ-भूमि के चरणों में उत्सर्ग करने के लिए मेरे पास कुछ विशेष नहीं है, केवल मन और यह तुच्छ शरीर है।

आपको पत्र लिखने का अभिप्राय आपसे केवल पूछना है कि आप इस महान् सेवा-यज्ञ में मुझको क्या काम दे सकते हैं। ज्ञात होने पर मैं घर पिताजी और भाई साहब को वैसा ही लिख सकूँगा और अपने मन को भी उसी प्रकार तैयार कर सकूँगा।

अब एक प्रकार से मैं सरकारी नौकर हूँ—आई० सी० एस० प्रशिक्षार्थी हूँ न। इसीलिए मैंने आपको पत्र लिखने का साहस नहीं किया

कि कहीं पीछे पत्र रोक लिया जाए। अपने एक विश्वासी मित्र प्रमथनाथ सरकार को मैं यह पत्र दे रहा हूँ। वह यह पत्र सीधे आपके हाथों में ही देंगे। मैं जब भी आपको पत्र भेजूँगा, इसी तरह भेजूँगा। आप अवश्य मुझे पत्र लिख सकते हैं क्योंकि यहाँ पत्र रोके जाने का भय नहीं है।

मैंने इस सम्बन्ध में किसी को समाचार नहीं दिया है, केवल घर में पिताजी और भाईसाहब को लिखा है। मैं अब सरकारी नौकर हूँ। अतः आशा करता हूँ कि जब तक नौकरी नहीं छोड़ दूँ, तब तक किसी से इस विषय में आप कुछ नहीं कहेंगे। मैं और कुछ कहना नहीं चाहता, मैं आज भी तैयार हूँ, केवल आप काम का आदेश दे दें।

मेरा अपना विचार है कि यदि आप 'स्वराज' समाचार-पत्र अंग्रेजी में प्रारम्भ करें तो मैं उसके सहायक सम्पादकों में कार्य कर सकता हूँ। यदि ऐसा भी सम्भव न हो तो मैं राष्ट्रीय विद्यालय में निम्न श्रेणियों के अध्यापन का कार्य कर सकता हूँ।

काँग्रेस के सम्बन्ध में मेरे मस्तिष्क में बहुत से प्रस्ताव हैं। मेरा विचार है कि काँग्रेस का एक स्थायी केन्द्र होना चाहिए, उसके लिए मकान की आवश्यकता है। वहाँ शोध-स्नातकों का एक दल रहेगा और वे लोग हमारे देश की पृथक्-पृथक् समस्याओं पर गवेषणा करेंगे। मैं जहाँ तक समझता हूँ भारतीय मुद्रा और विनिमय के सम्बन्ध में हमारी काँग्रेस की कोई स्थिर नीति नहीं है। बाद में देशी राज्यों के साथ काँग्रेस का कैसा व्यवहार होगा यह भी सम्भवतः निर्णय नहीं किया गया है। स्त्री एवं पुरुष मताधिकार के सम्बन्ध में काँग्रेस का क्या मत है, यह भी निश्चित नहीं है। सम्भवतः अभी काँग्रेस ने यह भी निश्चित नहीं किया है कि हमें दलित जातियों के सम्बन्ध में आगे चलकर क्या करना है। इस विषय में (अर्थात् दलित वर्गों के सम्बन्ध में) कोई काम न करने के कारण मद्रास में आज समस्त अब्राह्मण लोग सरकार के समर्थक और राष्ट्रीयतावादियों के विरोधी हो गए हैं।

मेरा विचार है कि काँग्रेस को एक स्थायी कर्मचारी वर्ग रखना आवश्यक है। वह एक-एक समस्या को लेकर गवेषणा करें। प्रत्येक अपने-अपने विषय की तत्कालीन स्थिति तक के तथ्य और आँकड़ें संग्रह करे। तथ्य और आँकड़े संग्रह हो जाने पर काँग्रेस कमेटी हर समस्या के सम्बन्ध में एक नीति निर्धारित करे। आज अनेक प्रकार की समस्याओं के सम्बन्ध में काँग्रेस की कोई निश्चित नीति नहीं है। इसी कारण मेरा विचार है

कि काँग्रेस का एक स्थायी भवन होना चाहिए और स्थायी शोध-छात्रों का एक वर्ग होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त काँग्रेस को एक गुप्तचर विभाग खोलना आवश्यक है। गुप्तचर विभाग में देश के सम्बन्ध में वर्त्तमान काल तक के सभी समाचार (तथ्य और आँकड़ों सहित) जिस प्रकार भी हो सकें एकत्र करने पड़ेंगे। प्रचार विभाग हर प्रादेशिक भाषा में छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित करेगा और उन्हें जनसाधारण में बिना मूल्य के वितरित करेगा। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय जीवन के सम्बन्ध में एक-एक समस्या को लेकर भी प्रचार विभाग एक-एक पुस्तक प्रकाशित करेगा। इन पुस्तकों में काँग्रेस की नीति समझाई जाएगी। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया जाएगा कि किन कारणों से काँग्रेस ने ऐसी नीति अपनाई है। मैंने बहुत कुछ लिख दिया। आपके लिए तो यह सब बातें पुरानी हैं। नया अनुभव होने के कारण मैं इस सम्बन्ध में लिखे बिना न रह सका। मेरा विचार है कि काँग्रेस के बहुत से काम अभी हमारे सामने पड़े हैं। यदि आप लोग चाहें तो मैं इस सम्बन्ध में भी सम्भवतः कुछ कर सकता हूँ।

आपके पत्र के लिए मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। किन-किन कार्यों में आप मुझे नियुक्त कर सकते हैं यह जानने को मैं बहुत उत्सुक हूँ। यदि आप पत्रकारिता सीखने के लिए किसी को विलायत भेजना चाहते हों तो मैं उस काम को करने का दायित्व ले सकता हूँ। यदि यह कार्य मुझे दिया जाए तो यात्रा-व्यय और परिधान का व्यय बच जाएगा। इस काम का दायित्व लेने से पूर्व मैं नौकरी अवश्य छोड़ दूँगा। मेरे रहने और खाने का व्यय अवश्य देना पड़ेगा क्योंकि नौकरी छोड़ने के पश्चात् घर से खर्चा मँगाना सम्भवतः युक्तिसंगत नहीं होगा।

मेरा अपना विचार है कि यदि नौकरी छोड़ दी तो जून के महीने में रवाना हो जाऊँगा, किन्तु यदि आवश्यकता हुई तो आगे-पीछे भी जा सकता हूँ।

मेरी वाचालता के लिए क्षमा कीजियेगा। आशा है कि आप उत्तर शीघ्र देंगे। मेरा प्रणाम स्वीकार करें। इति।

प्रणत्
सुभाषचन्द्र वसु

मेरा पता :
फिट्ज विलियम हाल
केम्ब्रिज

६०*

२३–२–२१

……जब से आई० सी० एस० परीक्षा का परिणाम घोषित हुआ है तभी से मेरे मन में यह प्रश्न उठ रहा है कि नौकरी में रहकर मैं देश के अधिक काम आ सकता हूँ या देश के लिए नौकरी छोड़ना ही श्रेयस्कर रहेगा। इस प्रश्न का उत्तर अब मुझे मिल गया है। मैंने इस सम्बन्ध में दृढ़ निश्चय कर लिया है कि जन साधारण में रहकर ही मैं देश का अधिक कल्याण कर सकता हूँ। सरकारी नौकरी में रहकर देश का कोई भला नहीं किया जा सकता, यह मैं नहीं कहता। किन्तु, मैं यह कहना चाहता हूँ कि सरकारी नौकरी की शृङ्खला से मुक्त रहकर जो देशसेवा की जा सकती है उसकी अपेक्षा नौकरी में रहकर की जाने वाली सेवा अत्यन्त साधारण है। फिर नीति की ओर भी ध्यान देना चाहिए। मैं विदेशी शासन की आधीनता स्वीकार कर लूँ, यह असम्भव है। जनसेवा के लिए समस्त सांसारिक आकांक्षाओं का त्याग आवश्यक है। सांसारिक उन्नति का पथ पूर्णत: छोड़ देने से ही राष्ट्रीय कामों में पूर्णरूप से आत्मोत्सर्ग किया जा सकता है। मेरे मानस-चक्षुओं के समक्ष अरविन्द घोष का दृष्टांत साकार रहता है। मैं अनुभव करता हूँ कि इस आत्मोत्सर्ग के द्वारा ही ऐसे दृष्टांतों का दावा मिटा सकता हूँ। मेरे चारों ओर का वातावरण भी अब उसके अनुकूल है।

* श्री शरत्चन्द्र वसु के नाम।

६१*

दि यूनियन सोसायटी
केम्ब्रिज
२ मार्च, १९२१

प्रणाम के उपरांत निवेदन,

कई दिन पूर्व मैंने आपको पत्र लिखा था, आशा है कि वह आपको मिल गया होगा।

सम्भवतः आपको यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि मैं नौकरी छोड़ने के सम्बन्ध में एक प्रकार से दृढ़-संकल्प हो चुका हूँ। मैं किस काम के उपयुक्त हो सकता हूँ यह आप मेरे पत्र से जान गए होंगे। यहाँ यह समझ में नहीं आता कि देश में जाकर कौन-सा काम करना उचित रहेगा। आप लोग कर्म-क्षेत्र में हैं, इस कारण भली भाँति जानते हैं कि किस काम का अवसर इस समय है और किस प्रकार के कार्यकर्त्ता की आवश्यकता है।

मेरा यह अनुरोध है जब तक मेरे नौकरी छोड़ने का संवाद न मिले तब तक इस सम्बन्ध में किसी को कुछ भी न बतायें। यदि मार्ग व्यय मिल गया तो मैं नौकरी छोड़कर जून के अन्त में देश जाना चाहता हूँ। मैं यह जानने को उत्सुक हूँ कि देश लौटने पर किस प्रकार के कार्य में लग सकूँगा। अपने मन को भी मैं उसी प्रकार से तैयार करना चाहता हूँ और इसके अतिरिक्त देश जाकर जैसा काम प्रारम्भ करूँगा उसके योग्य यहाँ रहते हुए शिक्षा प्राप्त करना भी सम्भव है। आशा है आप जितना शीघ्र हो सकेगा उत्तर देंगे।

मेरे मन में कई विचार उठते हैं। उनसे मैं आपको अवगत करा रहा हूँ :—

(१) मैं राष्ट्रीय विद्यालय में शिक्षण कार्य कर सकता हूँ। मैंने कुछ पाश्चात्य दर्शन-शास्त्र पढ़ा है।

(२) आप लोग यदि कोई दैनिक समाचार-पत्र अंग्रेजी में प्रकाशित करें तो मैं सहायक-संपादक-वर्ग में कार्य कर सकता हूँ।

(३) आप लोग यदि काँग्रेस के सम्बन्ध में शोध-विभाग खोलें तो मैं उसमें भी काम कर सकता हूँ। पिछले पत्र में इस सम्बन्ध में मैंने कुछ लिखा भी था। मेरा विचार है कि शोध-छात्रों के एक दल की हमें

* देशबन्धु चितरंजनदास के नाम।

आवश्यकता है। वे जातीय जीवन की एक-एक समस्या के सम्बन्ध में तथ्य एकत्र करेंगे। काँग्रेस उसकी एक समिति नियुक्त करेगी और वह समिति उन सब तथ्यों की विवेचना करके प्रत्येक विषय में एक नीति निर्धारित करेगी।

मुद्रा और विनिमय के सम्बन्ध में काँग्रेस की कोई निश्चित नीति नहीं है। फिर श्रमिक और कारखाने सम्बन्धी कानून-निर्माण के बारे में भी काँग्रेस की कोई विशेष नीति नहीं है। भिक्षुक और निर्धन लोगों के उद्धार के सम्बन्ध में भी काँग्रेस की नीति निश्चित नहीं है। काँग्रेस की नीति तो इस सम्बन्ध में भी निश्चित नहीं है कि स्वराज्य मिलने पर हमारे संविधान का क्या रूप होगा। मेरे विचार से काँग्रेस-लीग योजना एकदम पुरानी हो गई है। स्वराज्य के आधार पर अब हमें भारत का संविधान निर्मित करना पड़ेगा।

आप यह कह सकते हैं कि काँग्रेस तो अब वर्त्तमान शासन को समाप्त करने को व्यग्र है अतः विध्वंसक काम न करके सृजनात्मक कार्य करना असम्भव होगा। परन्तु मेरा विचार है कि अभी से विध्वंस के साथ ही सृजन भी आरम्भ कर देना चाहिए।

राष्ट्रीय जीवन की किसी भी समस्या के सम्बन्ध में नीति निर्धारित करनी हो तो बहुत दिनों तक चिन्तन और गवेषणा की आवश्यकता होती है। अतएव अभी से गवेषणा करना आवश्यक है। यदि काँग्रेस पूर्ण कार्य-क्रम तैयार कर सके तो जिस दिन स्वराज्य प्राप्त होगा उस दिन हमें किसी नीति के सम्बन्ध में सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। फिर काँग्रेस का एक गुप्तचर विभाग होना चाहिए जहाँ देश भर के सम्पूर्ण समाचार मिल सकें। इस विभाग द्वारा छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित होनी चाहिएँ। एक-एक पुस्तक में एक-एक विषय रहे, जैसे पिछले दस वर्षों में कितने बालकों का जन्म हुआ और कितने व्यक्तियों की मृत्यु हुई, और यह भी उल्लेख हो कि किस-किस रोग से कितने व्यक्ति मरे।

इसके उपरांत गत दस वर्षों की भारत की आय-व्यय की स्थिति का विवरण पृथक् पुस्तक में प्रकाशित होना चाहिए। किन स्रोतों से आय हुई, किस कार्य में व्यय हुआ। इस प्रकार लघु पुस्तिकाओं के द्वारा देश में देश-सम्बन्धी समाचारों का प्रचार करना चाहिए।

(४) जनसाधारण में शिक्षा-प्रसार की दिशा में कार्य करने की बहुत सुविधाएँ हैं। इन कार्यों के साथ सहकारी बैंकों की स्थापना करना भी आवश्यक है।

(५) मेरा विचार है कि कई क्षेत्रों में कार्य करने का अवसर है। परन्तु यह आपको निश्चित करना होगा कि आप मुझसे किस विभाग में कार्य लेना चाहते हैं। शिक्षण और पत्रकारिता सम्भवत: मेरे मनोनुकूल कार्य होगा। इनसे मैं कार्यारम्भ कर सकता हूँ, फिर अवसर के अनुरूप दूसरे कार्य में हाथ डाल सकता हूँ। मेरे लिए नौकरी छोड़ना दरिद्रता को अपनाना है। इस कारण वेतन के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहूँगा, केवल जीवन-निर्वाह का व्यय ही मेरे लिए पर्याप्त होगा।

यदि मैं कमर कस कर कर्म-क्षेत्र में उतर पड़ूँ तो मेरा विचार है कि मैं अपने साथ यहाँ के दो-एक बंगाली मित्रों को भी खींच सकता हूँ। स्वदेश-सेवा के जिस महायज्ञ का आयोजन हो रहा है उसमें आप प्रधान पुरोहित हैं। मैं जो कुछ कहना चाहता था वह कह चुका, अब आप मुझे कार्य बताएँ।

मुझसे नौकरी पर यहाँ पाँच आदमी पूछेंगे कि देश लौटकर क्या कार्य करोगे? अतएव अपते सन्तोष के लिए और पाँच आदमियों के निकट आत्मन्याय के लिए मैं यह जानने को उत्सुक हूँ कि आप मुझे कौन-सा काम दे सकते हैं।

आशा है आप यह सब बातें कुछ दिन तक गुप्त रखेंगे। मेरा प्रणाम स्वीकार करें। इति।

विनीत
सुभाषचन्द्र वसु

६२*

आक्सफोर्ड
६–४–२१

पिताजी का विचार है कि आत्मसम्मान वाले व्यक्ति के लिए सिविल सर्विस की नौकरी नई शासन व्यवस्था में असह्य नहीं होगी, क्योंकि दस वर्ष के भीतर इस देश में स्वायत्त शासन अवश्य आ जाएगा। मेरा जीवन मुझे नई शासन व्यवस्था में सह्य होगा या नहीं यह मेरा प्रश्न नहीं है, अपितु मैं तो यह सोचता हूँ कि नौकरी में

* श्री शरत्चन्द्र वसु के नाम।

रहकर भी मैं देश का कुछ हित-साधन कर सकता हूँ या नहीं। मेरा मुख्य प्रश्न नीतिगत है। वर्त्तमान स्थिति में क्या हमें विदेशी शासन-तन्त्र की अधीनता स्वीकार करके ढेर सारे रुपयों के लिए आत्म-विक्रय करना उचित है ? जो लोग इतने दिनों में प्रतिष्ठित हो चुके हैं अथवा नौकरी करने के अतिरिक्त जिनके सामने अन्य कोई उपाय नहीं है, उनकी बात और है। परन्तु सुविधाजनक दशा होते हुए भी क्या मुझे इतनी शीघ्रता से और इस प्रकार आधीनता स्वीकार करनी चाहिए ? मेरा विश्वास है कि जिस दिन नौकरी के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दूँगा उस दिन से मैं स्वाधीन मनुष्य नहीं रहूँगा।

यदि हम पूरा मूल्य देने को तत्पर हों तो दस वर्ष से पूर्व ही स्वायत्त शासन अर्जित कर सकते हैं। वह मूल्य है आत्मबलिदान और त्याग। केवल आत्मत्याग और दुःख उठाने से ही राष्ट्रीय सौध निर्मित हो सकता है। यदि हम सब अपनी नौकरी की खूँटी से अटके हुए रहते हैं, अपने स्वार्थ की खोज में प्रवृत्त रहते हैं, तो पचास वर्ष में भी स्वायत्त शासन नहीं मिल सकता।

यदि प्रत्येक मनुष्य को सम्भव न हो तो कम से कम प्रत्येक परिवार को आज मातृ-भूमि के चरणों में अर्घ्य देना पड़ेगा। पिताजी मुझे इस आत्मत्याग से बचाना चाहते हैं। मुझे मेरे ही स्वार्थ के लिए इस दुःख और कष्ट से बचाने की उनकी इच्छा है। उस इच्छा में मेरे प्रति उनका कितना स्नेह निहित है, इसे न समझूँ, ऐसा हृदयहीन मैं नहीं हूँ। उन्हें स्वाभाविक रूप से शंका होती है कि सम्भवतः तरुण-सुलभ उत्तेजना के झोंके में मैं कुछ कर बैठूँगा। किन्तु, मेरा विश्वास है कि ऐसा त्याग किसी न किसी को करना ही पड़ेगा।

इस काम के लिए यदि कोई व्यक्ति आगे आता तो उस कारण से ही मैं पीछे हट सकता था। कम से कम कुछ और भी सोचता-देखता। परन्तु, दुर्भाग्य से वैसी स्थिति नहीं है और अमूल्य समय व्यर्थ ही बीता जा रहा है। यह सच है कि अब तक किसी व्यक्ति ने, जो नागरिक (सिविलियन) नौकरी में हो, त्यागपत्र देकर आन्दोलन में सम्मिलित होने का साहस नहीं किया। भारत को युद्ध का आह्वान मिल चुका है, फिर भी उसका किसी ने उचित उत्तर नहीं दिया। कहा जा सकता है कि समस्त ब्रिटिश भारत के इतिहास में एक भी भारतीय ने स्वेच्छा से देश-सेवा के कारण सिविल सर्विस का त्याग नहीं किया। देश के सर्वोच्च कर्मचारियों द्वारा निम्नतर श्रेणी के लोगों के सामने उदाहरण उपस्थित

करने का समय आ चुका है। ऊँची सरकारी नौकरी वाले यदि आधीनता की प्रतिज्ञा को वापिस ले लें, यहाँ तक कि उसकी इच्छा ही प्रकट कर दें तो शासन-तन्त्र समाप्त हो जाएगा।

इस प्रकार इस त्याग से अपनी रक्षा करने का कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता। इस त्याग का अर्थ मैं भली भाँति जानता हूँ। दारिद्रय, दुःख, क्लेश और कठिन परिश्रम तो है ही, और भी अनेक कष्ट हैं जिनके सम्बन्ध में कहना आवश्यक नहीं है। परन्तु आपको यह समझाना कठिन नहीं कि यह त्याग करना ही पड़ेगा, जान-बूझकर करना पड़ेगा। आपने जो देश लौटने के उपरांत पद त्याग करने का परामर्श दिया है उसके विरुद्ध दो-एक बातें हैं। प्रथम तो यह कि दासता के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करना मेरे लिए बहुत कठिन है। दूसरे यदि अब नौकरी में प्रवेश करता हूँ तो नियमानुसार दिसम्बर अथवा जनवरी से पूर्व देश नहीं लौट सकता। यदि अब पद त्याग करता हूँ तो जुलाई में लौट सकता हूँ। छः माह में स्थिति में बहुत परिवर्तन हो जाएगा। उचित समय पर प्रेरणा और नेतृत्व न मिलने से आन्दोलन धीमा पड़ सकता है। देर में उत्तेजना पाकर सम्भवतः वह सफल भी न हो। मेरा विचार है कि फिर इस प्रकार का आन्दोलन चलाने में बहुत वर्ष लग जायेंगे। अतएव वर्त्तमान आन्दोलन की लहरों को जहाँ तक हो सके काम में लाना ही उचित होगा। यदि मुझे पद त्याग करना ही है तो दो दिन या एक वर्ष पश्चात् करने से भी मेरा या और किसी का कुछ हानि-लाभ नहीं होगा, परन्तु देर करने से हो सकता है कि आन्दोलन को नुकसान पहुँचे। मैं जानता हूँ कि मेरे हाथ में आन्दोलन को सहायता पहुँचाने की बहुत कम शक्ति है। फिर भी यदि कर्त्तव्य पालन करके सन्तोष प्राप्त कर सकूँ तो वह भी बहुत बड़ा लाभ है, यह तो कहना ही पड़ेगा। यदि किसी कारण से पदत्याग के संकल्प में कोई परिवर्तन करूँगा तो तुरन्त पिताजी को तार भेज दूँगा, जिससे उनकी आशंका मिट जाए।

६३*

फिट्ज विलियम हाल, केम्ब्रिज
२२ अप्रैल १६२१

भाई चारु,

तुम्हें ज्ञात है कि कर्त्तव्य के आह्वान पर एक बार जीवन-नौका बहा दी थी, अब वह नौका एक रमणीक कानन में पहुँच रही है। शक्ति, सम्पत्ति और धन करतलगत हैं परन्तु हृदय में गम्भीर ध्वनि सुनाई पड़ रही है—"तुझे इससे आनन्द नहीं मिल सकता। तुम्हारा एक मात्र आनन्द केवल सागर की तरंगों पर ही घूमने में है।"

मैंने तो उस पुकार के आह्वान पर ही जीवन-नौका बहा दी। अब वह ही जानते हैं कि यह नौका कहाँ पहुँचेगी।

अभी तक निर्णय नहीं कर सका हूँ कि क्या करना चाहिए। एक इच्छा होती है कि रामकृष्ण मिशन में योग दूँ। कभी मन करता है कि बोलपुर चला जाऊँ, फिर इच्छा होती है कि संवाददाता बनूँ। देखता हूँ कि क्या होता है। इति।

तुम्हारा
सुभाष

६४†

केम्ब्रिज
२८–४–२१

मेरे पदत्याग के सम्बन्ध में फिट्ज विलियम हाल के सेन्सर रेडावै साहब से वार्तालाप हुआ था। मैंने उनसे जो आशा की थी उसके ठीक विपरीत हुआ। उन्होंने मेरी विचारधारा का उत्साह के साथ समर्थन किया। मेरे विचार-परिवर्तन को जानकर वह विस्मित हो गए। इसका कारण यह था कि उन्होंने किसी भारतीय को अभी तक ऐसा करते नहीं देखा था। जब मैंने कहा कि मैं संवाददाता बनूँगा तब उन्होंने कहा कि

* श्री चारुचन्द्र गांगुली के नाम।

† ये सात पत्र श्री शरत्चन्द्र वसु को लिखे गये थे।

गतानुगतिक सिविल सर्विस की अपेक्षा संवाददाता का जीवन श्रेष्ठ है।

यहाँ आने से पूर्व मैं तीन सप्ताह तक आक्सफोर्ड में रहा था और वहाँ ही मैंने अपना जीवन-दर्शन निश्चित किया था। पिछले कई माह से मैं इस बात से विशेष चिन्तित हूँ कि किसी भी ऐसे कार्य से कैसे बचा जाय जिससे माताजी पिताजी एवं अन्य स्नेही-जनों को दुःख पहुँचता हो—परन्तु समझ में नहीं आता। इसी कारण नए मार्ग के किनारे खड़े होकर आज पिताजी और माताजी की स्पष्ट इच्छा तथा आपके उपदेश का विरोध करना पड़ रहा है। मैं किसी भी मार्ग पर चलता रहूँ आपका अभिनन्दन करूँगा। सर्विस में योगदान करने के विरोध में मेरी प्रधान युक्ति यह थी कि प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके मुझे एक ऐसे विदेशी शासन-तंत्र की आधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी जिसके इस देश में रहने का नैतिक अधिकार मैं कदापि स्वीकार रहीं करता। एक बार प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके तीन वर्ष काम करूँ अथवा तीन दिन, इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। इससे मनुष्य का अधःपतन होता है और आदर्श की हानि भी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जीवन के अन्तिम दिनों में जो सरकारी उपाधि का मुकुट पहनकर मन्त्रित्व के सिंहासन पर बैठ रहे हैं उसका कारण यह है कि वे एडमान्ड बर्क द्वारा वर्णित सुविधावाद के दर्शन में विश्वास करते हैं। सुविधावाद की नीति ग्रहण करने की स्थिति अभी नहीं आई है। हमें तो जाति का संगठन करना पड़ेगा और हैम्पडन तथा क्रामवेल के समझौता-रहित आदर्शवाद के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से वह सम्भव नहीं होगा। मुझे यह विश्वास हो गया है कि ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध-विच्छेद करने का समय अब आ गया है। प्रत्येक सरकारी कर्मचारी, वह भले ही निम्न चपरासी हो अथवा प्रादेशिक गवर्नर, केवल ब्रिटिश सरकार की बुनियाद पक्की कर रहा है। सरकार को समाप्त करने का श्रेष्ठ उपाय है उससे पृथक् हो जाना। मैं टाल्सटाय की नीति सुनकर या गाँधी के प्रचार से मुग्ध होकर यह नहीं कह रहा हूँ अपितु अपनी स्वयं की अनुभूति से कह रहा हूँ।

कई दिन हुए मैंने त्यागपत्र दे दिया। स्वीकृत होने की सूचना अभी नहीं मिली है।

मेरे पत्र के उत्तर में, चितरंजनदास ने, देश में जो काम हो रहा है उसके सम्बन्ध में लिखा है। आजकल आन्तरिक प्रेरणा वाले कार्यकर्त्ताओं के अभाव का उल्लेख उन्होंने किया है। देश लौटने पर मनचाहा कार्य मुझे मिलेगा।······मुझे और कुछ भी नहीं कहना है। सिविल सर्विस के जीवन

में लौटने के सब मार्ग बन्द करके मैं देश सेवा में कूद पड़ा हूँ। आशा है इसका परिणाम शुभ ही होगा।

६५

केम्ब्रिज
१८-५-२१

सर विलियम ड्यूक मुझे त्यागपत्र वापिस लेने को सहमत करने की चेष्टा कर रहे हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में बड़े दादा से पत्रव्यवहार भी किया है। केम्ब्रिज के सिविल सर्विस बोर्ड के सेक्रेटरी स्वार्ट साहब ने भी मुझको मेरे सिद्धान्त की पुनर्विवेचना करने का परामर्श दिया है और मुझे बताया कि इन्डिया आफिस के निर्देशानुसार ही उन्होंने हस्तक्षेप किया है। मैं सर विलियम को बता चुका हूँ कि पूर्ण विवेचन के उपरांत ही मैंने अपना मार्ग चुना है।

६६

बरहामपुर जेल
सोमवार, ८-१२-२४

आदरणीय भाई साहब,

मैं यहाँ पिछले बुधवार को आ गया था, या कहना चाहिए कि मुझे ले आया गया था। अब मैं यहाँ सकुशल हूँ।

मुझे खेद है कि न तो अब मैं उस अंग्रेज और न उस कैथोलिक प्रचारक के विरुद्ध मानहानि के मुकदमे के सम्बन्ध में अपने वकीलों को निर्देश दे सकूँगा, और न ही मुझे मुकदमे की प्रगति के सम्बन्ध में कोई सूचना ही प्राप्त हो सकेगी। इस स्थानान्तरण का उद्देश्य अब मुझे पूर्ण-रूपेण स्पष्ट हो गया है।

आप कृपया श्री रमैया से, सेक्रेटेरियेट की उस मेज-कुर्सी को, जिन पर बैठकर मैं काम किया करता था, अलीपुर सैन्ट्रल जेल से हटवा देने के लिये कह दीजिये। पहले तो मेरा विचार उन्हें अपने साथ लाने का

था, परन्तु मैं उन्हें लाया नहीं हूँ। आप उनसे मेरे लिये 'नगरपालिका प्रशासन सम्बन्धी' पुस्तकें भिजवाने के लिये भी कह दीजिये। सम्भवतः ये पुस्तकें कारपोरेशन पुस्तकालय से उपलब्ध हो सकें।............

यह सम्भव है कि कुछ समय तक मैं आप लोगों में से किसी से भी भेंट न कर सकूँ। सप्ताह में केवल दो पत्र प्रेषित कर सकता हूँ, परन्तु मेरे पास कितने ही पत्र भेजे जा सकते हैं।

आजकल माताजी कहाँ हैं? सम्भवतः पिताजी तो कटक ही में होंगे। लिखिये आप लोगों का क्या हाल है?

'स्टेट्समैन' के लेख के सम्बन्ध में वकीलों ने क्या मंत्रणा दी है, यह जानने के लिए मैं बहुत उत्सुक हूँ।

अभी तक मुझे 'म्युनिसिपल गज़ट' का चतुर्थ अंक नहीं प्राप्त हुआ। निःसंदेह मैं यह चाहूँगा कि वह नियमित रूप से मेरे पास आता रहे।

मैं यहाँ कुशलपूर्वक हूँ।

आपका परमस्नेही
सुभाष

सेवा में,
श्रीमान् एस० सी० बोस
बार-एट-ला

६७

बरहामपुर जेल
दिनांक १६—१२—२४

आदरणीय भाई साहब,

मुझे आपका दिनाङ्क ५—१२—२४ का प्रेषित पत्र कुछ दिन पूर्व ही प्राप्त हुआ था और १२—१२—२४ का पत्र कल प्राप्त हुआ है।

ऊनी वस्त्रों के बारे में, सरकार द्वारा मुझे सूचित किया गया है कि निर्धारित अनुसूची में किसी प्रकार का संशोधन नहीं किया जावेगा। सरकार का यह व्यवहार व्यक्ति के पद और स्थिति के अनुसार है।

मैं अपने ऊपर लगाये गये अभियोगों की प्रतिलिपि की प्राप्ति के लिए बंगाल सरकार से भी लिखा-पढ़ी कर रहा हूँ। जो अभियोग मुझ पर लगाये गये थे उन्हें मुझे पढ़कर भी सुना दिया गया था। मैं नहीं समझता कि सरकार को उन आरोपों की एक प्रतिलिपि मुझे देने में क्या

आपत्ति हो सकती है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि मेरी अनुपस्थिति में कार्य करने के लिए एक स्थानापन्न सी० ई० ओ० को नियुक्त किया गया है। चाहे कुछ भी हो कारपोरेशन का काम बिगड़ने न पाये। मेयर महोदय से भी कृपया परामर्श कीजिये और जिन बातों को मैंने उनसे जुबानी कहा था, उनकी भी पुष्टि करा लीजिये।

मुझे यह जानकर हर्ष है कि आप मेरे उद्यान को सुधारने का प्रयास कर रहे हैं। मेरा मन था कि उसके केन्द्र में बैडमिन्टन का एक कोर्ट हो। स्पष्ट रूप से आपने तो सारे प्लाट के लिए सुन्दर योजना बनाई है। चलिये ऐसी कोई बात नहीं है, यदि पीछे की भूमि को ढंग से साफ कर लिया जावे तो बच्चों के लिये ३८/२ नम्बर के निवास में भी बैडमिन्टन कोर्ट बनाया जा सकता है।

मुझे दुःख है कि आपका मद्य की दूकानों सम्बन्धी प्रस्ताव निरन्तर स्थगित हो रहा है।

जब से मैंने अलीपुर छोड़ा है तब से लेकर अब तक मैं कारपोरेशन के भाग्य-विधान को सुनने के लिये उत्सुक हूँ।

सब कैदियों के लिए पुस्तकें खरीदने के वास्ते सरकार ने ३० रुपये मासिक की 'शानदार' रकम स्वीकृत की है। मेरी समझ में नहीं आता कि इतने ज्ञान-पिपासु लोग कितना बौद्धिक भोजन इन ३० रुपये में खरीद सकेंगे ? और विशेष रूप से, जब कि सबकी रुचियाँ भिन्न-भिन्न हों।

* * *

इससे भी अधिक भद्दी बात तो यह है कि यहाँ जेल में कोई पुस्तकालय ही नहीं है।

मैं यहाँ सकुशल हूँ और अनुभव करता हूँ कि कवि के यह शब्द वास्तव में सत्य हैं कि केवल पाषाण-भित्तियों से कारागार का निर्माण नहीं होता और न लौह-शलाकाओं से पिंजड़े बनते हैं।

इस समय मैं कुछ समकालीन अंग्रेजी साहित्य एवं योरोपियन साहित्य (अनुवाद रूप में) को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ।

आपका परमस्नेही
सुभाष

माँडले जेल
१२–२–२५

आदरणीय भाई साहब,

आपका २४–१–२५ का पत्र मुझे कल ही मिला।

जब से मैं यहाँ आया हूँ, मेरा तो कारपोरेशन के साथ सारा सम्पर्क ही टूट गया है। न तो मुझे कारपोरेशन के निर्देश-पत्र प्राप्त होते हैं और न 'नगरपालिका-गज़ट' ही।

यदि आप मद्य की दुकानों सम्बन्धी प्रस्ताव को आग्रहपूर्वक प्रस्तुत करेंगे तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। आज इस बात की आवश्यकता है। मुझे निश्चय है कि अधिकांश जनता इसका स्वागत करेगी।

इन्ताज़ अली नाम के एक व्यक्ति ने इन्जिन ड्राइवर के पद के लिए आवेदन-पत्र भेजा था। यह रिक्तस्थान या तो कारपोरेशन पम्पिंग स्टेशन में है या कारपोरेशन वार्टरिंग बोट्स में है। उसने आवेदन-पत्र के साथ अपने अन्य प्रमाण-पत्र भी एक टीन के डिब्बे में (जो बाँस के आकार का है) रखकर प्रस्तुत किये थे। वह डिब्बा मेरे कार्यालय में है—या तो वह मेरी मेज़ पर होगा अथवा मेरी कुर्सी के बाईं ओर। वह डिब्बा इतना भोंडा है कि हर व्यक्ति उसे पहचान सकता है। उस व्यक्ति ने मुझे उन प्रमाण-पत्रों को शीघ्रातिशीघ्र लौटाने के लिए लिखा है। बिना इन प्रमाण-पत्रों के वह अन्य किसी रिक्त पद के लिए आवेदन-पत्र नहीं भेज सकता।

स्थानीय समाचार-पत्रों में जो आय-व्ययक प्राक्कलन छपे हैं, उन्हें देखते हुए मेरे विचार से यह बजट घाटे का है। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। मेरे विचार से सुधार सम्बन्धी कार्यों को स्थगित करके हम बड़ी सरलता से व्यय को कम कर सकते हैं—ऐसा करने से आय-व्यय में संतुलन सम्भव है। मैं आशा करता हूँ कि बजट की अन्तिम स्वीकृति से पूर्व कारपोरेशन व्यय में समुचित कटौती कर देगा।

मेरा सुझाव है कि आप लोगों में से कुछ व्यक्तियों को ३८/१ नम्बर के मकान में जाकर रहना आरम्भ कर देना चाहिये अन्यथा उस स्थान को स्वच्छ और साफ़ नहीं रक्खा जा सकेगा।···············

मुझे ज़िला बोर्ड संगठन से सम्बन्धित स्थानीय स्वायत्त शासन एक्ट की एक प्रतिलिपि चाहिये।

मैं विजय काका के इस मत से सहमत हूँ कि स्थानीय बोर्डों के

चुनावों में सुविधापूर्वक निर्वाचित हुआ जा सकेगा।

इस सम्बन्ध में मैं यह भी बतला दूँ कि यदि मेरे जेल में होते हुए विधान-परिषद् का आम चुनाव होता है तो मैं कलकत्ता निर्वाचन-क्षेत्र से खड़ा होना पसन्द करूँगा—चाहे यह क्षेत्र उत्तरी कलकत्ता क्षेत्र हो चाहे दक्षिणी.........व्यावहारिक अड़चनों को जाने दीजिये, जेल में होते हुए भी, यदि मैं जिला बोर्ड अथवा विधान-सभा के चुनाव में खड़ा होता हूँ तो, मेरे विचार से, मेरे चुनाव में खड़े होने के मार्ग में कोई वैधानिक प्रतिबन्ध लागू नहीं होते।..................

नगर की सड़कों की स्थिति की जाँच करने के लिए नगर निगम ने जो समिति नियुक्त की है, उसमें कौन-कौन सदस्य हैं? मैं इस समिति के लिए एक टिप्पणी तैयार कर रहा हूँ और आशा है कि इसे अगली डाक से भेज दूँगा।..................

जहाँ तक मेरे स्वास्थ्य का प्रश्न है, मैं अपने बन्दी जीवन में पहली बार अस्वस्थता का अनुभव कर रहा हूँ। जिस दिन से यहाँ आया हूँ तभी से थका हुआ और अस्वस्थ चल रहा हूँ। अजीर्ण तो निरंतर तंग कर रहा है। यहाँ मेरा ही नहीं, अधिकतर औरों का भी ऐसा ही हाल है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यहाँ की जलवायु कदाचित् ही मेरे अनुकूल हो। मैं स्थानान्तरण के लिये भी बंगाल सरकार को नहीं लिखूँगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि लिखना व्यर्थ है। बर्मा में सबसे अधिक स्वस्थ जेल माँडले जेल मानी जाती है और मेरे विचार से माँडले वह स्थान है जहाँ प्लेग और चेचक से मरने वालों की संख्या सबसे अधिक है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है, यहाँ पिछले वर्ष तीस हज़ार व्यक्ति प्लेग से मरे थे।

सरकार ने मुझे हाल ही में सूचित किया है कि मुझे पारिवारिक व्यय के लिये कोई भत्ता नहीं मिलेगा। इससे मैं यह समझ पाया हूँ कि निजी कर्मचारियों के लिए मुझे अब कोई भत्ता नहीं मिलेगा। आप तो जानते ही हैं कि मासिक दान के अतिरिक्त मेरा पारिवारिक व्यय कितना है।

कृपया मेरी अस्वस्थता के विषय में माताजी एवं पिताजी से कुछ न कहिये।

आपका परमस्नेही
सुभाष

६९

माँडले जेल
१४-३-२५

आदरणीय भाई साहब,

अब पत्र लिखना मेरे लिये एक समस्या है, या यूँ कहिये कि वह मेरे लिये एक दुःस्वप्न है। अब तो पुलिस सेन्सर की सर पर लटकती हुई उस तलवार से और शासन की उस निरंकुशता से जो ज़ार से भी बाज़ी ले गई है, बहुत डर लगने लगा है। मैं नहीं समझता कि यह पत्र भी बिना काट-छाँट किये आप तक पहुँच पायेगा—परन्तु लिखूँगा अवश्य।

मैं यह पत्र बड़ी कठिनाई से लिख पा रहा हूँ। इसके लिये मुझे केवल डरावने स्वप्नों पर ही विजय प्राप्त नहीं करनी पड़ी अपितु अजीर्ण एवं इन्फ़्लयूएंजा के रोग से उत्पन्न तन्द्रा को भी जीतना पड़ा है। परन्तु आज सप्ताह का अंतिम दिन है—अतः पत्र लिखने के लिए जो कुछ थोड़ा बहुत समय मुझे मिला है, उसे मैं हाथ से न जाने दूँगा।

अब मुझे नगरपालिका गज़ट की प्रतियाँ तो प्राप्त होने लगी हैं, परन्तु यह बात मेरी समझ से बिल्कुल बाहर है कि कारपोरेशन सम्बन्धी कार्य-विवरणों को क्यों नहीं भेजा जाता। पुलिस-मस्तिष्क का तर्क बड़ा रहस्यपूर्ण होता है। मुझे रंगून के समाचार-पत्रों से विदित हुआ है कि मेरा काराकाल तीन मास के लिए और बढ़ा दिया गया है।

कृपया मुझसे सम्बन्धित समस्त वाउचरों और रसीदों को अवश्य सम्भाल कर रखिये, क्योंकि कारागार से मुक्त होने के उपरान्त, मेरा संकल्प इस मामले को पुनः उठाने का है। इतना तो आप भी मानेंगे कि एक न एक दिन तो मैं जेल से अवश्य ही मुक्त हो जाऊँगा, क्योंकि प्रत्येक दुःख का अन्त होना अवश्यम्भावी है।

मेरा विश्वास है कि मैं भत्ता पाने का अधिकारी हूँ और इसके समर्थन में पर्याप्त प्रमाण भी मेरे पास हैं।

सम्भवतः आप यह जानना चाहेंगे कि विनियम ३ के स्थान पर अध्यादेश लागू होने से मेरे प्रति व्यवहार में क्या अन्तर आया है? इस प्रश्न का उत्तर देना मेरे लिए सम्भव नहीं क्योंकि मुझे तो प्रत्यक्ष रूप में ऐसा प्रतीत होता है कि एक प्रकार का भय मेरे अंग-प्रत्यङ्गों पर छाता जा रहा है और उसने मेरी उँगलियों को तो बिल्कुल ही शक्तिहीन कर दिया है। इसी कारण मैं शारीरिक व्यायाम के सम्बन्ध में एवं अपने संगी-

साथियों के विषय में किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। मैं नहीं जानता कि पुलिस-सैन्सर मुझे इतना भी कहने देगी (अथवा नहीं) कि हमारे पास पुस्तकों का अभाव है और हम बौद्धिक क्षुधा-पीड़ित हैं। अब तक मैंने सरकारी पैसे से एक भी पुस्तक नहीं खरीदी। सम्भवतः यह व्यवहार मेरे व्यक्तित्व के अनुरूप ही है।

आप कृपया रमैया से कारपोरेशन के अवकाश, पैन्शन, प्राविडेन्ट फन्ड सम्बन्धी नियमों की एक प्रति मेरे पास भेजने के लिए कह दीजिए। विद्याधरी-समस्या के सम्बन्ध में, कारपोरेशन के लिये, मैंने दो-तीन पुस्तकें भी खरीदी थीं। मैं उन्हें पढ़ना भी चाहता था। वहाँ बंगाल की सरिता प्रणाली पर एडम विलियम्स लिखित एक पुस्तक भी है। मैं उसे भी पढ़ना चाहता था।

यहाँ की जलवायु मेरे अनुकूल नहीं है। अतः मैंने बंगाल सरकार के पास स्थानान्तरण के लिये आवेदन-पत्र भेजने का निश्चय कर लिया है। जब से मैं यहाँ आया हूँ मन्दाग्नि से पीड़ित हूँ। इधर जुकाम और ज्वर भी तंग करता रहता है। इस ज्वर को हम स्थानीय 'फ्ल्यू' कह सकते हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि इसमें ताप अधिक नहीं चढ़ता, परन्तु है यह 'फ्ल्यू' के समान ही दुःखदायी।

बाबू जितेन्द्रीय वसु ने अपने प्रिय काशीपुर को धूलि का साम्राज्य कहा है; परन्तु मैं निःसंदेह कह सकता हूँ कि उन्होंने अभी तक धूलि के वास्तविक साम्राज्य का दर्शन ही नहीं किये—वह तो माँडले है।

एक कवि का कथन है कि मृत्यु का कोई मौसम नहीं होता—मेरे विचार से माँडले में भी धूल का कोई मौसम नहीं है, क्योंकि संसार के इस कोने में वर्षा ऋतु का तो कभी आगमन होता ही नहीं। माँडले में तो हर स्थान पर धूल ही धूल है। यहाँ तक कि वायु में धूल है, अतः साँस के साथ भी धूल फाँकनी होती है। भोजन में धूल है, अतः भोजन के साथ उसे खाना होता है। आपकी मेज़ पर, कुर्सी और बिस्तर पर धूल है, अतः आपको उसका कोमल स्पर्श करना ही पड़ता है। यहाँ धूल की आँधियाँ आती हैं—और दूर-दूर तक के वृक्षों और पहाड़ियों को ढक देती हैं। उस समय आप इनके पूर्ण सौन्दर्य के दर्शन कर सकते हैं। वास्तव में माँडले में तो धूल सर्व-व्यापक है क्योंकि यह हर स्थान पर है। इस दृष्टि से हम इसे दूसरा परमेश्वर कह सकते हैं। हे प्रभो! इस नये परमेश्वर से हमारी रक्षा करो।

कतिपय दार्शनिकों की यह मान्यता है कि हमारा यह लघु-ग्रह

मनुष्य के उपभोग के लिए ही निर्मित हुआ है। निःसंदेह संसार में बर्मा ही एक ऐसा देश है जहाँ इन दार्शनिकों के अनुयायी बहुतायत से मिल जावेंगे। यदि यह जगत् और विशेषतः चेतन जगत् मनुष्य के लिए रचा गया है तो यहाँ कुछ भी अभक्ष्य नहीं हो सकता। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि बर्मा के लोगों की धर्म-संहिता में अखाद्य-मांस का अस्तित्व ही नहीं है। कौए, बिल्लियाँ, कुत्ते यहाँ तक कि सर्प का भी रसोई घर में स्वागत किया जाता है। उन्हें भी मनुष्य के उदर में स्थान प्राप्त हो जाता है। संसार के इस भाग में भोजन-विषयक पक्षपात नहीं है, यहाँ तक कि तुच्छ से तुच्छ जीव—कीड़े-मकोड़े तक इस बात की शिकायत नहीं कर सकते कि उनकी उपेक्षा की गई है।

यहाँ की जलवायु में शिथिलता अनुभव होती रहती है। शरीर के जोड़ों के अकड़ जाने की बीमारी तो यहाँ आम है। बर्मी लोगों ने कई दृष्टियों से अपनी सभ्यता में आश्चर्यजनक विकास किया है। उन्होंने मालिश की भी एक ऐसी पद्धति विकसित की है, जो इस रोग का एक उत्तम निदान है।

मुझे संदेह है कि मैं कुछ अधिक लिख गया हूँ। अतः अब लिखना समाप्त करता हूँ।

आपका परम स्नेही
सुभाष

७०

माँडले जेल
२८–३–२५

आदरणीय भाई साहब,

मेरा अनुमान है कि आपको मेरे पत्र नियमित रूप से प्राप्त हो रहे होंगे।

मुझे एक और भी नवीन अनुभव हुआ है। एक दिन मैं जन्तुओं को देखने पशु-वाटिका गया। मुझे क्या मालूम था कि वहाँ जाकर मैं स्वयं ही एक जन्तु बन जाऊँगा। सम्भव है यह सुनकर आप अपना सर खुजलाने लगें, परन्तु यह सत्य है कि आज हमारी स्थिति पशु-वाटिका के जन्तुओं जैसी ही है। यहाँ की जेलों के वार्ड्स लकड़ी की छड़ों के बने हैं—ईंटों के नहीं। रात्रि को जब हमें यहाँ ताले में बन्द कर दिया जाता है तो

निश्चित ही बाहर से देखने वालों को हम प्रकाश-युक्त पिंजड़ों में, शिकार की खोज में घूमते हुए अजीब पशुओं जैसे लगते होंगे। इस समय बड़ा विचित्र अनुभव होता है और ऐसी स्थिति में कोई भी हास्य-प्रिय व्यक्ति (हमारी दशा देखकर) बिना हँसे नहीं रह सकता। प्रभु ही जानते हैं कि हमारे इस रूपान्तर की यह प्रतिक्रिया कहाँ जाकर रुकेगी? फिर भी मैं आशा करता हूँ कि ऐसे वातावरण में रहते हुए भी हम मनुष्य ही रहेंगे और हमारे न पूँछ होगी और न नाखून, जिन्हें हम सदा के लिए छोड़ चुके हैं।

* * *

मेरा हाल ठीक ही समझिये।

आपका परमस्नेही
सुभाष

७१*

माँडले जेल
२–५–२५

प्रिय दिलीप,

तुम्हारा २४–३–२५ का पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। तुम्हें शंका थी कि इस बार भी पत्र वैसी ही दुहरी जाँच-पड़ताल के बाद आएगा जैसा कि कभी-कभी होता है। परन्तु इस बार वैसा नहीं हुआ, यह जानकर और भी अधिक प्रसन्नता हुई।

तुम्हारे पत्र ने मेरे मर्मस्थल को छू लिया है। विचार और अनुभूति को इस प्रकार अनुप्राणित किया है कि इसका उत्तर देना कठिन है। एक कठिनाई और है। इस पत्र को सेन्सर के हाथों में से होकर जाना पड़ेगा। यह कोई नहीं चाहता कि उसके हृदय की भावनायें सबके समक्ष प्रगट हो जायें। इस पत्थर की दीवार और लौह-द्वार के भीतर बैठकर आज मैं जो कुछ सोच रहा हूँ और अनुभव कर रहा हूँ उसका बहुत बड़ा अंश एक समय तक अनकहा ही रखना पड़ेगा।

हमारे मध्य इतने मनुष्य अज्ञात कारणों से या अकारण ही जेल में हैं। यह विषय तुम्हारी प्रवृत्ति और परिष्कृत रुचि में व्याघात उत्पन्न

* श्री दिलीप कुमार राय के नाम।

करेगा। यह स्वाभाविक है। परन्तु जब घटनाएँ घटित होती हैं तब सब परिस्थितियों पर आध्यात्मिक दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। मैं यह नहीं कहता कि जेल में रहना मुझे अच्छा लगता है। ऐसा कहना तो एक धोखा होगा। मैं तो कह सकता हूँ कि कोई भी शिष्ट और सुशिक्षित व्यक्ति जेल में रहना पसन्द नहीं कर सकता। जेल का. वातावरण मनुष्य को विकृत और अमानुषीय बनाने में योग देता है। मेरी तो धारणा है कि यह बात सभी जेलों के लिए कही जा सकती है। बहुत से अपराधियों की कारावास काल में नैतिक उन्नति नहीं होती, अपितु उनका और भी अधिक पतन हो जाता है। मैं इतना तो कह ही सकता हूँ कि इतने दिन जेल में रहने के बाद मैं कारावास की वास्तविक स्थिति से परिचित हो गया हूँ। अब भविष्य में जेल-सुधार भी मेरा एक कर्त्तव्य होगा। भारतीय कारागार प्रणाली एक बुरे (अर्थात ब्रिटिश प्रणाली के) आदर्श का अनुकरण मात्र है जैसे कि कलकत्ता विश्वविद्यालय, लन्दन विश्वविद्यालय के आदर्श का अनुकरण है। जेल-सुधार के सम्बन्ध में अमरीका जैसे उन्नत देशों की व्यवस्था का ही अनुकरण करना उचित है।

इस व्यवस्था का उद्देश्य एक नई भावना उत्पन्न करना और अपराधियों के प्रति सहानुभूति रखना है। अपराध की प्रवृत्ति को मानसिक रोग मानना पड़ेगा, और उसी प्रकार उसका उपचार करना उचित होगा। प्रतिशोध-मूलक दंड-विधि, जिसे कारा-शासन-विधि का मुख्य तत्व माना जा सकता है, उसको अब सुधार-मूलक दंड-विधि में परिवर्तित करना पड़ेगा। मेरा अनुमान है कि यदि मैं स्वयं कारावास नहीं भोगता तो एक अपराधी या बन्दी को उचित सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देख सकता था। मुझे इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है कि यदि हमारे देश के कलाकार और साहित्यकार कारावास के जीवन से परिचित होते तो हमारा शिल्प, साहित्य और भी समृद्ध होते। सम्भवतः यह भी नहीं कहा जा सकता कि काज़ी नज़रुल इस्लाम की कविता उनके जेल-जीवन की अभिज्ञता की कितनी ऋणी है?

जब मैं गम्भीरता से विचार करता हूँ तो देखता हूँ कि हमारे समस्त दुःखों के भीतर एक महान् उद्देश्य छिपा हुआ है। यदि हम जीवन में हर क्षण इस तथ्य को स्मरण रखें तो दुःख, कष्ट सहन करने में हमें कोई पीड़ा न होगी। सी कारण शरीर और आत्मा का द्वन्द्व निरन्तर चल रहा है।

साधारणतया दार्शनिक भाव बन्दीगृह में मनुष्य के हृदय में शक्ति

उत्पन्न करते हैं। मैंने भी वहाँ अपने खड़े होने के लिए स्थान बना लिया है। दर्शन के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ पढ़ा और जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ सोचा था वह सभी मेरे बहुत काम आया है। यदि मनुष्य के मन में सोचने के लिए पर्याप्त विषय हैं तो बन्दी होने पर भी उसे कोई कष्ट नहीं होता। उसका स्वास्थ्य अवश्य ठीक होना चाहिए। किन्तु हमारे कष्ट केवल आध्यात्मिक ही तो नहीं हैं, शारीरिक कष्ट होने पर भी मनुष्य दुर्बल हो जाता है।

स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने अपने कारा काल में गीता की समालोचना लिखी थी। मैं निःसंदेह कह सकता हूँ कि उन्होंने वे दिन मानसिक रूप से सुख से व्यतीत किए थे। परन्तु इस सम्बन्ध में भी मेरी निश्चित धारणा है कि मांडले जेल में छः वर्ष तक बन्दी रहना ही उनकी अकाल-मृत्यु का कारण था।

मनुष्य को विवश होकर जेल में जिस निर्जनता में रहना पड़ता है, वही निर्जनता उसे जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं को भली भाँति समझने का अवसर देती है। स्वयं मैं अपने सम्बन्ध में कह सकता हूँ कि मेरे व्यक्तिगत और समष्टिगत जीवन के बहुत जटिल प्रश्न एक वर्ष पहले की अपेक्षा अब समाधान के अधिक निकट पहुँचते जा रहे हैं। जिस विचार को पहले धुँधले रूप में देखता था आज वही बहुत स्पष्ट हो उठा है। और किसी कारण से, भले ही कुछ लाभ न हो, परन्तु अपनी अवधि समाप्त होने तक मुझे आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत लाभ होगा।

मेरे कारावास को तुमने 'शहादत' के नाम से अभिहित किया है। यह तो तुम्हारे हृदय की महानता और गम्भीर अनुभूति का परिचायक है। 'दिल्लगी' और 'अनुपात' शब्दों का तात्पर्य साधारण तौर से मैं भली-भाँति समझता हूँ। इसी कारण मेरी अपने आपको शहीद मानने की आकांक्षा नहीं है। मैं इच्छा और अभिमान को पूर्णतः लांघना चाहता हूँ। इस दिशा में मुझे कितनी सफलता प्राप्त हुई है, यह तो मेरे मित्र ही बता सकते हैं। इस प्रकार यदि शहादत का तत्व मेरे पास अधिक हो तो वह आदर्श ही होगा।

मेरा विश्वास है कि लम्बी अवधि वाले बन्दी के लिए सबसे बड़ी विपत्ति यह है कि अनजाने में ही उसे बुढ़ापा आ घेरता है। इस कारण इस ओर से उसे सतर्क रहना चाहिए। तुम यह अनुमान भी नहीं लगा सकते कि किस प्रकार मनुष्य दीर्घ-काल तक कारागार में रहने से धीरे-धीरे शरीर और मन से समय से पूर्व ही वृद्ध हो जाते हैं।

इसके बहुत से कारण हैं जैसे—खराब भोजन, व्यायाम या स्फूर्ति का अभाव, समाज से अलगाव, दासता की शृङ्खला का भार, बन्धुजनों का वियोग, संगीत का अभाव। जिसका उल्लेख सबसे बाद में किया है वह एक महत्वपूर्ण अभाव है। कई अभाव तो ऐसे हैं जिन्हें मनुष्य अपने आप पूर्ण कर सकता है; परन्तु कई अभाव ऐसे भी हैं जो केवल बाह्य वस्तुओं से ही पूर्ण किये जा सकते हैं। इन सब बाहरी विषयों से वंचित होना भी समय से पूर्व बुढ़ापे के लिए उत्तरदायी है। अलीपुर जेल में यूरोपियन बन्दियों के लिए संगीत का साप्ताहिक प्रबन्ध है, परन्तु हमारे लिए नहीं है। पिकनिक, विश्राम, वार्तालाप, संगीत-चर्चा, साधारण वक्तृता, खुले स्थान में खेलना, मनोनुकूल काव्य, साहित्य-चर्चा—ये सब हमारे जीवन को इतना सरस और समृद्ध बनाते हैं कि हम प्राय: उनका महत्व नहीं समझ पाते। और जब हमें बलपूर्वक बन्दी बनाकर रखा जाता है तभी उनका मूल्य समझ में आता है। जब तक जेल में अच्छी व्यवस्था एवं सामाजिक वातावरण की कमी है तब तक कैदियों का सुधार होना असम्भव है। और तब तक जेल-जीवन से मानव नैतिकता की ओर अग्रसर न होकर अवनत ही होता जायेगा।

मुझे यह बात विस्मृत नहीं करनी चाहिए कि अपने लोगों, बन्धु-बान्धवों, और सर्व-साधारण की सहानुभूति और शुभेच्छाएँ मनुष्य को जेल में भी बहुत सुख दे सकती हैं। इनका प्रभाव अनजाने और सूक्ष्म रूप से कार्य करता है। अपने मन का विश्लेषण करने पर मैं स्पष्ट देखता हूँ कि यह प्रभाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। साधारण और राजनैतिक बन्दियों में पार्थक्य का एक निश्चित कारण है। राजनैतिक अपराधी यह जानते हैं कि मुक्ति के पश्चात् समाज उन्हें अपना लेगा। परन्तु साधारण अपराधियों को इस प्रकार की आशा नहीं होती। वे तो अपने घर के अतिरिक्त और कहीं से भी सहानुभूति की आशा नहीं कर सकते और इसी-लिए जनसाधारण के समक्ष मुँह दिखाने में उन्हें लज्जा का अनुभव होता है। हमारे अहाते में जिन कैदियों को काम करना पड़ता है उनमें से कोई कोई मुझसे कहता है कि उनके अपने लोग जानते भी नहीं कि वे जेल में बन्द हैं। लज्जा के कारण उन्होंने अपने घर समाचार तक नहीं भेजा। मुझे इससे बहुत असंतोष है कि सभ्य समाज अपराधियों के प्रति सहानुभूति क्यों नहीं दिखलाता ?

अपने जेल सम्बन्धी ज्ञान और उससे उत्पन्न विचारों के सम्बन्ध में मैं अनेक पृष्ठ लिख सकता हूँ, परन्तु पत्र की भी तो एक सीमा है। मुझमें

शक्ति होती तो इस सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखने का प्रयास करता, परन्तु इस समय मुझमें उपयुक्त सामर्थ्य नहीं है।

मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरे जेल के कष्ट शारीरिक की अपेक्षा मानसिक अधिक हैं। जहाँ अत्याचार और अपमान का आघात कम सहन करना पड़ता है वहाँ बन्दी-जीवन उतना कष्टप्रद नहीं होता। ये सूक्ष्म आघात तो ऊपर से ही होते हैं, जेल के अधिकारियों का इसमें कोई हाथ नहीं होता। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि ये जो पीड़ाएँ हैं, वे पीड़ा देने वालों के प्रति मनुष्य के मन को घृणा से भर देती हैं। इस दृष्टि से देखने पर तो विचार उठता है कि इनका उद्देश्य ही व्यर्थ है। बाद में हम अपने पार्थिव अस्तित्व को ही भूल जाएँ और अपने हृदयों में एक आनन्दधाम बना लें इसी कारण यह पीड़ाएँ हमारी स्वप्नाविष्ट आत्मा को जगाकर बता देती हैं कि मनुष्य के चारों ओर किस प्रकार की कठोर और दु:खद स्थिति है। मैंने तुम्हें बताया था कि मनुष्य के अश्रु किस प्रकार धरती को भीतर तक आर्द्र कर रहे हैं; परन्तु यह अश्रु दु:ख के ही नहीं हैं, इनमें करुणा और प्रेम के अश्रु भी हैं। समृद्ध और अनन्त आनन्द-स्रोत में पहुँचने की सम्भावना होने पर क्या तुम छोटे-छोटे दु:खों को सहन करना अस्वीकार कर देते? मैं तो दु:ख या उत्साह-हीनता का कोई कारण नहीं देखता, अपितु मेरी तो धारणा है कि दु:ख श्रेष्ठ कर्म और महान सफलता की प्रेरणा देंगे। तुम्हारा क्या विचार है? दु:ख सहन किए बिना जो उपलब्धि होती है क्या उसका कोई मूल्य है?

कुछ दिन पूर्व तुमने जो पुस्तकें भेजीं थीं वे मिल गईं। अब उन्हें लौटा नहीं सकता क्योंकि उनको बहुत से साथी पढ़ रहे हैं। तुम्हारी रुचि कितनी परिष्कृत है यह बताना अनावश्यक है। और पुस्तकें भी हम सादर स्वीकार करेंगे। इति।

७२*

माँडले सैन्ट्रल जेल
१३–६–२५

आपको पत्र प्रेषित करने के उपरान्त मुझे सरकार से यह सूचना प्राप्त हुई कि उसने मेरे, बंगाल के लिए स्थानान्तरण सम्बन्धी, आवेदन-पत्र को अस्वीकार कर दिया है। आपको विदित हो कि जब से मैं बर्मा आया हूँ मेरा भार १० पौंड कम हो गया है।

७३†

२५–६–२५

प्रिय दिलीप,

मेरे पिछले पत्र के उपरांत तुम्हारे कुल तीन पत्र मिले। पत्रों का दिनाङ्क ६ मई, १५ मई और १५ जून है।

तुम्हारा भेजा हुआ पुस्तकों का बन्डल मिल गया था। उसमें तुर्गनेव की "धुँआ" पुस्तक नहीं मिली। कार्यालय में पार्सल खोला गया था, इसी कारण सुपरिन्टैन्डैन्ट से इस सम्बन्ध में खोज करने को कहा गया है। आवश्यक होगा तो वह कलकत्ता गुप्तचर-विभाग में खोज करेंगे। तुम भी इस विषय में डिप्टी इन्सपैक्टर-जनरल गुप्तचर-विभाग को लिखकर उनका ध्यान आकर्षित कर सकते हो।

बर्ट्रेन्ड रसेल की 'औद्योगिक सभ्यता का भविष्य' नामक पुस्तक बरहामपुर जेल के कैदियों के पास है। जब हमें स्थानान्तरित किया गया था तब बहुत से कैदी उस पुस्तक को अपने पास रखना चाहते थे। एक तो उस समय उस पुस्तक को पढ़ रहा था। मैं पुस्तक वहीं छोड़ आया था। रसेल की पुस्तकों की माँग इतनी अधिक है कि एक भी मिल जाए तो उसे कोई छोड़ना नहीं चाहता। मैंने बरहामपुर जेल के सुपरिन्टैन्डैन्ट को लिख दिया है कि वह पुस्तक तुम्हें भेज दें। इस सम्बन्ध में तुम उनको लिख सकते हो जिससे उन्हें स्मरण हो जाएगा। तुम्हारी आवश्यकता के

* श्री शरत्चन्द्र वसु के नाम।

† श्री दिलीप कुमार राय के नाम।

समय पुस्तक वहाँ अटक गई, इसका मुझे दुःख है। परन्तु तुम तो जानते हो कि इतनी गड़बड़ की बात पहले मेरी समझ में नहीं आई। 'स्वतन्त्र विचार और सरकारी प्रचार' नामक पुस्तक तो तुमने मेरे पास नहीं भेजी ?

चुनकर पुस्तकें भेजने के लिए तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद। हम सब आशा करते हैं कि तुमने जो काम आरम्भ किया है वह ईश्वर की कृपा से ठीक प्रकार से चलेगा। यह बात बताने की नहीं है कि मैं तुम्हारे लेखों को कितनी रुचि के साथ पढ़ूँगा। पुस्तक प्रकाशित करते समय आवरण-पृष्ठ का ध्यान रखना। अभी 'बंगवाणी' में रवीन्द्रनाथ के ऊपर तुम्हारा एक निबन्ध देखा था। मैंने अभी वह पढ़ा तो नहीं है किन्तु आशा है विषय आकर्षक होगा।

तुम तो जानते हो कि आजकल देशबन्धु के देहान्त के कारण मेरा मन भारी है। समाचार-पत्र में जब यह संवाद पढ़ा तब आँखों को विश्वास नहीं हुआ। परन्तु हाय, यह तो कठोर सत्य है! हमारी सम्पूर्ण जाति का ही दुर्भाग्य प्रतीत होता है।

जो चिन्ताएँ मेरे मन को उद्वेलित कर रही हैं उन्हें प्रकट करके मन हल्का करना चाहता हूँ, परन्तु संयम रखना पड़ेगा। जो विचार आज मन में उठ रहे हैं वह इतने पवित्र और मूल्यवान हैं कि अनजान लोगों के समक्ष तो उन्हें प्रकट ही नहीं किया जा सकता। सेन्सर भी तो अनजान ही है। वास्तव में इस घटना ने मुझे स्तम्भित कर दिया है। मैं कहना चाहता हूँ कि यदि समस्त देश की यह क्षति अपूर्ण ही बनी रही तो बंगाल के युवकों के लिए तो यह सर्वनाश ही समझिये।

आजकल मैं इतना उद्विग्न और शोकाभिभूत हो रहा हूँ, और मनोजगत् में उस स्वर्गीय महात्मा से अपने आपको इतना निकट अनुभव कर रहा हूँ कि उनके गुणों का विश्लेषण करके उनके सम्बन्ध में कुछ भी लिखना असम्भव है। मैंने उनके निकट रहकर जो उनका स्वाभाविक रूप देखा है, उसका आभास समय आने पर मैं जगत को दे सकूँगा। उनके सम्बन्ध में मेरे समान जो लोग बहुत कुछ जानते हैं वह बताने की सामर्थ्य होने पर भी बताने का साहस नहीं कर रहे हैं। उन्हें शंका है कि कुछ भी बताकर हम उनके महत्व को कम कर देंगे।

तुम्हारी इस बात से मैं सहमत हूँ कि हम दुःख से दुःखी न होवें। जीवन में दुःख आते अवश्य हैं; परन्तु ऐसा दुःख जैसा यह है, मैं आनन्द के साथ सहन नहीं कर सकता। मैं इतना बलवान या पाखंडी नहीं हूँ कि

सब प्रकार के दुःख प्रसन्नता से सहन कर लूँ। कुछ लोग इतने अभागे हैं कि मानों सब प्रकार के दुःख सहन करने के लिए ही उन्होंने जन्म लिया है। यदि किसी को दुःख का प्याला ही पीना हो तो अपने आपको भूलकर ही पीना अच्छा है। इस प्रकार का आत्म-समर्पण भाग्य के सब आघातों को एकदम व्यर्थ न भी कर सके, परन्तु इससे हमारी स्वाभाविक सहनशीलता निश्चित ही बढ़ती है। जहाँ बर्ट्रेन्ड रसेल ने यह कहा है कि जीवन के सब दुःख ऐसे हैं जिनसे मनुष्य उबरना चाहता है, वहाँ उसने पूर्णतः संसारी मनुष्य का भाव ही व्यक्त किया है। मेरा अनुमान है कि जो केवल निष्कंलक साधुता का ढोंग करता है वही इस बात का प्रतिवाद करेगा।

तुम्हारा यह मानना ठीक नहीं है कि जो तत्वज्ञानी नहीं हैं उनकी पीड़ाएँ पूर्णतः निरवच्छिन्न नहीं हैं। तत्वज्ञानरहित मनुष्यों (भावात्मक दृष्टि से मैं उन्हें तत्वज्ञान-हीन ही कहता हूँ) का भी अपना आदर्श होता है। वे जिसको पूज्य मानकर उस प्रेम-निधि से श्रद्धा और प्रेम करते हैं उससे दुःख से जूझते समय भी, उन्हें साहस और विश्वास मिलता है। यहाँ मेरे साथ जिन लोगों ने कारा-कष्ट भोगा है उनमें से बहुत से ऐसे भी होंगे जो भावुक या दार्शनिक नहीं हैं; फिर भी उन्होंने शान्ति के साथ वीरों की भाँति कष्ट सहन किए हैं। मैं उन्हें पूर्णतः भावविहीन नहीं कह सकता। सम्भवतः जगत् में जो भी कार्यरत हैं, साधारणतया उनके लिए ही यह बात लागू होती है!

जनसाधारण की यह धारणा है कि जब अपराधियों को फाँसी के तख्ते की ओर ले जाया जाता है उस समय उनमें एक स्नायविक दुर्बलता पैदा हो जाती है। परन्तु जो लोग किसी महान उद्देश्य के लिए जीवन अर्पित करते हैं वे ही वीरों के समान मर सकते हैं, परन्तु यह विचार गलत है। इस सम्बन्ध में मैंने कुछ तथ्य संग्रह किए हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि बहुत से अपराधी साहस के साथ प्राण देते हैं। फाँसी की रस्सी गले में डालने से पूर्व वे भगवान के चरणों में आत्मनिवेदन करते हैं। वे टूटे हुए से दिखलाई नहीं पड़ते। एक बार एक जेलर ने मुझसे कहा था कि एक फाँसी के कैदी ने उनके समक्ष यह स्वीकार किया था कि उसने एक व्यक्ति की हत्या की है। यह पूछने पर कि क्या उसे अपने कार्य से अनुताप हुआ उसने बतलाया कि उसे तनिक भी अनुताप नहीं हुआ। उसने इसका कारण यह बतलाया कि उस व्यक्ति को मारकर उसने न्याय किया है। इसके उपरान्त वह व्यक्ति वीरता के साथ फाँसी के तख्ते पर चढ़

गया और अपने प्राण दे दिये।

अपराधियों के मनस्तत्व के सम्बन्ध में विचार करने पर मेरी आँख खुल गई हैं। मेरे अनुमान से उनके सम्बन्ध में भली भाँति विचार नहीं किया जाता। उस समय अर्थात् सन् १९२२ में जब मैं जेल में था तब हमारे अहाते में एक कैदी नौकर का काम किया करता था। उन दिनों मैं महाप्राण देशबन्धु जी के साथ उनके कक्ष के ही एक कमरे में रहता था। देशबन्धु का हृदय बहुत कोमल था, इसीलिए वह सहज ही इस कैदी की ओर आकर्षित हो गए। वह एक पुराना पापी था, उसे आठ बार सजा हुई थी। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि वह भी देशबन्धु की ओर आकर्षित हुआ था। कारागार से मुक्त होते समय देशबन्धु ने उससे कहा कि इसके उपरान्त वह निरन्तर उनसे मिलता रहे और अपने पुराने साथियों की छाया भी स्पर्श न करे। कैदी सहमत हो गया और आदेशानुसार उसने आचरण भी किया। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि एक समय वह पापी था, परन्तु इस घटना के बाद से ही वह उनके घर पर निवास कर रहा है। कभी-कभी वह अशिष्ट स्वभाव का दिखाई देने पर भी अब वह सरल जीवन व्यतीत कर रहा है। आज जिन लोगों को देशबन्धु के देहावसान पर सर्वाधिक क्षति अनुभव हो रही है उनमें से वह भी एक है। बहुत से लोगों का कथन है कि मनुष्य के छोटे-छोटे कार्यों को लेकर ही उसकी महानता पर विचार करना चाहिए। यदि यह बात ठीक है तो देशबन्धु निःसंदेह एक महापुरुष थे।

मैं मूल बात से बहुत दूर आ गया हूँ। इसलिए अब यहीं तक कहना उचित है। तुम्हारे पत्र का उत्तर अभी तक पूरा नहीं लिख पाया हूँ, फिर भी आज की डाक में तो उसे अवश्य भेज दूँगा। मैं जानता हूँ कि तुम मेरे बारे में जानने के लिए उत्सुक होगे। शेष समाचार अगले पत्र में लिखूँगा। इति।

७४*

माँडले सैन्ट्रल जेल
२–७–२५

आदरणीय भाई साहब,

आपके इस दीर्घकालीन मौन ने तो मुझे किंचित उद्विग्न कर दिया है।

कुछ समय पूर्व कारपोरेशन ने एक प्रस्ताव पास किया था, जिसमें वार्ड नम्बर २ से दलगोलों को हटाकर मानिकटोला की सीमा के अन्तर्गत, किसी निर्धारित स्थान पर, ले जाने का आदेश था। मैंने नगर के विकास-सम्बन्धी प्रश्न पर थोड़ा विचार किया तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मानिकटोले का विकास रिहायशी क्षेत्र के रूप में होना चाहिए। यदि यहाँ की नालियाँ सुधर जावें, इम्प्रूवमैन्ट ट्रस्ट चौड़ी-चौड़ी पुलिया बनवा दे, और आजकल की सुविधाओं के अनुपात में अधिक सुविधाएँ दे दे तो मुझे विश्वास है कि मानिकटोला शीघ्र ही एक रिहायशी क्षेत्र बन सकता है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आने वाले १० वर्षों में मानिकटोला एक अच्छा स्वस्थ स्थान बन जावेगा और जिस समय यह एक स्वस्थ स्थान होगा, उस समय यह दलगोले नागरिक प्रसारण में एक बड़ी भारी बाधा, एक बड़ी भारी अड़चन बन जायेंगे।

अतः इस प्रश्न पर पुनः विचार करना आवश्यक है कि इन दलगोलों को कहाँ भेजा जावे?

दूसरा दुःखदायी प्रश्न वार्ड नम्बर ८ में स्थित कच्चे चमड़े के गोदामों का है।

"इन्हें हटाकर कहाँ ले जाया जावे?" यह प्रश्न बहुत ही विचारणीय है। इन समस्याओं का हल नागरिक प्रसारण एवं भावी कलकत्ते की कल्पना के अवधारण पर निर्भर है।

आज से कुछ दिन पूर्व कारागृहों के इन्सपैक्टर जनरल यहाँ आये थे। उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या आपको विश्वास है कि आपको मन्दाग्नि रोग अधिक मात्रा में भोजन करने के कारण नहीं हुआ?" इस पर टिप्पणी करते हुए मैंने कहा, "५०% भोजन-भत्ता कम करने के उपरान्त, आपका यह प्रश्न पूछना प्रसंग के अनुकूल ही है!" चाहे कोई व्यक्ति उनके

* श्री शरत्चन्द्र वसु के नाम।

सम्बन्ध में कुछ भी सोचे परन्तु उनका दृष्टिकोण पूर्णरूपेण संगत है। उन्होंने अपनी वार्षिक प्रशासन रिपोर्ट में, जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है, लिखा है कि अधिक लम्बे समय तक जेल में रहने वाले व्यक्ति का स्वास्थ्य सुधर जाता है। मैं तो इसे पढ़कर आँखें मलने लगा (यह देखने के लिये कि कहीं ग़लत तो नहीं पढ़ गया)। क्या इस पर भी कोई टिप्पणी की जा सकती है ?

इतना ही नहीं, इन्सपैक्टर-जनरल महोदय ने उपचार हेतु व्रत रखने की भी सलाह दी। (इस प्रकार, सरकारी नौकरियों में भी महात्मा गान्धी के चेले दीख पड़ते हैं।) मैंने उन्हें बतलाया कि मैंने यह भी करके देख लिया है, परन्तु उससे तो मेरी शारीरिक दुर्बलता ही बढ़ी है।

इस व्यक्तिगत विवरण को मैं यहीं समाप्त करता हूँ। मैं आपके पत्र की प्रतीक्षा में हूँ। उससे मुझे प्रकाश प्राप्त होगा—वही प्रकाश जिसका आपने अपने इस पत्र में वचन दिया है। मैंने अभी तक श्रीमती दास को पत्र नहीं लिखा—क्योंकि अभी तो मैं इस प्रथम आघात से मुक्त होने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। परन्तु मैंने भोम्बल को जो पत्र लिखा था, उसका उत्तर आज ही की डाक से आया है।

आपका परम स्नेही
सुभाष

७५*

श्रीचरणेषु माँ,

आज आपकी इस घोर विपत्ति के दिन हम प्रवासी बन्दी बंगाली आपके पास सांत्वना संदेश भेज रहे हैं। जैसी विपत्ति आज आप पर पड़ी है उससे महान विपदा किसी महिला के जीवन में नहीं आ सकती। जिस शोक से आज आप संतप्त हैं उससे गंभीर शोक की किसी हिन्दू नारी के जीवन में कल्पना भी नहीं की जा सकती। परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि आपके इस दुर्दिन में हम आपके और आपके परिवार के समक्ष उपस्थित नहीं हो सके। विपदा के गंभीर कुहासे में शोकावरुद्ध द्वार को बेध कर यदि हमारी वाणी आप तक पहुँच पाए

* सुश्री वासन्ती देवी के नाम।

तो हम अपने आपको धन्य मानेंगे।

जो चले गए हैं वह हमारे भी निकट आत्मीय थे। आज समस्त भारतवासी उनके शोक में रुदन कर रहे हैं, परन्तु सबसे अधिक रो रहा है बंगाल का तरुण समाज।

उनके आत्मीय, स्वजन, उनके बचपन के शौर्य, यौवन और प्रौढ़ता के मित्रगण आज उनके लिए रुदन कर रहे हैं, साहित्य और कला जगत् के महारथी लोग यहाँ तक कि सब क्षेत्रों के भावुक लोग आज उनके लिए आँसू बहा रहे हैं। वह अभागी तथाकथित अछूत जातियाँ आज उनके लिए रुदन कर रही हैं, जिनके लिए वह अपना संचित धन और समस्त सम्पत्ति मुक्त-हस्त से वितरित कर गए हैं। जिन देशवासियों के लिए वे अपना प्राण, मन, स्वास्थ्य और आयु उत्सर्ग कर गए वे आज उनके शोक में व्याकुल हैं। परन्तु बंगाल के जो युवक अपने प्राणों की बाजी लगा कर उनकी ध्वजा के नीचे एकत्र हुए थे, जिन युवकों ने सुख, दुःख, अन्धकार और आलोक में उनके आदेश का पालन किया था, संग्राम में प्रवृत्त होकर जिन लोगों ने कभी तो विजय-गर्व का अनुभव किया और कभी कारा की शृङ्खला में बाँधे गए, निराशा की निशा और सफलता के प्रभात में जिन लोगों ने कभी उनका साथ नहीं छोड़ा, जिन लोगों ने उनमें पिता, सखा और गुरु के अपूर्व व्यक्तित्व के दर्शन किये थे, आज क्या भाषा के माध्यम द्वारा उन तरुणों की दशा व्यक्त की जा सकती है? देशबन्धु यशरश्मिमंडित पूर्ण रवि के समान जीवन के मध्याह्न में ही अस्त हो गए।

देशबन्धु चले गए। सिद्धिदाता के उस वरद पुत्र ने विजय-मुकुट पहनकर ही भारत के विशाल कर्मक्षेत्र से दिव्यलोक की यात्रा की। आज उन्होंने महान प्यार के द्वारा ही अमरत्व प्राप्त किया है। आज हमारे चारों ओर बाह्य संसार में अन्धकार है, और हृदय में शून्यता है। जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक अन्धकार ही अन्धकार है। अन्धकार की प्राचीर में आलोक-किरण के प्रवेश के लिए तिलभर भी स्थान नहीं है।

उस दिन की बात याद आती है जिस दिन बंगाल के आकाश में निराशा की घटाएँ छाई हुई थीं। बंगाल का वीर केसरी कारागृह में डाल दिया गया था। उस दिन निराशा और अन्धकार को चीरकर एक अपूर्व मोहिनी मूर्ति, महाशक्ति के रूप में बंगाल के कर्मक्षेत्र में उतरी थी।

उस दिन बंगालियों ने आपको देशनायिका नहीं, देशमाता के आसन पर बैठाया था। उस आनन्द, गौरव और उन्माद के दिन को बंगाली कभी

भूल नहीं सकते। उस दिन बंगालियों ने आपको जिस भक्ति और श्रद्धा से अपने हृदय-सिंहासन पर बैठाया था आज भी आपका वह स्थान ज्यों का त्यों है। उसी दिन से आप बंगमाता हैं।

इसी कारण निवेदन है कि आप इन विपदा के दिनों में हमें सान्त्वना दें। जिस गहन अन्धकार में आज सम्पूर्ण देश डूबा हुआ है, जिस विपन्नावस्था और हाहाकार में आज स्वर्ण-भूमि बंगाल श्मशान के समान हो रहा है, उसमें नए आलोक का संचार, नई शक्ति का उन्मेष, नए उत्साह का उद्दीपन आपके अतिरिक्त और कौन कर सकता है? जिस आह्वान से आपने एक दिन बंगालियों की नस-नस में नव-जीवन का संचार किया था, उसी से अब आप बंगालियों को जाग्रत करें। जिस मन्त्र-बल से आपने एक दिन बंगाल के घर-घर में प्राण-प्रतिष्ठा की थी, उसी मन्त्र के साथ महाशक्तिरूपा होकर आप फिर हमारे मध्य अवतरित हों तो यह अवसाद क्षण भर में समाप्त हो जाएगा। फिर हृदय में नवीन प्रेरणा, नया उत्साह आएगा, आशा के अरुण राग से रंजित होकर दसों दिशाएँ फिर हँस उठेंगी। बंगाल का सम्पूर्ण तरुण समाज आपके चरणों में भक्ति-अर्घ्य देगा। आपका आशीर्वाद प्राप्त करके कर्मक्षेत्र में विजयी होगा, और अर्जित विजयमाल से आपको विभूषित करता रहेगा।

वन्दे मातरम्! इति।

आपके सेवक—
सत्येन मित्र
विपिन बिहारी गांगुली
ज्योतिषचन्द्र घोष
जीवनलाल चट्टोपाध्याय
मदनमोहन भौमिक
सुरेन्द्रमोहन घोष
सतीशचन्द्र चक्रवर्ती
सुभाषचन्द्र वसु
हरिकुमार चक्रवर्ती

मांडले सेन्ट्रल जेल
६-७-२५

सेवा में,
श्रीमती सी० आर० दास
१४८, रूसा रोड, दक्षिण
कलकत्ता

७६*

माँडले जेल
३–७–२५

तुम्हारे तीनों पत्र यथा समय प्राप्त हुए। उत्तर देने का अवकाश नहीं मिला क्योंकि स्वास्थ्य गड़बड़ चल रहा है। किसी काम में (यहाँ तक कि लिखने-पढ़ने में भी) मन नहीं लगता। पहले सप्ताह में दो पत्र लिख सकता था, अब एक ही लिख सकता हूँ। इसका परिणाम यह हुआ है कि दो-तीन महीने के पत्र एकत्रित हो गये हैं और मुझे उत्तर देने का अवसर ही नहीं मिल पाया।

समाज-सेवा विभाग का प्रमुख उद्देश्य है निर्धनों की सहायता करके उनसे काम कराना। केवल दान करना संगठित उदारता का लक्ष्य नहीं हो सकता। बदले में कुछ दिए बिना दान ग्रहण करने से आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है। यह भाव सहायता लेने वाले गरीबों के मन में जाग्रत करना चाहिए। यदि कोई सहायता लेकर काम करना नहीं चाहता तो उसकी सहायता बन्द कर देना ही उचित है। इस विषय में दो-एक बातों पर विचार करना आवश्यक है :

(१) जो सहायता ग्रहण करता है उसको काम करने का अवसर मिलना चाहिए। अभिप्राय यह है कि यदि कोई विधवा स्त्री सहायता तो प्राप्त करती है परन्तु उसको घरेलू कामों के उपरान्त और दूसरे काम करने का अवकाश ही नहीं मिलता तो हमें उससे काम करने का हठ नहीं करना चाहिए। हमें तो यह देखना चाहिए कि सहायता लेकर कोई आलस्य में तो समय व्यतीत नहीं करता। इसीलिये निरीक्षण या स्थानीय पर्यवेक्षण के द्वारा समाचार एकत्रित करने चाहिएँ। समय और सामर्थ्य होते हुए भी जो लोग काम नहीं करते उनको सहायता देना तो आलस्य को प्रश्रय देना है।

(२) जिनमें शारीरिक सामर्थ्य नहीं है और जिनके घर में और कोई काम करने वाला व्यक्ति भी नहीं है उनसे काम कराने का हठ नहीं करना चाहिए।

(३) इस सम्बन्ध में एक बात और स्मरणीय है कि कार्य के चुनाव में विविधता होनी चाहिए। कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक कार्य

* श्री हरिचरण बागची के नाम।

नहीं कर सकता। पहले सरल कार्य से आरम्भ करना चाहिए जैसे अखबारों से लिफाफा बनाना आदि। बाद में कठिन काम सिखाना चाहिए।

(४) जिनको काम सिखाना हो उनके लिए काम सिखाने की व्यवस्था होनी चाहिए। बहुत से मनुष्य बहुत से कामों से डरते हैं। जब तक वे उस काम को सीख न जाएँ तब तक वे उस काम को करने के लिए कभी सहमत नहीं होते, परन्तु जब एक बार वे काम सीखना आरम्भ कर देंगे तब वे उसमें रुचि लेने लगेंगे।

हम तो भिखारी हो गये हैं। भिखारियों का सा स्वभाव एक दिन में नहीं बदला जा सकता। यदि तुम यह सोचते हो कि एक दिन में भिखारियों की प्रवृत्ति परिवर्तित की जा सकती है तो तुम्हें निराश ही होना पड़ेगा। समाज-सेवा के लिए बहुत धैर्य रखना पड़ता है।

तुम्हारा कार्यक्रम इस प्रकार होना चाहिए—कच्चा माल (जैसे पुराने समाचार-पत्र, रुई या सीपी) तुम दोगे। जो सहायता लेंगे वे तुम्हें कच्चे माल से सामान तैयार करके देंगे। उस सामान को बेचने की व्यवस्था तुम करोगे। इसके लिए पृथक-पृथक दुकानों पर प्रबन्ध करना उचित रहेगा जिससे वे तुम्हारा माल खरीद सकें। ये सब माल खर्च काटकर बेचने के पश्चात् जो लाभ होगा उसमें से सहायता देने के लिए धन निकल आएगा। तुम्हें सदैव जनता की उदारता पर निर्भर न रहकर समिति की स्वतन्त्र आय का प्रबन्ध करना चाहिए। सब प्रबन्ध समयानुसार परिश्रम से किया जा सकता है।

पुस्तकालय के लिए पुस्तकें खरीदने में रुपया व्यय मत करना। लेखकों और अन्य शिष्ट व्यक्तियों से पुस्तकें प्राप्त करने का प्रयत्न करना।

अनिल बाबू से कहना कि वे पुस्तकालय के लिए जुआरियों जैसी शीघ्रता से जोश में आकर पुस्तकें संग्रह न करें, अपितु एक निश्चित पद्धति के अनुसार पुस्तकें संग्रह करें। जो पुस्तकें मूल्य दिए बिना ही मिल जाएँ उन्हें भी संग्रह करें। फिर भी एक पद्धति रखना उचित है। सर्व प्रथम बंगला, अंग्रेजी और यूरोपीयन साहित्य की पुस्तकें संग्रह करना। फिर भारत का इतिहास, लन्दन का इतिहास और पृथ्वी के सब देशों के इतिहास की पुस्तकें संग्रह करना। इसके पश्चात् विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें और महापुरुषों की जीवनियाँ संग्रह करना। इसके साथ ही अर्थ-शास्त्र, राजनीति, कृषि और वाणिज्य सम्बन्धी किताबें संग्रह करने का प्रयत्न करना। यदि एक साथ सब प्रकार की पुस्तकें संग्रह कर सकते हो

तो अच्छा ही है। सारांश यह है कि प्रत्येक विषय की कई पुस्तकें होनी चाहिएँ जिससे किसी भी प्रकार की रुचि वाले व्यक्ति को पढ़ने के लिए पुस्तकें मिल सकें। बेकार के उपन्यास संग्रह करने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भी अच्छे-अच्छे उपन्यास रखना उचित है। अभिप्राय यह है कि एक आदर्श पुस्तकालय बनना चाहिए।

*　　　*　　　*

यदि तुम किसी दूर के क्षेत्र से सूत खरीदोगे तो उसे बुनाई-भण्डार में अधिक दिन तक नहीं रख सकते। जिनकी सहायता करो उनके, और समिति के सदस्यों के घरों पर ही सूत उत्पादन किया जाना चाहिए। यदि यह सब भवानीपुर या उसके आस-पास नहीं कर सके तो अपना श्रम व्यर्थ समझना। यदि स्थानीय लोगों के यहाँ सूत तैयार हो जाए तो समझ लेना कि प्रतिष्ठान के प्रति उन लोगों की वास्तविक सहानुभूति है। स्थानीय सहानुभूति के अभाव में कोई भी प्रतिष्ठान अधिक दिन तक नहीं चल सकता।

स्थानीय लोगों में बहुत से ऐसे भी व्यक्ति मिलेंगे जो सूत तो कातेंगे परन्तु उसे बेचेंगे नहीं। यदि उनके सूत से धोती अथवा साड़ी बना सको तो वे सूत दे देंगे। बहुत से व्यक्तियों ने पहले भी समिति से धोती और साड़ियाँ बनवाई थीं। वर्त्तमान स्थिति से मैं परिचित नहीं हूँ परन्तु मेरे विचार से समिति में सूत लेकर धोतियाँ अथवा साड़ियाँ देने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। लोगों के घरों में कैसा सूत काता जाता है, उस पर भी जरा दृष्टि रखना। इति।

७७*

माँडले सैन्ट्रल जेल
१०–७–२५

माँ,

मैं इतने दिन तक तुम्हें पत्र लिख ही नहीं पाया। लेखनी भावों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने में असमर्थ थी, हाथ विवश थे। सर्व प्रथम

* सुश्री वासन्ती देवी के नाम।

जब समाचार-पत्र देखा तब तो विश्वास ही नहीं हुआ, परन्तु जब सब समाचार-पत्रों में वही समाचार पढ़ा, तब वास्तविकता के आगे शीश झुकाना पड़ा। उन्होंने स्वयं मुझे लिखा था कि दो-तीन महीने में स्वस्थ होने के उपरान्त फिर कर्मक्षेत्र में उतरूँगा। सभी को आशा थी कि वे अपना अधूरा कार्य स्वयं पूर्ण करेंगे, किन्तु इस मध्य ही वज्रपात हो गया। वज्रपात से तो कुछ देर के लिए ही लोगों के तन-मन अवसन्न हो जाते हैं, परन्तु इस प्रकार के वज्रपात की अवसन्नता शीघ्र नहीं हटती।

पहली बात तो यह है कि मैं सुदूर ब्रह्मदेश में हूँ और हार्दिक प्रेरणा के अनुसार कार्य करने के अवसर से वंचित हूँ। इस दुःख को मैं भुला नहीं सकता। कारागार, कारागार के लौहद्वार—कारागार के असंख्य प्रहरी ; इससे पूर्व मुझे कभी भी इनका इतना विषैला बोध नहीं हुआ था। इच्छा हुई थी कि तार के द्वारा हृदय की कम से कम एक बात तो लिख भेजूँ, किन्तु रूढ़िगत हो जाने की आशंका से नहीं भेज सका।

उनसे अन्तिम बार अलीपुर जेल में मिला था। तभी मुझे समाचार प्राप्त हुआ था कि मेरा स्थानान्तरण बरहामपुर जेल को हो रहा है। विदा होते समय मैंने उनकी चरण-रज लेकर कहा था—"सम्भवतः अब आपसे बहुत दिन तक भेंट न हो सके।" उत्तर में उन्होंने हँसकर कहा था—"नहीं, मैं तुम लोगों को अधिक दिन तक जेल में नहीं रहने दूँगा।" हाय ! तब मुझे क्या मालूम था कि मेरी बात इतनी सत्य निकलेगी ? भाग्य की कैसी विडम्बना है।

मैंने उन्हें छः जून को एक पत्र लिखा था, क्या वह पत्र उन्हें मिल गया था ? मुझे उनका अन्तिम पत्र यहाँ मिला था। वह पत्र और उस पत्र की भाषा उनके प्यार का शेष-चिह्न हैं। मैंने ६ जून को उस पत्र का उत्तर दार्जिलिंग के पते पर भेजा था। आज से कई दिन पूर्व १४८ नं० के पते पर हम सबने आपको एक संयुक्त पत्र भेजा था। हम यह जानने को आतुर हैं कि आपको वह पत्र मिला अथवा नहीं ? यदि आपकी मनःस्थिति ठीक न हो तो लौकिक व्यवहार के कारण ही उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। केवल प्राप्ति-सूचना भेजना ही पर्याप्त होगा।

उनके बन्धु-बान्धवों और अनुयायियों में से बहुत से उनकी प्रशंसा में कुछ लिखेंगे या लिख रहे हैं, परन्तु प्रशस्ति लिखने की शक्ति हममें नहीं है। हम उनके इतने निकट रहे हैं, और उनके हृदय की विशालता और गहराई को हमने इतना अधिक अनुभव किया है कि हमारे लिए उस अनुभूतिजनित विह्वलता में कुछ भी लिख पाना सम्भव नहीं है।

जिन व्यक्तियों पर सांत्वना देने का उत्तरदायित्व है, आशा है उन्होंने उस कर्त्तव्य का पालन किया होगा। क्या मुझमें सांत्वना देने की सामर्थ्य है? मुझे तो स्वयं सांत्वना की आवश्यकता है। इसी लिए कहता हूँ कि ईश्वर आपको शक्ति और सांत्वना प्रदान करे।

भोम्बल को पत्र भेजा था, उसका उत्तर मिला। प्रत्युत्तर आगामी सप्ताह में दूँगा।

मुझे तो बाहर रहने के कारण यह भी ज्ञात नहीं कि मेरी सेवा का कोई परिणाम हुआ होता परन्तु मुझे सेवा का अवसर अवश्य मिला होता। यह बात घूम-फिरकर बार-बार मन में उठती है कि आज तो सेवा का अवसर भी नहीं रहा। मानो निराधार वासनाएँ और उनसे भी अधिक निरर्थक प्रयास किसी बन्द द्वार से टकराकर लौट रहे हैं। जहाँ मनुष्य सामर्थ्यहीन होता है वहाँ वह इच्छा से हो या अनिच्छा से, भगवान की शरण लेता है। इस कारण मैं पुनः प्रार्थना करता हूँ कि वही सांत्वना और शक्ति दें। मेरे तुच्छ हृदय की भक्ति का अर्घ्य ग्रहण करके मुझे सफल करें। इति।

आपका सेवक
सुभाष
(द्वारा डी० आई० जी०
आई० बी०, सी० आई० डी०
१३, एलिसियम रोड
कलकत्ता)

श्रीमती सी० आर० दास
२, बेलतला रोड
कलकत्ता

७८*

माँडले सैन्ट्रल जेल
१७–७–२५

आदरणीय भाई साहब,

आपके इस दीर्घकालीन मौन ने मुझे बड़ा उद्विग्न बना दिया है।··················मुझे ऐसा लग रहा कि जैसे आपके पत्र रोक लिये जाते हैं।

आज से लगभग दस दिन पूर्व, हम लोगों ने श्रीमती दास के पास एक संयुक्त शोक-पत्र प्रेषित किया था। मेरा अनुमान है कि संभवतः वे उत्तर देने की स्थिति में नहीं हैं। यदि उनका मन नहीं है तो हम भी नहीं चाहते कि वे उसका उत्तर दें। परन्तु हम इतना तो जानना चाहेंगे ही कि उनको हमारा पत्र मिला अथवा नहीं।

अभी-अभी मुझे सर टैमनी बनर्जी लिखित 'ए नेशन इन मेकिंग' की एक प्रति प्राप्त हुई है। देखने से तो मनोरंजक प्रतीत होती है।

आपका परमस्नेही
सुभाष

७९

माँडले सैन्ट्रल जेल
२२–७–२५

आदरणीय भाई साहब,

आपके चिर प्रतीक्षित पत्र को पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं तो आपके हालचाल ज्ञात करने के लिए एक तार भी भेजने वाला था।

मैं आपकी व्यस्तता को जानता हूँ, इसलिये सोचता हूँ कि जब आप न लिख सकें तब आपकी ओर से कोई और ही लिख दिया करे।
·········तार द्वारा, देशबन्धु जी के स्वर्गवास की मुझे कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई। मुझे तो यह भी ज्ञात नहीं कि इस सम्बन्ध में कोई तार आया था। इसका पता तो मुझे आपके १५–७–२५ वाले पत्र से ही लगा।
·········होम्योपैथी में देशबन्धु जी का विश्वास इतना अटल था कि उन्हें अन्य किसी प्रकार के उपचार के लिए सहमत नहीं किया जा सकता था।

* श्री शरत्चन्द्र वसु के नाम दो पत्र।

इस सम्बन्ध में श्यामदास कविराज जी की तो कुछ ऐसी धारणा है कि इस दोष के भागी उनके मित्र एवं परामर्शदाता ही हैं, जिन्होंने आयुर्वैदिक औषधियों के सेवन का वर्जन किया।

मैंने रंगून के समाचार-पत्रों में पढ़ा था कि 'फारवर्ड' का देशबन्धु-अंक बहुत सफल रहा। कृपया उसकी एक प्रति चीफ़ सैक्रेटरी महोदय के पास भेज दीजिये और साथ ही उनसे यह निवेदन भी कर दीजिये कि उसे वह मेरे पास भिजवा दें। 'फारवर्ड' यहाँ आने वाले समाचार-पत्रों की अनुमति-प्राप्त (मंजूरशुदा) सूची में नहीं है, अतः 'फारवर्ड' के इस अंक के लिए बंगाल सरकार से विशेष अनुमति प्राप्त करनी होगी।

'फारवर्ड' के निदेशालय में देशबन्धु जी के रिक्त-स्थान की पूर्ति कौन करेगा ? क्या आपने 'फारवर्ड' के निदेशालय में अन्य किसी व्यक्ति की नियुक्ति कर ली है ?

यह जानने की जिज्ञासा है कि आजकल 'फारवर्ड' के नये सम्पादक कौन हैं ? सम्भवतः श्री पी० के० चक्रवर्ती हैं।

मुझे मेअर के निर्वाचन के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना ; परन्तु इस बात का मुझे हर्ष है कि निर्वाचन के समय लगभग सभी भारतीय सदस्य एकमत रहे—परिणाम चाहे कुछ भी रहा।

यहाँ के आई० जी० महोदय भी एक शोध-स्नातक हैं। उनकी नवीनतम खोज, अभी हाल ही में वार्षिक प्रशासकीय विवरण (रिपोर्ट) में प्रकाशित हुई है। उसके अनुसार जेल में दीर्घ-काल तक जीवन बिताने वालों का स्वास्थ्य सुधर जाता है। क्या मौलिकता की पहुँच इससे भी आगे जा सकती है ?

मैं आशा करता हूँ कि कार्य में इतने अधिक व्यस्त होते हुए भी आप अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा नहीं करेंगे। किसी ने कहा भी है 'दवा से परहेज़ बेहतर होता है'। अतः उस स्थिति को ही न आने दीजिये, जिसमें औषधि की आवश्यकता पड़े।

मैं तो गम्भीरतापूर्वक बंगला-साहित्य का अध्ययन करना चाहता हूँ, परन्तु करूँ क्या, पुस्तकें तो यहाँ हैं ही नहीं। सरकार से भी बहुत लिखा-पढ़ी की परन्तु पुस्तकों के लिए अनुदान देने में वह कृपण सिद्ध हुई। मैं चाहता हूँ कि किसी 'बुक कम्पनी' के यहाँ अपना खाता खोल लूँ और उनसे अपने व्यय पर पुस्तकें सीधी यहीं मँगा लूँ। कारागार से मुक्त होने के उपरान्त उन्हें मैं भुगतान कर दूँगा और यदि वे चाहें तो तब तक का मुझसे ब्याज भी ले सकते हैं।

अब यहाँ ठण्ड बढ़ गई है, इसीलिये मैं भी अब पहले से कुछ बेहतर हूँ। अगस्त में फिर गर्मी का जोर होगा। यदि शरद् ऋतु के आगमन तक ऐसी ही ठण्ड पड़ती रही तब तो मैं भी मन लगाकर पढ़ सकूँगा। आप मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता मत कीजिये।

आपका परमस्नेही
सुभाष

८०*

मांडले जेल
७–८–२५

पूजनीया मँझली भाभी,

बहुत दिन से मैंने आपको कोई पत्र नहीं भेजा। इस सप्ताह मँझले दादा के लिए मेरे पास लिखने योग्य कुछ नहीं है। इस कारण आपको पत्र लिखने बैठा हूँ। आपको काम के सम्बन्ध में लिखने की आवश्यकता तो है ही नहीं, इस लिए घर के सम्बन्ध में ही लिखूँगा।

हमारे शास्त्रों में लिखा है—मध्वाभावे गुड़ं दद्यात्। अर्थ यह है कि जहाँ शहद का अभाव हो वहाँ गुड़ से ही शहद का काम चलाना चाहिए। इसी कारण छोटे बच्चों का अभाव यहाँ बिल्ली के बच्चों से पूरा किया जाता है। मैं छोटे बच्चों को बहुत चाहता हूँ परन्तु बिल्ली के बच्चे मुझे अच्छे नहीं लगते। विशेषत: जहाँ बिल्ली बदरंग हों उनके बच्चे तो तनिक भी नहीं भाते, फिर यहाँ मेरी बात भी तो कोई सुनना नहीं चाहता। हमारे साथ रहने वालों में से बहुत से लोग बिल्लियों को चाहते हैं। जो गरीब कैदी हमारे घरेलू काम करते हैं वह भी बिल्ली और बिल्ली के बच्चों को प्यार करते हैं। इन लोगों के बिल्ली-प्रेम के परिणामस्वरूप यहाँ बिल्लियों की संख्या बढ़ती जा रही है। यहाँ जो मेहतर का काम करता है वह व्यक्ति बिल्लियों को बहुत चाहता है। उसको सभी "मैला-लु" कहते हैं। उसका वास्तविक नाम है "लवाना" और मैला साफ करने के कारण उसका नाम रख दिया है "मैला-लु", बर्मी भाषा में "लु" का अर्थ लोग या मनुष्य है। वह मैला साफ करता है, इसी कारण उसका नाम "मैला-लु" है। मैला-लु बोलने में अच्छा नहीं लगता इसलिए "मलयालु" या मलय

* श्रीमती विभावती वसु के नाम।

कहते हैं। मलय जब सोता है तब उसके सिर के पास बिल्ली, पैर के पास बिल्ली, वक्षस्थल पर बिल्ली रहती है, चारों ओर से वह बिल्ली परिवार से घिरा हुआ सोता है। अपने भोजन में से बचाकर वह बिल्लियों को खिलाता है और हमसे दूध माँगकर बिल्ली के बच्चों को पिलाता है। जब वह 'तु' कहकर बुलाता है, तब सभी बिल्लियाँ भागी हुई आती हैं। इति, बिल्ली कथा समाप्त।

हमारा गृहस्थ बहुत छोटा नहीं है। परिवार के सदस्यों की संख्या ९ है। सभी पुरुष हैं। सब नौकर-चाकर मिलाकर कुल २० व्यक्तियों से अधिक ही होंगे, कम नहीं। हम लोग जेल के भीतर एक छोटी जेल में रहते हैं। यहाँ के लोग, क्या नौकर, क्या बाबू, अन्य कैदियों से नहीं मिल सकते। हमारे गृहस्थ में बावर्ची, मशालची, मेहतर, झाड़ू लगाने वाला आदि सभी तरह के लोग हैं। रहने के कमरे के अलावा यहाँ छोटी जेल में रसोई, पोखर, खेलने के लिए टेनिस कोर्ट आदि हैं। स्नान का कमरा गत छः माह से बन रहा है। कब तक बन जाएगा सम्भवतः यह बात ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं बता सकता।

आप समझ गई होंगी कि इस बृहत् गृहस्थ में सभी कैदी हैं—कोई सजा काटने वाले कैदी, और कोई-कोई मेरे जैसे विचार वाले सरकार के आदेश द्वारा बन्द किए गए कैदी। आप लोग सम्भवतः चोर-डकैतों का नाम सुनकर नाक-भौं सिकोड़ेंगे, परन्तु अब मैं तो जेल के कैदियों से घृणा नहीं करता। इनमें बहुत से तो विपत्ति में फँसकर अपराध करते हैं अथवा विवश होकर करते हैं। वे सभी हृदयहीन नहीं होते। इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि अच्छी दशा में रक्खे जाने पर ये व्यक्ति भले बन सकते हैं।

शास्त्र में लिखा है—"गृहिणी गृहमुच्यते", इसका अर्थ है गृहिणी न होने पर गृह गृह ही नहीं होता। हमारे यहाँ गृह तो है परन्तु गृहिणी नहीं है। गृहिणी के अभाव के कारण हमारे यहाँ एक मैनेजर बाबू को नियुक्त किया गया है। मैनेजर बाबू हमारे जैसे विचाराधीनों का बन्दी है। वह हिसाब आदि रखता है, दैनिक सौदा सुलुफ की सूची बनाता है। घरेलू कार्यों में वह सर्वेसर्वा है। हमारा यह विशाल गृहस्थ उसकी उँगली के इशारों पर नाचता है। खाने-पहनने के लिए हम उसे उत्तरदायी समझते हैं, और खराब भोजन मिलने पर हम उसे गाली देने से भी नहीं चूकते। हमारे इस गृहस्थ का नाम रखा गया है—अमुक बाबू का होटल।

यहाँ का भोजन साधारणतया बुरा नहीं है। कई दिन से भोजन

को लेकर अधिकारी वर्ग के साथ खींचातानी चल रही है। न मालूम यह बात कहाँ तक बढ़ेगी। बंगाली मिष्टान्न के अतिरिक्त यहाँ अन्य वस्तुएँ बुरी नहीं मिलतीं, परन्तु सामान का मूल्य बहुत अधिक है। मैनेजर बाबू की कृपा से यहाँ, आँगन के एक कोने में, एक मुर्गीशाला खुल गई है। उस कमरे में कई मुर्गे-मुर्गियाँ रखे गए हैं। प्रातः-सन्ध्या इन पंखवाले जीवों की कुकड़ूँ कूँ की आवाज से मैं परेशान हो जाता हूँ; परन्तु जब यह मधुर स्वर नहीं सुनाई पड़ता तो मैनेजर बाबू को नींद नहीं आती।

आँगन के मध्य एक छोटी-सी पोखर है जिसमें हमारी नाक तक पानी आता है। उस पोखर के साफ रहने पर हम उसमें कूद कर तैरने का थोड़ा बहुत प्रयास करते हैं। वहाँ डूब कर मर जाने का भय तो है ही नहीं परन्तु वहाँ अच्छी तरह तैरा नहीं जाता। मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि शहद के अभाव में लोग गुड़ खाते हैं। हम भी नदी के अभाव में बड़े हौज़ में तैर कर मन बहला लेते हैं।

मैनेजर बाबू के प्रयास से इस आँगन में कई प्रकार के फूलों के पौधे बोये गए हैं। उनमें गन्धहीन सूरजमुखी के ही पौधे अधिक हैं। इस राज्य में सुगन्धित पुष्प मिलना सरल कार्य नहीं है। पता नहीं यह इस देश का गुण है अथवा जेल का प्रभाव। जेल के भीतर तो रातरानी से भी गन्ध नहीं आती।

मुझे तो इस सप्ताह अपनी कहानी अधूरी ही रखनी पड़ेगी क्योंकि इस सप्ताह में दोबारा डाक नहीं जाएगी। यह कहानी सबको पढ़कर सुनाना, मँझले दादा को भी। मैं हर सप्ताह घर पत्र भेजता हूँ। यदि किसी सप्ताह में मेरा पत्र न पहुँचे तो यहाँ के अधीक्षक को पत्र या तार भेजकर मेरा समाचार ज्ञात कर लेना।

आप सब कैसे हैं? कहिये मेरी कहानी अच्छी लगी या नहीं? पत्र लिखना। यदि कहानी अच्छी लगे तो मैं और भी लिख सकता हूँ। मेरा प्रणाम स्वीकार हो। इति।

सुभाष

८१*

माँडले जेल
१२-८-२५

श्रद्धास्पदेषु,

मासिक 'बसुमती' में आपकी 'स्मृतिकथा' तीन बार पढ़ी, बहुत ही रुचिकर लगी। मानव चरित्र-चित्रण में आपकी गम्भीर अन्तर्दृष्टि है। देशबन्धु से घनिष्ट परिचय, मित्रता और आत्मीयता, तथा छोटी-छोटी घटनाओं का अपूर्व विश्लेषण करके रस और सत्य खोज निकालने की शक्ति आप में है। इतने थोड़े उपकरणों के होते हुए भी आप इतनी सुन्दर रचना प्रस्तुत करने में सफल हो गए।

उनके अन्तरंग मित्रों के हृदय में कई गुप्त व्यथाएँ छुपी रह गई थीं। आपने उनमें से कुछ का उल्लेख करके सत्य को प्रकाशित ही नहीं किया अपितु हमारे हृदय के भार को भी हल्का किया है। वास्तव में पराधीन देश का सबसे बड़ा अभिशाप यही है कि स्वतन्त्रता-संग्राम में विदेशियों की अपेक्षा देशवासियों से ही अधिक लड़ना पड़ता है। इस युक्ति की निष्ठुर वास्तविकता आपके अनुग्रह से कार्यकर्त्ताओं ने भली भाँति समझ ली है और अब भी समझ रहे हैं।

आपके सब लेखों में ये बातें मुझे सर्वाधिक पसन्द आईं—"एकान्तप्रिय, एकान्त में अपने लोगों के लिए मनुष्य के हृदय में जैसा ज्वलन होता है—यह वही है। जितने भी लोग उनके निकट थे आज उन सभी के पास अपने दारुण दु:ख को व्यक्त करने के लिए भाषा तक नहीं है। कोई बात दूसरों को बताना भी अच्छा नहीं लगता।" वास्तव में हृदय की गूढ़ बातें क्या दूसरों को बताई जा सकती हैं? वे उपहास करें तब वह तो सहन किया जा सकता है, परन्तु यदि वे रस-बोध न कर सकें तो असह्य हो उठता है, विचार आता है—"अरसिकेषु रसनिवेदनं शिरसि मा लिख।" हमारे हृदय की वाणी अन्तरंग के अतिरिक्त और कौन समझ सका?

हमें आपकी लिखी हुई एक और बात बहुत प्रिय लगी—"हम करते थे देशबन्धु के काम।" मैं ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूँ जो उनके मत में विश्वास नहीं रखते थे परन्तु ज्ञात होता है कि उनके विशाल हृदय के मोहक आकर्षण से बँधकर वे उनके लिए काम किए बिना नहीं रह

* श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के नाम।

सकते थे। मैंने उन्हें समाज में प्रचलित मापदण्ड से मनुष्य चरित्र पर विचार करते हुए नहीं देखा। उनका इस बात में विश्वास था, वास्तव में यह विश्वास ही उनके जीवन का आधार था, कि मनुष्यों के गुण-अवगुण स्वीकार करके ही उनसे प्रेम करना उचित है।

बहुत से लोगों की धारणा है कि हम उनका अन्धानुकरण करते थे, परन्तु अपने प्रमुख शिष्यों के साथ उनका विरोध था। अपनी ही बात कह सकता हूँ कि अनेक विषयों पर उनसे लड़ाई तक हो जाती थी, परन्तु मैं यह जानता था कि कितना भी झगड़ा क्यों न कर लूँ मेरी भक्ति और निष्ठा अडिग रहेगी और मैं उनके प्यार से कभी वंचित नहीं हूँगा। उन्हें भी विश्वास था कि कितने ही आँधी-तूफान क्यों न आएँ परन्तु मैं उनके चरणों में ही रहूँगा। हमारे सब झगड़ों का बीच-बचाव माँ (श्रीमती वासन्ती देवी) द्वारा होता था। परन्तु हाय, आज तो वह सब करने का अवसर भी हमारे पास नहीं रहा।

आपने एक स्थान पर लिखा है—"जन नहीं है, धन नहीं है, हाथ में एक कागज नहीं है, जो लोग अत्यन्त छोटे हैं वे भी गाली-गलौज के बिना बात नहीं करते, देशबन्धु की यह कैसी दशा है?" मुझे अभी तक उस दिन की बात भली भाँति याद है जब हम गया कांग्रेस से कलकत्ता लौट रहे थे। अनेक प्रकार के असत्य और आंशिक-सत्य समाचारों से बंगाल के समाचार-पत्र भरे पड़े थे। हमारे पक्ष में तो उन्होंने कोई बात लिखी ही नहीं, यहाँ तक कि हमारे वक्तव्यों को भी समाचार-पत्र में स्थान नहीं दिया। उस समय स्वराज्य (पार्टी) कोष प्रायः समाप्त हो गया था। जब धन की बहुत आवश्यकता होती है तब धन नहीं मिला करता। जिस घर में एक समय आदमी नहीं समाते थे, तब वहाँ, क्या मित्र और क्या शत्रु, किसी की चरणरज तक नहीं पड़ती थी। इसी कारण हम दो-चार लोग ही मिल बैठकर बातचीत करते रहते थे। कुछ दिनों के पश्चात जब उस घर का गौरव लौटा, तब बाहर के मनुष्यों और पद-प्रार्थियों ने आकर सभास्थल पर आसन ग्रहण किए। हमें काम की बातें बताने का भी समय नहीं मिला। कितने परिश्रम के परिणामस्वरूप, किस घोर परिश्रम से भण्डार में धन-राशि एकत्र की गई थी। अपना समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ और जनमत को अनुकूल दिशा में मोड़ा गया; यह बातें बाहर के लोगों को ज्ञात नहीं हैं, सम्भवतः हो भी नहीं सकती। परन्तु इस यज्ञ का प्रधान पुरोहित यज्ञ पूर्ण होने से पूर्व ही कहाँ अदृश्य हो गया? भीतर की अग्नि और बाहर के कार्य का बोझ, इन दोनों की गुरुता को उनका पार्थिव शरीर और

अधिक नहीं सहन कर सका।

बहुत से लोगों का विचार है कि उनके स्वदेश-सेवा व्रत का अर्थ था मातृभूमि के चरणों में अपना सब कुछ उत्सर्ग कर देना। परन्तु मुझे ज्ञात है कि उनका उद्देश्य इससे भी महान था। उन्होंने अपने परिवार को भी देश के चरणों में उत्सर्ग करना चाहा था। इस कार्य में वह बहुत कुछ सफल भी रहे। १९२१ ई० की धरपकड़ के समय उन्होंने संकल्प किया था कि एक-एक करके अपने परिवार में से सबको जेल भेज देंगे और उनके साथ ही स्वयं भी जेल चले जायेंगे। उनका विचार था कि अपने पुत्र को जेल भेजे बिना वह किसी दूसरे के पुत्र को जेल जाने को कैसे कहें ? मुझे उनका यह आदर्श दृष्टिकोण जँचा नहीं। हम लोग जानते थे कि वह शीघ्र ही पकड़े जाएँगे, इसीलिए हमने कहा था कि उनके गिरफ्तार होने से पूर्व उनके पुत्र को जेल जाने की आवश्यकता नहीं है, और एक भी पुरुष के रहते हुए हम किसी महिला को जेल नहीं जाने देंगे। बहुत देर तक वाद-विवाद हुआ परन्तु कोई निर्णय नहीं हो सका। हमने जब किसी भी प्रकार उनके विचार का समर्थन नहीं किया तब उन्होंने कहा था कि 'यह मेरा आदेश है और इसका पालन करना ही पड़ेगा।' हमने उनका आदेश सिर झुकाकर मान लिया।

उनकी बड़ी कन्या विवाहिता थी, उस पर उनका अधिकार न था। इस कारण उसको वह जेल नहीं भेज सके। छोटी कन्या वाग्दत्ता थी, उसे भेजना उचित है या नहीं, इस विषय में बहुत तर्क-वितर्क हुआ। वह तो भेजना चाहते थे, लड़की भी जाना चाहती थी, परन्तु और सब लोगों का मत था कि उसको नहीं भेजना चाहिए। इसका कारण यह था कि एक तो वह बीमार थी, दूसरे उसका वाग्दान हो चुका था। इस सम्बन्ध में देशबन्धु को और लोगों का मत मानना पड़ा। यह निश्चित हुआ कि पहले भोम्बल जाएगा, फिर वासन्ती देवी और उर्मिला देवी जाएँगी, और जिस समय उनका बुलावा आएगा वह उसी समय जाने के लिए तैयार रहेंगे।

बाह्य घटनाएँ तो सबको ज्ञात हैं, परन्तु इस घटना के पीछे जो भाव, आदर्श और प्रेरणा छिपी है उनके सम्बन्ध में कितने लोग जानते हैं ? उतनी साधना केवल उन्हीं की नहीं अपितु समस्त परिवार की है। मेरी धारणा है कि महापुरुषों का महत्व बड़ी-बड़ी घटनाओं की अपेक्षा छोटी छोटी घटनाओं से अधिक उजागर होता है। आषाढ़ और श्रावण मास की 'बसुमती' में मैंने देशबन्धु के सहयोगियों तथा अनुयायियों के लेख ध्यान से

पढ़े थे। उनमें से अधिकांश लेख अस्पष्ट हैं और कई तो पुनरुक्ति दोष से भरे हुए हैं। केवल आपने ही छोटी-छोटी घटनाओं के विश्लेषण द्वारा देशबन्धु का चरित्र अंकित करने का प्रयास किया है। आपका लेख पढ़कर बड़ा संतोष हुआ।

.........मुझे देशबन्धु के शिष्यों और सहयोगियों से बहुत आशा थी। यदि वह कुछ भी न लिखते तो ठीक रहता।

समय-समय पर मैं यह स्वीकार किए बिना नहीं रह सकता कि देशबन्धु की अकाल-मृत्यु और शरीर-त्याग के लिए उनके देशवासी तथा अनुयायी ही उत्तरदायी हैं। यदि वह उनके काम के बोझ को कुछ हल्का कर देते तो सम्भवत: उनको इतना अधिक श्रम नहीं करना पड़ता जिससे कि उनकी जीवन-शक्ति ही समाप्त हो गई। हमारे यहाँ ऐसी परम्परा है कि जिनको एक बार नेतृत्व देते हैं उनके ऊपर इतना बोझ डाल देते हैं, और उनसे इतनी आशाएँ करते हैं कि किसी भी मनुष्य के लिए इतना भार ढोना या आशाएँ पूर्ण करना सम्भव नहीं होता। राजनीति का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व हम नेता को सौंपकर स्वयं निश्चिन्त बैठे रहना चाहते हैं।

जाने दीजिए, मैं भी किस बात से आरम्भ करके कहाँ पहुँच गया? हमारी, केवल हमारी ही क्यों यहाँ सब ही की इच्छा है और अनुरोध है कि आप 'स्मृति-कथा' के समान देशबन्धु के सम्बन्ध में और भी कई प्रबन्ध अथवा कहानियाँ लिखें। आपका भण्डार इतनी शीघ्रता से रिक्त नहीं हो सकता, इसलिए हमें इस बात की आशंका नहीं कि लिखने के लिए सामग्री का अभाव होगा। नि:सन्देह यदि आप लिखेंगे तो सुदूर माँडले जेल में बैठकर कई बंगाली राजबन्दी भी अत्यन्त प्रसन्नता के साथ उन लेखों एवं रचनाओं का पाठ और उपयोग करेंगे।

मैं सम्भवत: बहुत दिन तक यहाँ नहीं रहूँगा। परन्तु जेल से मुक्त होने की अब पहिले जैसी आकांक्षा नहीं है। जेल से बाहर जाते ही श्मशान की-सी शून्यता मुझे घेर लेगी, उसकी कल्पना मात्र से ही मेरा हृदय काँप जाता है। यहाँ सुख-दु:ख की स्मृति और स्वप्न में मेरा समय एक प्रकार से व्यतीत हो रहा है। पिंजरे की सलाखों में आघात करके जो ज्वलन-बोध होता है, उस ज्वलन में भी सुख मिलता है, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। जिस महापुरुष से हार्दिक प्रेम करने के फलस्वरूप मैं आज यहाँ हूँ—उनको वास्तव में मैं प्रेम करता हूँ। इसी कारण सम्भवत: बन्द फाटक से टकराकर क्षत-विक्षत हृदय सुख, शान्ति और एक तृप्ति प्राप्त करता

है। बाहर की निराशा शून्यता, और उत्तरदायित्व को मेरा मन ग्रहण नहीं करना चाहता।

यदि मैं यहाँ न आता तो मुझे इस तथ्य का ज्ञान भी न होता कि स्वर्ण-भूमि बंगाल को मैं कितना प्यार करता हूँ। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि सम्भवतः रवि बाबू ने कारावास की दशा की कल्पना करके ही यह लिखा होगा—

सोनार बंगला, आमि तोमाय भालोबासी।
चिरदिन तोमार आकाश, तोमार बातास
आमार प्राणे बाजाय बांशी।

[स्वर्ण-भूमि बंगाल, मैं तुझे प्यार करता हूँ।
चिरदिन तेरा आकाश, तेरा पवन
मेरे हृदय में वंशी बजाता है।]

जब क्षणभर के लिए भी चर्मचक्षुओं के आगे बंगाल का विचित्र रूप आता है तब सोचता हूँ कि अन्ततः इस अनुभूति के लिए इतने कष्ट सहन करके माँडले जेल आना सार्थक हुआ। इससे पूर्व कौन जानता था कि बंगाल की धूलि, बंगाल के आकाश, बंगाल के वातास में इतना माधुर्य छिपा हुआ है।

मुझे यह ज्ञात नहीं कि मैंने यह पत्र क्यों लिखा? पहले कभी सोचा भी नहीं था कि आपको पत्र लिखूँगा। आपका लेख पढ़कर मन में कई बातें उठीं तब लिख दिया है। जब लिख दिया है तब इसे आपके पास भेजना भी वांछनीय है। हम सबका प्रणाम स्वीकार करना। मन आए तो पत्रोत्तर दीजिए। उत्तर पाने का अधिकार मुझे नहीं है। सम्भवतः आप उत्तर देंगे इसी आशा से पत्र लिख रहा हूँ। इति।

(द्वारा डी० आई० जी० आई० बी०, सी० आई० डी०)
१३, एलिसियन रोड,
कलकत्ता

८२*

माँडले सैन्ट्रल जेल
अपर बर्मा
२८–८–२५

प्रिय श्री केलकर,

आपके पास पिछले कई महीने से पत्र प्रेषित करने का विचार कर रहा था। इस पत्र के लिखने का उद्देश्य केवल आपके पास कुछ मनोरंजक सामग्री भेजना है। मेरी जानकारी में तो सम्भवतः आपको यह भी ज्ञात नहीं कि पिछली जनवरी से मैं यहाँ कारागार में हूँ। जब मुझे बंगाल की बरहामपुर जेल में, पिछले वर्ष जनवरी में माँडले जेल के लिये स्थानान्तरण सम्बन्धी आदेश प्राप्त हुआ था, उस समय यह विचार मेरे मन में नहीं आया था कि माँडले जेल तो वह स्थान है, जहाँ स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने अपने दीर्घ कारावास का अधिकांश भाग व्यतीत किया था। वास्तव में जब तक मैं यहाँ नहीं पहुँचा था तब तक मैंने यह अनुभव ही नहीं किया कि इस जेल की चारदीवारी के अन्दर, इस उदास वातावरण में, स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने अपना प्रसिद्ध गीताभाष्य लिखा था। मेरी तुच्छ राय में यह वह भाष्य है जिसके कारण उनकी गणना श्री शंकराचार्य एवं रामानन्द सरीखे प्रकाण्ड पण्डितों में की जाती है।

वह वार्ड, जिसमें कभी लोकमान्य रहे थे, आज भी विद्यमान है, अन्तर केवल इतना है कि इसका बाहरी ढाँचा बदल दिया गया है और इसे कुछ बढ़ा भी दिया गया है। हमारे वार्ड की तरह ही यह वार्ड भी काष्ठ-स्तम्भ-वलयों से निर्मित है, जहाँ ग्रीष्म-काल में न ऊष्मा से बचाव है, न सूर्य की प्रखर किरणों से। यहाँ पावस में वर्षा से, शीतकाल में ठण्ड से और वर्ष भर चलने वाली धूल-भरी आँधियों से बचने का भी कोई सहारा नहीं है। मेरे यहाँ पहुँचने के कुछ मिनट पश्चात् ही, मुझ से इस वार्ड की ओर संकेत किया गया था। मैंने भारत से निर्वासित किये जाने के विचार को पसन्द नहीं किया था। मुझे यहाँ माँडले में बरबस अपने प्रिय देश और घर से दूर, बहुत दूर, पटक दिया गया। ऐसी स्थिति में भी मुझे सान्त्वना एवं उत्साहप्रदायिनी पावन स्मृतियाँ उपलब्ध हुईं,

* श्री एन० सी० केलकर के नाम (इस पत्र को सैन्सर ने इस आधार पर रोक लिया था कि इसमें सरकार की आलोचना की गई है।)

उनके लिए मैं प्रभु को धन्यवाद देता हूँ। इस श्रेणी के अन्य कारागारों की भाँति ही यह जेल भी कुरूप, नीरस और अरुचिकर है ; परन्तु मेरे लिए यह एक तीर्थस्थान है, क्योंकि इसको भारत के एक महापुरुष ने निरन्तर ६ वर्ष के आवास से पवित्र किया था।

यह तो हम सबको विदित ही है कि लोकमान्य ६ वर्ष तक कारागार में रहे; परन्तु मेरी यह पक्की धारणा है कि कदाचित ही हम में से कोई यह जानता है कि उन्होंने इस अवधि में कैसी कैसी शारीरिक और मानसिक यातनायें भोगीं। मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि वे यहाँ अकेले रहे। यहाँ उनका कोई बुद्धिजीवी साथी भी न था। केवल इतना ही नहीं, बल्कि वे अन्य बन्दियों से मिल-जुल भी नहीं सकते थे। सान्त्वना के लिए केवल पुस्तकों का ही उन्हें एकमात्र सहारा था, अन्यथा उनका जीवन पूर्णरूपेण एकाकी था। वे जितने समय तक यहाँ जेल में रहे, उस अवधि में केवल दो या तीन मुलाकातें ही उनके साथ हुईं; और वे भी पुलिस अथवा जेल अधिकारियों की उपस्थिति में। अतः वे कभी भी अपने दिल की बात किसी से खुलकर न कह पाये।

उनके पास समाचार-पत्रों के पहुँचने पर भी प्रतिबन्ध था। उस कोटि के नेता एवं राजनीतिज्ञ को, जिसकी जन-हृदय पर इतनी गहरी छाप हो, बाहरी संसार से पूरी तरह से बेख़बर रक्खा जाना क्या किसी भी दशा में संपीड़न से कम है? मेरी इस बात में कितना सत्य है, इसे केवल वही व्यक्ति अनुभव कर सकता है, जो कभी ऐसी परि-स्थितियों में से गुज़रा हो। उनके परिरोध काल में हमारे देश का राजनैतिक जीवन ह्रासोन्मुख था। न वह उद्देश्य ही आगे बढ़ रहा था जिसके लिए उन्होंने इतना संघर्ष किया था। अतः किसी भी रूप में उन्हें सान्त्वना प्राप्त न हो रही थी।

उनकी शारीरिक यातनाओं के सम्बन्ध में जितना कम कहा जावे उतना ही उत्तम है। वे दण्ड संहिता के आधीन एक सिद्ध-दोषी थे। अतः आज के राजबन्दियों की अपेक्षा उनको कुछ अंशों में अधिक ही यातनायें भोगनी पड़ी होंगी। केवल इतना ही नहीं, वे मधुमेह से भी पीड़ित थे। जहाँ तक माँडले के जलवायु का प्रश्न है वह तो तब भी वैसा ही होगा जैसा कि आज है। यदि आज के नवयुवक इस बात का परिवाद करते हैं कि यहाँ की जलवायु स्नायु-शक्ति क्षीण करने वाली है, वह मन्दाग्नि और गठिया को भी प्रोत्साहन देती है और शारीरिक शक्ति का भी शनैः

शनैः परन्तु सतत रूप से उन्मूलन करती है, तब ऐसी स्थिति में अनुमान लगाइए कि वयोवृद्ध लोकमान्य को कितनी वेदना अनुभव होती होगी।

इस जेल की परिसीमा के अन्तर्गत उन्होंने कैसी कैसी यातनायें भोगीं, इसे कौन जानता है ? आकस्मिक रूप से एक बन्दी के जीवन में न जाने कितनी छोटी-छोटी खटकने वाली बातें होती हैं, जो कुछ अवसरों पर उसके जीवन को असहनीय बना देती हैं। भला उन बातों से कितने लोग परिचित हैं ? वे गीता की दिव्य ज्योति से ज्योतित थे। इसी-लिए संभवतः वे सब कष्टों—मानसिक एवं शारीरिक—तथा पीड़ा-जनित वेदना से ऊपर थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने कष्टों के सम्बन्ध में किसी से एक शब्द भी नहीं कहा।

मैंने प्रायः उस स्थिति पर मनन किया है, जिसके आधीन लोकमान्य तिलक को अपने बहुमूल्य जीवन के छः वर्ष बलात् व्यतीत करने पड़े थे। मैंने अपने मन से बार-बार यह प्रश्न भी पूछा है, "यहाँ का जीवन यदि नवयुवकों को इतना कष्टप्रद प्रतीत होता है तो लोकमान्य को, अपने बन्दी जीवन में न जाने कितने कष्ट उठाने पड़े होंगे, जिनके विषय में उनके देशवासी आज तक अनभिज्ञ हैं। संसार ईश्वर की कृति है, परन्तु जेलें मानव निर्माण का प्रतीक हैं। उनका अपना एक अलग ही संसार है, जिसके ऊपर सभ्य समाज के विचारों एवं प्रथाओं का शासन नहीं चलता। अपनी आत्मा का पतन किए बिना अपने जीवन को एक बन्दी के जीवन के अनुरूप बना लेना कोई सरल कार्य नहीं है। ऐसा करने के लिए एक व्यक्ति को अपनी पुरानी आदतों के परित्याग के साथ-साथ अपने स्वास्थ्य एवं पौरुष का संरक्षण भी करना पड़ता है, हर प्रकार के नियमनों की स्वीकृति के साथ-साथ उत्साह के उत्प्लावन का संरक्षण करना पड़ता है और दासता की अस्वीकृति के साथ-साथ स्थितप्रज्ञता को बनाए रखने में आनन्द अनुभव करना पड़ता है। केवल लोकमान्य जैसे असाधारण इच्छाशक्ति वाले दार्शनिक ही कारागार के पुंसत्वहरण करने वाले प्रभावों पर विजय प्राप्त कर सकते थे, कष्ट और बन्धनों के मध्य मानसिक शान्ति बनाए रख सकते थे और गीता-भाष्य जैसे स्मरणीय एवं युगान्तरकारी ग्रंथ को प्रस्तुत कर सकते थे।

लोकमान्य तिलक के गीता-भाष्य जैसे गहन एवं उत्कृष्ट ग्रंथ को सर्वथा विपरीत, उत्साह भंग करने वाले और शारीरिक शक्ति को क्षीण करने वाले वातावरण में रहते हुए प्रस्तुत करने के लिए, बौद्धिक योग्यता के अतिरिक्त, कितनी आत्मशक्ति, साधना की कितनी गम्भीरता एवं

सहनशीलता की आवश्यकता पड़ी होगी, इस रहस्य की अनुभूति कुछ समय के लिए जेल जाने के उपरान्त ही संभव है। जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत प्रश्न है—जितना-जितना मैं इस विषय पर मनन करता हूँ, उतना ही उतना मैं श्रद्धा एवं आदर से आत्म-विभोर हो जाता हूँ। मुझे आशा है, लोकमान्य जी की महानता को मापते समय, मेरे देशवासी इन सब तथ्यों पर अवश्य विचार करेंगे। वे वह व्यक्ति थे, जो इतने दीर्घ काल तक जेल में रहने के उपरान्त भी जीवित रहे, यद्यपि वे मधुमेह के रोगी थे। इतने पर भी उन्होंने अपनी बौद्धिक शक्ति एवं संघर्ष की क्षमता का ह्रास न होने दिया और उस अन्धकार के युग में अपनी मातृ-भूमि को गीता-भाष्य जैसा अनुपम ग्रंथ भेंट किया। निःसंदेह ऐसा व्यक्ति तो संसार के महानतम पुरुषों की प्रथम पंक्ति में स्थान पाने का अधिकारी है।

परन्तु प्रकृति के वे कठोर नियम जिनकी सत्ता की लोकमान्य जी ने अपने बंदी काल में अवहेलना की थी, अब उनसे प्रतिशोध लेने के लिए तत्पर हो गये थे। मेरा विश्वास है कि अलीपुर सैन्ट्रल जेल में जिस प्रकार देशबन्धु जी के प्राणघातक रोग का श्रीगणेश हुआ था ठीक उसी प्रकार माँडले जेल में लोकमान्य जी के प्राणघातक रोग का भी सूत्रपात हुआ था। यही कारण है कि जेल से मुक्त होने के उपरान्त लोकमान्य जी भी बहुत थोड़े दिन ही जीवित रहे। यह बड़ी ही दयनीय स्थिति है कि हमारे देश के महानतम व्यक्तियों का अन्त इस प्रकार हो, परन्तु मैं समझता हूँ कि हम इन दुःखान्त घटनाओं को किसी भी प्रकार रोक नहीं सकते। सादर,

आपका
सुभाषचन्द्र बोस

२०–८–२५

श्री एन० सी० केलकर
पूना

८३*

द्वारा डी० आई० जी०,
आई० बी०, सी० आई० डी०,
बंगाल
१३, एलीसियम रो,
कलकत्ता ।

माँडले जेल
११-९-२५

प्रिय दिलीप,

मैं पिछले पत्र में अपनी पूरी बात नहीं कह पाया था। उसी के अन्तर्विषय को लेकर आगामी सप्ताह में दूसरा पत्र प्रेषित करने की बात सोच रहा था ; इसी बीच में एक भयंकर आपत्ति आ धमकी, जिसने हमारे पैर ही उखाड़ दिए। आज भी मुझे ज्ञात नहीं कि मैं कहाँ हूँ? इस सम्बन्ध में मुझे निश्चय है कि अन्य व्यक्तियों की भावनायें भी बहुत कुछ ऐसी ही हैं। यद्यपि मेरे लिए तो यह एक ऐसी व्यक्तिगत क्षति है, जिसकी पूर्ति नहीं की जा सकती। इसने मेरी व्यथा को और भी अधिक गम्भीर बना दिया है। केवल इतना ही नहीं बल्कि मेरे बन्दी जीवन के कष्टों को और भी अधिक व्यापक बना दिया है। व्यक्तिगत हानि की पूर्ति तो समय की गति के साथ-साथ हो जावेगी, परन्तु मेरे विचार से, जनता के लिए इस हानि की मात्रा, समय की समाप्ति के साथ-साथ अधिकाधिक स्पष्ट होती जावेगी। उनकी बहुज्ञता इतनी उत्कृष्ट थी, उनके क्रिया-कलाप इतने व्यापक थे कि उनके निधन से जनता को आघात पहुँचना अवश्यम्भावी है। मैं तो यह कह कर कि आप तो हर समय कामों में घिरे रहते हैं, उनकी आलोचना किया करता था ; परन्तु सृजनात्मक भावना वाले व्यक्ति धृष्टतापूर्ण अथवा तर्कपूर्ण परिसीमाओं के सम्मुख नहीं झुका करते। निःसन्देह यह उनके जीवन की पूर्णता और अनुभूति थी जो उन्हें हमारे राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पुनर्निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया करती थी।

कम से कम तुम्हें तो उनको अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने का अवसर प्राप्त हुआ और आज भी तुम उनकी स्मृति को स्थायी बनाकर

* श्री दिलीप कुमार राय के नाम।

कुछ सान्त्वना प्राप्त कर सकते हो। ऐसे संकट के समय मैं दूर, घर से बहुत दूर, माँडले जेल में बन्दी हूँ। इसी का परिणाम है कि हमारे मनों में पूर्ण निराश्रयता का भाव व्याप्त हो गया है ; परन्तु ईश्वरेच्छा यही है। मैं स्वभाव से अत्यधिक आशावादी हूँ, तभी तो अपना मानसिक सन्तुलन बनाये हुए हूँ। मैं बहुत उद्विग्न हूँ, ढूँढने पर भी उपयुक्त शब्द नहीं पा रहा, अतः इस विषय को यहीं छोड़ता हूँ।

तुम्हारी पुस्तकों में कहाँ तक प्रगति हुई है ? क्या छपने भेज दीं ? कब तक निकलने की आशा है ? तुम अंग्रेजी भाषा में भारतीय संगीत के पुनरुद्धार एवं उसकी लोकप्रियता की आवश्यकता पर पुस्तक क्यों नहीं लिखते ? इससे तो अन्य प्रान्त वालों को भी लाभ पहुँचेगा।

मैंने आज से कुछ दिन पूर्व शोकसन्तप्त रुद्र के पास संवेदना का एक पत्र डाला था ; किन्तु अभी तक कोई उत्तर नहीं आया। क्या आपको उसके समाचार मिलते रहते हैं ?

क्या तुम अपने पूज्य पिताजी की समस्त रचनाओं का एक सैट मेरे पास भेज सकोगे ? उन्हें पुनः पढ़ने की इच्छा है। यदि तुम चाहो तो उन्हें सीधा यहाँ के जेल सुपरिन्टैन्डैन्ट के पास भेज सकते हो। प्रेषण-सूचना सम्बन्धी पत्र में उन सब पुस्तकों के नाम भी दे दो। हमारे पहुँचने वाले पत्र कलकत्ता आफिस के माध्यम से आते हैं, परन्तु जेल सुपरिण्टैन्डैन्ट को पुस्तकों का सैंसर करने का अधिकार है। पुस्तकों को सीधा उनके पास भेजकर समय की कुछ बचत की जा सकती है। हाँ, यह तो बतलाओ तुर्गनेव की 'धुआँ' नामक पुस्तक का कोई पता लगा ? कलकत्ते के गुप्तचर-विभाग ने मुझे सूचित किया है कि उनके पास उपरोक्त नाम की कोई पुस्तक नहीं आई। यदि यह पुस्तक गुम हो गई तो मुझे बड़ा दुःख होगा।

यद्यपि यहाँ की जलवायु मेरे अनुकूल नहीं है, फिर भी दिन प्रतिदिन मेरी प्रसन्नता बढ़ती ही जा रही है। उलझी हुई समस्यायें सुलझती नज़र आ रही हैं। मैं इस एकान्तवास और घर से दूरी को धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि इसने मुझे सर्वथा पृथक् दृष्टिकोण प्रदान किया है, जो हमारी अधिकांश समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है। यदि मैं शारीरिक दृष्टि से कुछ और अधिक स्वस्थ होता तो मैं इस बलात् निष्कासन से कुछ और अधिक लाभान्वित होता। परन्तु इस स्थिति में भी मैं यहाँ रुकने का जो अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सकता है, वह अवश्य उठाऊँगा। बहुत-सी बातों में बर्मा एक विचित्र देश है ;

और मेरा बर्मी-जीवन एवं सभ्यता विषयक अध्ययन मुझे नये-नये विचार प्रदान कर रहा है। यद्यपि उनमें बहुत से दोष हैं, फिर भी मैं बर्मा निवासियों को, चीनियों के समान ही, सामाजिक दृष्टिकोण से पर्याप्त प्रगत अवस्था में पाता हूँ। उनमें सबसे अधिक अभाव स्वतः प्रेरण का है। बर्गसन ने इसी कमी को 'इलान वाइटल' का नाम दिया है। यह महत्वपूर्ण मनोवेग ही हमारी समस्त रुकावटों पर विजय प्राप्त करके उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करता है। अपने यहाँ उन्होंने पूर्ण सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना की है। यहाँ की महिलायें तो योरप के किसी भी देश की महिलाओं से अधिक सामर्थ्यवान हैं; परन्तु बड़े खेद की बात है कि वहाँ की दुर्बलता प्रदायिनी जलवायु ने उनकी समस्त स्वतः प्रेरण शक्ति का अपहरण कर लिया है। वहाँ की जनसंख्या कम है और अन्न खूब उत्पन्न होता है। इसीलिए तो शताब्दियों से उनका जीवन सरलता से व्यतीत होता आ रहा है। इसका अनिवार्य रूप से यह परिणाम हुआ है कि उनकी मानसिक और शारीरिक शिथिलता ने उन पर अधिकार जमा लिया है, परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि वे एक बार अपनी स्वतः प्रेरण शक्ति को पर्याप्त मात्रा में विकसित कर लेते हैं तो देखिये वे कितनी उन्नति करते हैं।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि बर्मा में शिक्षित स्त्री-पुरुषों का प्रतिशत भारत के किसी भी भाग के शिक्षित स्त्री-पुरुषों के प्रतिशत से अधिक है। बर्मा में शिक्षा के इतने व्यापक प्रसारण का श्रेय वहाँ की अपनी आश्चर्यजनक रूप से सस्ती प्रारम्भिक शिक्षा-प्रणाली को है, जो धर्म-गुरुओं के माध्यम से संचालित की जाती है। बर्मा में आज भी बालक यदि एक वर्ष के लिए नहीं तो कम से कम कुछ महीनों के लिए तो अवश्य ही पीले वस्त्र धारण करते हैं और गुरु के चरणों में बैठ कर शिक्षा ग्रहण करते हैं। प्रारम्भिक शिक्षा की यह प्रणाली केवल शिक्षाप्रद एवं नैतिक गुण प्रदान करने वाली ही नहीं है अपितु समानता का भाव भी उत्पन्न करने वाली है; क्योंकि इसके द्वारा धनी और निर्धन एक दूसरे के निकट आ जाते हैं। इस प्रकार देश में प्रारम्भिक शिक्षा का खूब प्रसार है और खर्च भी नगण्य है।

तुम्हारे पिछले पत्र से तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी यह धारणा है कि अदार्शनिक व्यक्तियों को परिरोध काल में बड़े कष्ट भोगने पड़ते हैं; परन्तु यह बात तो पूर्णरूपेण सत्य नहीं है। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जिन्हें किसी न किसी प्रकार आदर्शवाद से प्रेरणा मिलती है; किन्तु वे लोग होते हैं अदार्शनिक। गत युद्ध में अनेकानेक व्यक्तियों ने

कष्ट भोगे और हर प्रकार के दु:ख उठाये ; पर ये सबके सब व्यक्ति देश-प्रेम से ही प्रेरित हुए थे। वे सब भी अदार्शनिक ही थे। जब तक ऐसा आदर्शवाद जीवित है, मेरा विश्वास है कि मानव स्थितप्रज्ञता के साथ समस्त कष्टों को प्रसन्नतापूर्वक सहन कर सकता है। हाँ, दार्शनिक प्रवृत्ति का व्यक्ति इस प्रकार अपने को संवर्धित कर सकता है। परन्तु क्या यह सत्य नहीं है कि हम सभी में दार्शनिक तत्व सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है और दार्शनिक मनोवेग को जाग्रत करने के लिए कष्ट का स्पर्श ही पर्याप्त होता है।

अब मैं पत्र समाप्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि तुम शीघ्र ही उत्तर दोगे। तुम्हारे प्रति प्रेम तथा सद्भावना एवं अन्य कृपालु मित्रों के प्रति मधुर स्मृतियाँ।

मैं हूँ
सदा तुम्हारा स्नेही,
सुभाष

श्री डी० के० राय,
३४, थियेटर रोड, कलकत्ता।

८४*

श्री श्री दुर्गा सहाय

माँडले जेल
११—९—२५

पूजनीया मँझली भाभी,

आपका पत्र प्राप्त करके प्रसन्नता हुई। मेरा पत्र आपको पसन्द आया, यह जानकर और भी अधिक प्रसन्नता हुई। कभी-कभी यह शंका होती है कि कहीं जेल में रहते रहते ही जीवन का सब रस न सूख जाए। शास्त्र में लिखा है—"रस: वै स:" जिसका अर्थ है—भगवान रसमय है। अत: जिसने रस खो दिया, उसने जीवन के सार आनन्द को ही खो दिया ; उसका जीवन व्यर्थ, आनन्दरहित और दु:खमय समझिये। मेरे पत्र को पढ़कर यदि आप आनन्द प्राप्त करते हैं तो समझूँगा कि मैंने आनन्द देने की शक्ति अभी खोई नहीं है। विश्व के महान् व्यक्ति जैसे देशबन्धु, रवि ठाकुर आदि ने पर्याप्त उम्र तक, यहाँ

* श्रीमती विभावती वसु के नाम।

तक कि जीवन के अन्तिम दिन तक, आनन्द और स्फूर्ति को नहीं खोया। उनका आदर्श हमारे लिए अनुकरणीय है।

जाने दो, वक्तव्य छोड़कर अब आपको वास्तविक घटना बताऊँ। यहाँ एक ऐसी घटना घट गई है जिसे सुनकर आप सोचेंगी कि सम्भवतः मैं नाटक अथवा उपन्यास की बात कर रहा हूँ। हमारा मलय अचानक मुक्त होकर घर चला गया है। उसकी सात वर्ष की अवधि थी और लगभग साढ़े तीन वर्ष की अवधि उसने व्यतीत की। सरकार के नये नियम के अनुसार जिनकी अवधि अधिक होती है वे आधी अवधि बिताने पर मुक्त किये जा सकते हैं। उस नियम के अनुसार एक दिन अचानक यह समाचार आया कि मलय कल ही जेल से मुक्त होगा। जिसकी तीन वर्ष की कैद शेष रह गई है वह यदि यह सुने कि कल ही कारामुक्त हो जाऊँगा तो उसके हृदय की क्या दशा होगी, सम्भवतः आप लोग उसकी कल्पना कर सकते हैं। बहुत दिन से जिनको नहीं देखा, जिनका समाचार नहीं पाया, बहुत समय तक जिनसे मिलने की आशा भी नहीं थी, अचानक उनकी सब बातें, सब स्मृतियाँ जब मन में जागती हैं तो मनुष्य का हृदय आनन्द-विभोर हो उठता है। हम सोच रहे थे कि मुक्ति का समाचार पाकर वह आनन्द से नाच उठेगा, परन्तु जब उसने ऐसा नहीं किया तो हमने समझा कि आनन्द की अतिशयता के कारण वह विह्वल हो गया है। हृदय की स्थिति के सम्बन्ध में पूछने पर उसने केवल यह कहा—"काउंडे काउंडे" अर्थात् सब ठीक है।

कारामुक्त होने से एक दिन पहले उसे हमने अपने पास बैठाकर उसके घर के सब समाचार पूछे। सुना कि उसकी दो पत्नियाँ, दो लड़कियाँ और तीन लड़के हैं। एक पत्नी से कोई सन्तान नहीं है। उसने यह भी बतलाया था कि चार वर्ष से उनका कोई समाचार उसे नहीं मिला इसीलिए कारामुक्त होने के समय उनकी कुशलता के सम्बन्ध में आशंकित होकर वह व्याकुल हो रहा है। वह सब जीवित हैं या नहीं, वह कैसे हैं, यह सब चिन्ताएँ इतने दिन तक तो दबी हुई थीं परन्तु इस समय यह बातें स्मरण आते ही एक ओर तो प्रसन्नता हो रही है और दूसरी ओर अनेक प्रकार की चिन्ताएँ हृदय में उठ रही हैं। इसी कारण जेल से मुक्त होने का समाचार पाकर भी उसे अधिक प्रसन्नता नहीं हुई।

घर की दशा के सम्बन्ध में पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह गाँव का जमींदार है, यानि राजा है। पहले वह पूर्णतः स्वतंत्र थे और स्वतंत्रता के लिए बर्मी राजाओं से लड़े थे। बाद में अंग्रेजों के आधीन हो गए। इस

दौरान में सात वर्ष तक मालगुजारी बन्द करने के कारण अंग्रेजों से उनकी लड़ाई हुई थी। उस लड़ाई में दोनों ही ओर के लोग मारे गए थे। इसके उपरान्त वह हार मानकर भाग गया। लगभग तीन वर्ष तक छिपकर रहने के उपरान्त उसके सौतेले भाई ने उसे और उसके सगे भाई को पकड़वा दिया। उसके भाई को आजीवन कारावास का दण्ड (कालापानी) मिला और उसको अर्थात् मलय को सात वर्ष की कैद हुई।

बाद में मलय ने अपने शरीर पर चोटों के बहुत से चिह्न दिखाए। वह लड़ाई में लगे घावों के चिह्न थे। हमने बर्मा देश का इतिहास मालूम किया तो पाया कि उसकी बात सत्य थी। उसकी मुक्ति के उपरान्त भी उस देश के अन्य कैदियों से हमने मालूम किया तो मलय की बात को अक्षरशः सत्य पाया।

यह सुनकर हमने लज्जा से सिर झुका लिया कि हमने एक ग्राम-राजा को मेहतर बना रखा था। बाद में हमने उससे पूछा कि वह मेहतर का काम करने को क्यों राजी हो गया था? तब अत्यन्त दुःख के साथ उसने कहा—"क्या करता, जेलर का आदेश था। यहाँ क्या मैं मनुष्य हूँ, यहाँ तो कुत्ता बना हुआ हूँ। जब बाहर जाऊँगा तब फिर मनुष्य बनूँगा।"

उसकी करुण कहानी सुनकर हमने पूछा कि भविष्य में वह क्या करेगा? तब उसने बहुत सोचकर उत्तर दिया था—"अभी कुछ निश्चय नहीं कर पाया। न जाने मेरी सौतेली माँ का लड़का फिर शत्रुता का व्यवहार करेगा या नहीं। अभी कुछ पता नहीं, क्योंकि मेरी अनुपस्थिति में वह जमींदारी का आनन्द भोग रहा है। मैं समझता हूँ कि अभी मेरे भाग्य में बहुत दुःख भोगना बदा है।"

उससे जाते समय हमने पूछा कि घर जाकर हमें भूल तो नहीं जाएगा? तब उसने गद्गद् होकर कहा था—जीवन भर आपके स्नेह को नहीं भूलूँगा और अपने लड़के तथा पौत्रों को आपकी बातें बताऊँगा।

अब आप यह बतलाइए कि यह घटना सत्य प्रतीत होती है अथवा उपन्यास और कहानी की घटना जैसी लगती है? अंग्रेजी में एक कहावत है कि सत्य घटना कभी-कभी कहानी से भी अधिक आकर्षक प्रतीत होती है; यह भी वैसी ही एक घटना है।

यद्यपि मैं बर्मी भाषा नहीं सीख पाया, फिर भी साधारण बातचीत करने योग्य सीख ली है। बर्मियों में भी कोई-कोई बर्मी अंग्रेजी या

हिन्दुस्तानी भाषा जानते हैं। उन्हीं की सहायता से हम बर्मी भाषा समझ लेते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि कुछ कठिनाई होने पर भी हम किसी तरह अपना काम चला लेते हैं।

यहाँ टेनिस कोर्ट होने से हमारा कुछ व्यायाम हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो वात-रोग लेकर घर लौटना पड़ता। वैसे भी वायु रोग के लक्षण दिखाई देते प्रतीत होते हैं। पहले हम बैडमिन्टन खेल लेते थे। बैडमिन्टन को यद्यपि मैं लड़कियों का खेल मानता था और इसी लिए मैंने अभी तक बैडमिंटन नहीं खेला; किन्तु जेल में आने पर सब कुछ उलट जाता है, और फिर बचपन लौट आता है। मैंने बैडमिंटन खेलना प्रारम्भ कर दिया है। यह नहीं कह सकता कि पहले कुछ झेंप नहीं अनुभव हुई, परन्तु शास्त्र में लिखा है कि जहाँ शहद नहीं मिलता वहाँ गुड़ का प्रयोग करना चाहिए। इसी कारण दूसरे खेलों के अभाव में बैडमिंटन खेलकर ही मन बहलाना पड़ता है। हर समय हमें जेल के भीतर दूसरी छोटी जेल में रहना पड़ता है। हम वार्ड से बाहर और किसी से नहीं मिल सकते। अधिकांश जेलों में हमारे भाग्य से ऐसा वार्ड मिल जाता है कि किसी तरह हम बैडमिंटन खेलने योग्य स्थान बना लेते हैं। यहाँ कुछ अधिक स्थान होने के कारण टेनिस खेलना सम्भव हो गया है, उसमें भी कठिनाई यह है कि गेंद प्रायः दीवार के बाहर चली जाती है और यदि बाहर नहीं जाती तो वह दीवार से टकराकर टेनिस कोर्ट में पहुँच जाती है। फिर भी मामा न होने से काना मामा ही ठीक है।

पोखर में जल बढ़ाने का कोई उपाय नहीं है क्योंकि जल बढ़ने पर अधिक जल नाली से चला जाता है। कभी-कभी पोखर खाली करके नया पानी भरना पड़ता है। वास्तव में उसे हौज़ के स्थान पर पोखर कहने का कोई कारण नहीं है, परन्तु कहकर मन बहला लेता हूँ।

यहाँ दुर्गा-पूजा का आयोजन किया जा रहा है। आशा है कि यहाँ ही माँ की पूजा करूँगा। व्यय के सम्बन्ध में अधिकारी-वर्ग से झगड़ा चल रहा है। देखूँ उसमें क्या होता है। मुझे पूजा यहाँ ही करनी है। अतः तुम पूजा के वस्त्र भेजना मत भूल जाना।

हमारे होटल में सब कुछ मिलता है। उस दिन मैनेजर बाबू ने हमें गरम-गरम जलेबी खिलवाईं थीं और हमने भी दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया था कि वह अनन्त काल तक जेल में ही रहें! इससे पूर्व उन्होंने रसगुल्ले खिलवाए थे। रस में डूबे हुए होने पर भी रसगुल्लों में रस नहीं था और ऊपर से रस डालने से उनके टूट जाने का भय था। फिर भी

हमने वह लौहवत् रसगुल्ले गले से नीचे उतार कर कृतज्ञ भाव से मैनेजर बाबू के दीर्घायु होने की कामना की थी ।

जब यहाँ बंगाली हैं तो बंगालियों का सा भोजन भी अवश्य बनता है । मैनेजर बाबू ने निश्चित किया है कि संसार में पपीता ही एक मात्र सत्य पदार्थ है, इसलिए हर सब्जी में चाहे वह सूखी हो अथवा रेशे वाली, सर्वत्र ही पपीता मिलता है । इस प्रकार हमारे मैनेजर बाबू आधे डॉक्टर भी हैं । उनका सिद्धान्त है कि अधिक मात्रा में पपीता खाने से उदर ठीक रहता है । कहावत है कि "खाने में थोड़ वडि खाड़ा और खाड़ा वडि थोड़ ।" यह थोड़ यहाँ नहीं मिलता और वडि भी नहीं मिलती है । शुद्ध रसोई में पपीता, बैंगन, शाक और शाक, बैंगन, पपीता । पहिले मुझे बकरा अथवा मुर्गा खाने की आदत थी । उसके अभाव में मैनेजर के गुण गाता हूँ, नहीं तो क्या होता यह कहना कठिन है ।

यह न कहना कृतघ्नता होगी कि कई दिन के अनुरोध के परिणाम-स्वरूप रसदार कोफ्ता, पनीर का कलिया और पनीर का पुलाव खाने को मिला । उनकी जय हो, दुर्मुख भी कभी उनकी निन्दा न करें ।

आपने बगीचे के सम्बन्ध में पूछा है । यहाँ पर बगीचे की दशा शोचनीय है । फूलों के बीज बोये गये थे परन्तु चींटी और कीड़ों के उपद्रव के कारण अधिक पौधे नहीं उगे । जो कुछ उगे भी उन्हें मुर्गियों ने नष्ट कर दिया । फूलों के पौधों में अब सूरजमुखी और उसी नस्ल के दो एक और पौधे रह गये हैं । रात रानी के भी कई पौधे हैं, परन्तु उनमें सुगन्ध नहीं है । सुगन्ध और गाने का अभाव समय-समय पर अनुभव करता हूँ ; परन्तु कोई उपाय नहीं सूझता ।

इस देश में अच्छी चाय नहीं मिलती । इसलिए हमने कलकत्ते से अच्छी चाय मंगाने की माँग की है । यहाँ की लिपटन और ब्रुक बाँड चाय पीने योग्य नहीं हैं और दोनों ही विलायती हैं । मैंने पिछले पत्र में खरल के सम्बन्ध में लिखा था । एक खरल वैद्यक औषधियों के लिए चाहिये । चाचा से कहना कि किसी अच्छी चाय की दुकान का पता हमें भेज दें । हम दार्जिलिंग की ओरेंज पीको चाय पीते हैं । यहाँ की किसी दुकान के द्वारा कलकत्ते की इस दुकान से चाय मंगवायेंगे ।

सबसे अच्छी वस्तु है यहाँ की ईलिश मछली । देखने में ठीक गंगा की मछली जैसी है परन्तु गंगा अथवा बंगाल की ईलिश जैसा स्वाद इसमें नहीं है । खाते समय बताया नहीं जा सकता कि यह कौन सी मछली है ? रोहू के अतिरिक्त यहाँ कोई अच्छी मछली नहीं मिलती । चिंगरी

(झिंगा) मछली मिलती है परन्तु मँहगी है।

आशा है कि वहाँ सब सकुशल होंगे। कंचि मामा आजकल कहाँ हैं? प्रैक्टिस कैसी चल रही है? मँझले दादा से कहना कि रुपयों के सम्बन्ध में जो लिखा था वह भेज दें। आप लोग क्या इस बार पूजा के अवसर पर देश जायेंगे? मेरे 'वित्त-सचिव' के क्या समाचार हैं? अब वह सम्भवत: कटक में होंगे। क्या अरुण और गोरा के ब्याह का निर्णय हो गया? बड़ी दीदियों का क्या हाल है? आपका स्वास्थ्य कैसा है?

आपने कपड़े-कुर्तों आदि के सम्बन्ध में पूछा था। क्या आप नहीं जानतीं कि हम सम्राट् के अतिथि हैं? क्या हमें किसी वस्तु का अभाव रह सकता है? हमारे लिए कमी का अर्थ है सम्राट् की बेइज़्ज़ती।

आपने मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछा है। सुख-दु:ख में किसी न किसी प्रकार समय बीत ही रहा है। ग्रीष्म में कुछ असुविधा हुई थी और स्वास्थ्य भी कुछ खराब हो गया था। स्थानान्तरण के लिए जो प्रार्थना-पत्र दिया था वह स्वीकार नहीं किया गया। अधिकारी वर्ग की धारणा है कि मैं झूठ ही कहता हूँ कि मेरा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। उनका यह विचार भी हो सकता है कि मैं बहुत ही कृतघ्न हूँ; सरकार तो मेरा भोजन और वस्त्र बिना खर्च जुटा रही है और मैं कृतज्ञता प्रकट करने की अपेक्षा स्थानान्तरण की बात सोचने में व्यस्त हूँ। अब बदली की चाह नहीं है। गर्मी कम हो गई है, पहले की अपेक्षा स्वास्थ्य ठीक ही है। यदि पाचन क्रिया ठीक रही तो शीतऋतु में स्वास्थ्य ठीक रहने का विश्वास है। यहाँ से बर्मा के राजा का महल दिखलाई देता है और उनके किले में जो जेल है उसमें हम निवास करते हैं। प्राय: भारत के पूर्व गौरव की बात याद आती है और वर्तमान दशा के सम्बन्ध में सोचने पर आँखें सजल हुए बिना नहीं रहतीं। हाय भारत क्या था और क्या हो गया।

यहाँ मैंने बहुत कुछ सीख लिया है और उस दृष्टि से मुझे बहुत लाभ भी हुआ है। भगवान जो करते हैं कल्याण के लिए ही करते हैं। मैं देश को कितना प्यार करता हूँ यह बात मैंने यहाँ आकर भली भाँति समझ ली है।

आप सबको प्रणाम। इति।

सुभाष

८५*

माँडले जेल
२५–६–२५

श्रीचरणेषु—

माँ,

बहुत दिन से आपका कोई समाचार नहीं मिला। आजकल आपका क्या हाल है ? घर से आये पत्रों द्वारा ही आपका समाचार मिल जाता है ? उसके अतिरिक्त अन्य समाचार नहीं मिलते। मेरा अनुमान था कि भोम्बल कभी-कभी समाचार भेज दिया करेगा परन्तु वह तो पत्र डालता ही नहीं। कई दिन हुए भोम्बल को एक पत्र डाला था, परन्तु अभी तक उसका उत्तर नहीं मिला। उसने पहले पत्र का भी कोई उत्तर नहीं दिया। आँखों के सामने न रहने पर सम्भवतः मन से उस मनुष्य की याद ही निकल जाती है, सम्भवतः इसी आधार पर उसने समाचार देना आवश्यक नहीं समझा। हाँ, ठीक भी है, एक प्रकार से आजकल हमारा अस्तित्व तो है ही नहीं। महात्मा जी के कथनानुसार मैं तो अपने आपको "सामाजिक रूप से" मृत ही समझता हूँ, परन्तु मन नहीं मानता इसीलिए बाहर के समाचार जानने की इच्छा होती है। यदि इसी प्रकार थोड़े दिन और रहा तो सामाजिक रूप से मृतक न होने का मेरे पास कोई उपाय नहीं रहेगा।

आज महाष्टमी है। बंगाल के घर-घर में माँ की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई होगी। सौभाग्य से आज जेल में भी उस माँ ने आकर दर्शन दिये हैं। हम इस वर्ष तो जेल में ही श्री श्री दुर्गा माँ की पूजा कर रहे हैं। सम्भवतः माँ हमें भूली नहीं हैं, इसीलिए यहाँ आकर उन्होंने अपनी पूजा-अर्चना भी हमसे कराई है। परसों हमें फिर रुलाकर चली जायेंगी। जेल के अन्धकार तथा निर्जनता में भी पूजा का प्रकाश और आनन्द छा जायेगा। ज्ञात नहीं इस प्रकार कितने वर्ष और यहाँ व्यतीत करने होंगे। मुझे यह पक्का विश्वास है कि यदि माँ के दर्शन प्रत्येक वर्ष के अन्त में हो जाया करें तो कारावास का दुःख असह्य नहीं होगा।

जब तक यह पत्र आपको मिलेगा तब तक विजयादशमी समाप्त हो जायेगी। विजया के समय सब आपको सादर प्रणाम करेंगे। इसके साथ ही यदि मेरा यत् किंचित भक्ति का अर्घ्य आपको मिले और प्रतिदान

* श्रीमती वासन्ती देवी के नाम।

में यदि मैं एक बार आशीर्वाद प्राप्त कर सकूँ तो अपने आपको धन्य समझूँगा। इति—

आपका सेवक
सुभाष

सेवा में,
श्रीमती वासन्ती देवी,
२, बेलतला रोड,
कलकत्ता।

८६*

माँडले जेल
६–१०–२५

यह कदापि न सोचना कि मेरा दृष्टिकोण संकुचित है। "अधिक से अधिक प्राणियों का, अधिक से अधिक मात्रा में कल्याण हो" इस सिद्धान्त में मेरी आस्था है। परन्तु भलाई करने का वह गुण मुझमें कहाँ ? अर्थ-नीति के अनुसार मनुष्य के सब काम उत्पादक होते हैं या अनुत्पादक। कौन-सा काम शास्त्र के अनुसार उत्पादक है और कौन-सा अनुत्पादक, इस बात को लेकर बहुत तर्क-वितर्क किया जाता है। मैं तो शिल्प-कला को या तत्सम्बन्धी अन्य किसी क्रिया को अनुत्पादक नहीं मानता, और दार्शनिक चिन्तन या तत्व जिज्ञासा को निष्फल या निरर्थक मानकर उसकी उपेक्षा भी नहीं करता। मैं स्वयं एक कलाकार नहीं हो सकता और मैं यह भी जानता हूँ कि मैं कलाकार हूँ भी नहीं, परन्तु इसके लिए तो ईश्वर या प्रकृति ही दोषी ठहराये जा सकते हैं, मैं नहीं। यदि कहो कि पूर्वजन्मों का कर्मफल भोग रहा हूँ तो सत्य ही है। वास्तव में मैं विवश हूँ। जो इस जन्म में कलाकार नहीं बन सका, तो फिर वह कभी भी कलाकार न बन सकेगा। मेरा विश्वास है कि कला प्रकृति की देन है, मानव प्रयास का फल नहीं। वास्तव में यह बात सत्य है। परन्तु स्वयं कलाकार न होने से कला का आनन्द भी न ले सकूँगा, ऐसी बात नहीं है। किसी कला को समझने के लिए उसका जितना ज्ञान होना आवश्यक है उतना मेरे विचार में प्रत्येक

* श्री दिलीपकुमार राय के नाम।

शिक्षित व्यक्ति के लिए सुलभ है।

दीर्घ श्वास लेकर तुम यह मत सोचना कि संगीत में तुम व्यर्थ समय नष्ट कर रहे हो। शेक्सपीयर ने लिखा है—"समय सन्धि-निरपेक्ष है।" मित्र, देश के कोने-कोने को संगीत की स्वर-लहरी से आप्लावित कर दो। और जिस सहज आनन्द को हम खो बैठे हैं उसे लौटा लाओ। जिसके हृदय में आनन्द नहीं है, संगीत से जिसका हृदय तरंगित नहीं होता, क्या वह व्यक्ति जगत् में कोई महान् कार्य कर सकता है? कार्लाइल का कथन है कि जिस व्यक्ति के हृदय में संगीत नहीं, वह किसी भी दुष्कर्म को कर सकता है। यह बात सत्य हो या न हो, परन्तु मेरे विचार से जिस व्यक्ति के हृदय में संगीत का स्पन्दन नहीं है, वह चिन्तन और कर्म द्वारा कदापि महान् नहीं बन सकता। हम चाहते हैं कि हमारे रक्त में आनन्दानुभूति का संचार हो। इसका कारण यह है कि आनन्द की पूर्णता से ही हम सृष्टि कर सकते हैं, संगीत के समान आनन्द भला और कौन दे सकता है?

परन्तु कला और उसके आनन्द को दरिद्रतम व्यक्ति के लिए भी बोधगम्य बनाना पड़ेगा। संगीत की विशिष्टता तो एक संकुचित सीमा में अवश्य रहेगी, परन्तु उसे जनसाधारण के उपभोग के योग्य भी बनाना पड़ेगा। विशिष्ट साधनों के अभाव में, जैसे संगीत का आदर्श नष्ट हो जाता है, वैसे ही जनसाधारण के लिए सुलभ न होने पर भी कला और जीवन का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। मेरे विचार से तो कला लोकसंगीत और लोकनृत्य के द्वारा ही जीवन से संयुक्त है। भारत में जीवन और कला का यह सम्बन्ध पाश्चात्य सभ्यता ने लगभग विच्छिन्न कर दिया है। उसके स्थान पर हमें कोई योगसूत्र मिल गया हो, ऐसा भी नहीं है। हमारे स्वांग, कत्थक नृत्य और कीर्तन आदि अतीत युग की स्मृति-चिह्न मात्र शेष रह गये हैं। वास्तव में यदि हमारे गुणी कलाकारों ने कला को जीवन से अविलम्ब सम्बद्ध नहीं किया तो हमारी क्या स्थिति होगी इसकी कल्पना मात्र से रोमांच हो आता है। सम्भवतः तुम्हें स्मरण हो, एक बार मैंने तुमने कहा था कि मैं मालदा के गम्भीरा गान के माधुर्य पर मुग्ध हो गया था। उसमें संगीत और नृत्य दोनों का योग था। मैं नहीं जानता कि बंगाल में अथवा अन्य किसी स्थान पर ऐसी सुन्दर वस्तु है? यदि नये सिरे से, उसमें प्राण-शक्ति का संचार करने का प्रयत्न नहीं किया गया तथा बंगाल के अन्य स्थानों में उसे प्रचलित नहीं किया तो मालदा में भी वह अवश्य ही नहीं रह

पायेगी। बंगाल में लोकसंगीत के प्रचलन और प्रगति के लिए तुम्हारा शीघ्र ही मालदा जाना उचित होगा। गम्भीरा में जटिल कुछ भी नहीं है, उसका गुण ही यह है कि वह सहज और सरल है। हमारा अपना लोकसंगीत और लोकनृत्य केवल मालदा में ही जीवित है और इसी कारण गम्भीरा का वास्तविक मूल्य है। जो इस प्रकार के संगीत को पुनर्जीवित करना चाहते हैं उन्हें मालदा से ही कार्यारम्भ करना चाहिए और ऐसा करना सरल भी है।

लोकसंगीत और नृत्य के सम्बन्ध में बर्मा एक अनोखा देश है। यहाँ शुद्ध देशी नृत्य और गान पुरातन काल से ही चले आ रहे हैं। उनसे वहाँ सुदूर देहातों के लाखों लोगों का मनोरंजन हो रहा है। भारतीय संगीत की भिन्न-भिन्न पद्धतियों का अनुशीलन करने के पश्चात् यदि बर्मा के संगीत की चर्चा करो तो कोई बुराई नहीं है। सम्भव है वह संगीत इतना गम्भीर एवं उन्नत न हो परन्तु उसमें दरिद्र और अशिक्षितों को प्रचुर मात्रा में आनन्द प्रदान करने की शक्ति है। मैं इन दिनों उसकी ओर आकृष्ट हो रहा हूँ। सुना है कि यहाँ का नृत्य भी बहुत सुन्दर होता है। बर्मा में जातिभेद न होने के कारण यहाँ कला-सम्बन्धी चर्चा किसी श्रेणी विशेष की सीमा में बद्ध नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ है कि बर्मा की कला चारों ओर फैल गई है। सम्भवतः इस कारण से तथा लोकसंगीत और लोकनृत्य के प्रचलन से ब्रह्मदेश में भारतवर्ष की अपेक्षा जनसाधारण में सौन्दर्य-बोध की मात्रा अधिक है। मिलने पर इस सम्बन्ध में कुछ और भी बतलाऊँगा।

मैं देशबन्धु के सम्बन्ध में तुमसे सहमत हूँ। मैं भी पूर्णतः इस बात को मानता हूँ कि अधिकांश समाज या राष्ट्र के बृहत् क्षेत्र के प्रभाव की अपेक्षा जीवन की छोटी छोटी घटनाओं से मनुष्य के महत्व पर अधिक प्रकाश पड़ता है। देशबन्धु से व्यक्तिगत रूप से घनिष्ठ परिचय होने के कारण ही मेरी उन पर अपार श्रद्धा थी। इसी कारण उनसे मुझे प्रेम हो गया था। उनसे मेरा प्रेम देश के नेता के नाते अथवा उनका अनुगामी होने के कारण न था। उनके अधिकांश अनुयायियों की स्थिति भी मेरे ही समान है। वास्तव में उनके सहयोगियों और अनुयायियों के अतिरिक्त उनके कोई और भी परिजन थे, यह कहना उचित प्रतीत नहीं होता। मैं उनके साथ जेल में आठ मास तक रहा, दो मास तो बराबर वाले कमरे में, बाकी छः मास एक ही कमरे में। इस प्रकार मुझे उनको भली भाँति समझने का अवसर मिला था। इसीलिए मैं

उनके चरणों में आश्रय ले पाया।

तुमने श्री अरविंद के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसे पूर्णतः तो नहीं परन्तु उसके अधिकांश को मैं मानता हूँ। वे ध्यानी हैं, और मेरे विचार से तो वे विवेकानन्द से भी अधिक गम्भीर हैं। फिर भी विवेकानन्द के प्रति मेरी अपार श्रद्धा है। मैं तुम्हारी इस बात से सहमत हूँ "नीरव भावना, कर्मविहीन निर्जन साधना" समय समय पर आवश्यक होती है। यहाँ तक कि दीर्घ समय के लिए भी। परन्तु आशंका यह है कि समाज या देश के जीवन-स्रोतों से अपने आपको दूर हटाकर रखने से मनुष्य गुमराह हो सकता है और उसकी प्रतिभा का एकपक्षीय विकास होने के कारण वह समाज से भिन्न अतिमानव के समान और कुछ बन सकता है। दो-चार असाधारण प्रतिभासम्पन्न यथार्थ साधकों की बात तो अवश्य ही भिन्न है परन्तु अधिकांश लोगों के लिए तो कर्म या लोकहित ही साधना का एक प्रधान अंग है। अनेक कारणों से हमारी जाति अकर्मण्य हो गई है। अतः अब हमें रजोगुण की आवश्यकता है। हमें चाहिए अत्यधिक प्रेरणा। साधक या उनके शिष्यों में, अधिक चिन्तन के कारण, यदि इच्छाशक्ति जड़ न हो तो जब तक वे निर्जन में ध्यान करना चाहें करें। मैं उनसे लड़ने नहीं जाऊँगा।

निस्तेज बनाने वाला प्रभाव छोड़कर साधक तो स्वयं चले जाते हैं, परन्तु उनके शिष्य को, जाने या अनजाने में, गुरु की शासन-पद्धति कोई हानि नहीं पहुँचाती है।

मैं तो यह बात पूर्णतः मानता हूँ कि प्रत्येक को अपनी शक्ति से पूर्ण विकास करने का प्रयास करना चाहिए। अपने पास जो उत्कृष्टतम वस्तु हो उसका दान देना ही सच्ची सेवा है। हमारी अन्तः प्रकृति, हमारा धर्म जब सार्थकता प्राप्त कर सके तभी हम वास्तविक सेवा के अधिकारी बनते हैं। इमर्सन की भाषा में कहूँ तो हमें सुधार अपने भीतर से ही करना पड़ेगा। एक आदर्श से प्रभावित होने पर ही हम सब एक मार्ग पर चलेंगे यह आवश्यक नहीं है। शिल्पी की साधना कर्मयोगी की साधना से भिन्न होती है। तपस्वी की सी साधना विद्यार्थी के लिए उचित नहीं है। परन्तु मेरे विचार से इन दोनों के आदर्श एक से ही हैं। स्वयं के प्रति सच्चा होने पर कोई भी मार्ग मानव के लिए असत्य नहीं हो सकता। इसलिए आत्मोन्नति और आतम-विकास के मार्ग को तो केवल अपनी प्रकृति ही बतला सकती है। प्रत्येक मनुष्य यदि अपनी शक्ति और अपनी प्रकृति के अनुसार अपने आपको उपयोगी बना सके तो अविलम्ब समस्त जाति में नवीन जीवन

दृष्टिगोचर होने लगेगा। साधना की स्थिति में मनुष्य को ऐसा जीवन व्यतीत करना पड़ सकता है कि वह बाहर से स्वार्थी दिखाई दे। परन्तु उस दशा में मनुष्य विवेक-बुद्धि से प्रेरित होता है, अन्य लोगों के विचारों से नहीं। जब साधना का परिणाम सामने आता है, तभी लोग स्थायी रूप से उस पर विचार करते हैं। इस आधार पर यदि आत्म-विकास के वास्तविक मार्ग को ग्रहण किया जाता है तो लोकमत की उपेक्षा की जा सकती है। इससे यह प्रतीत होता है कि मेरे और तुम्हारे विचार में अन्तर नहीं है। इति।

तुम्हारा स्नेही
सुभाष

८७*

माँडले जेल
१९२५

सविनय निवेदन,

'आपका पत्र प्राप्त हुआ। समाचारों को जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। कार्यकारिणी समिति के अधिकांश सदस्यों का सेवाश्रम के कामों में ध्यान नहीं है, उसके लिए आप चिन्तित या निराश न होइए। अधिकांश कार्यकारिणी समितियों की दशा ऐसी ही है। आप लोगों को अपनी सेवा और आग्रह के बल पर ही औरों में सेवा की प्रवृत्ति जागृत करनी होगी। जब तक गाँव में दूसरों के दुःख के प्रति समवेदना और सहानुभूति नहीं जगती तब तक सेवा-कार्य सम्भव नहीं हो सकता। सम्भव होने पर भी वह सार्थक नहीं हो सकता। आपकी हार्दिक सहानुभूति और जन-सेवा के कारण समाज में दूसरों के हृदयों में भी वैसी ही भावना पैदा होगी। यही मेरी आकांक्षा है, यही मेरा विश्वास है।

सेवाश्रम के मकान से लगी हुई बाग के योग्य क्या कोई भूमि है?

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मासिक चन्दा १४० रुपये तक आ जाता है। अब मकान का किराया कितना देना पड़ता है? मकान कितनी मंजिल का है और उसमें कितने कमरे हैं? कारपोरेशन के प्राइमरी स्कूल में कितने छात्र हैं, और किस-किस जाति के हैं? सेवाश्रम के छात्रों को

* श्री अनिलचन्द्र विश्वास के नाम तीन पत्र।

क्या-क्या सिखलाया जाता है ? इसका विस्तृत विवरण मेरे पास भेजिए। सेवाश्रम में कोई नौकर है अथवा नहीं और हैं तो कितने हैं, यह भी मुझे बतलाइए।

दैनिक भोजन कौन बनाता है ? कितने बालक कातने का और मशीन से कपड़े सीने का काम सीख रहे हैं ? एक बालक कम से कम कितने दिन में कपड़ा बुनना या सिलाई करना सीख लेगा (कम से कम कोट, कमीज, बंगाली कुर्ता बनाना)। आपका क्या अनुमान है ?

बालकों की औसत बुद्धि कैसी है ? सेवाश्रम के सम्बन्ध में जहाँ तक हो विस्तृत विवरण भेजना। उसे पढ़कर मैं कुछ परामर्श देने का प्रयास करूँगा। बालकों के भोजन की कैसी व्यवस्था है ? चिकित्सा या दवाओं पर क्या व्यय किया जाता है ? इति।

८८

माँडले जेल

सम्भवत: आप इससे पूर्व ही सुन चुके होंगे कि हमारा अनशन व्रत एकदम निष्फल नहीं गया। सरकार हमारी धर्म-सम्बन्धी माँगों को स्वीकार करने पर विवश हुई है और भविष्य में बंगाल के राजबन्दी पूजा सम्बन्धी व्यय के लिए तीस रुपये वार्षिक भत्ता प्राप्त करेंगे। तीस रुपये बहुत कम हैं और इससे हमारा व्यय भी पूरा नहीं होगा, परन्तु जो सिद्धान्त सरकार ने इतने दिन तक स्वीकार नहीं किया था वह अब मान लिया, हमारे लिए यही सन्तोष का विषय है। सभी क्षेत्रों में और सभी कालों में रुपये की बात अति तुच्छ है। पूजा की माँग के अतिरिक्त सरकार ने हमारी अन्य माँगें भी स्वीकार की हैं। वैष्णवों की भाषा में कहना होगा कि यह सफलता "बाह्य है"। अर्थ यह है कि अनशन-व्रत का सबसे बड़ा लाभ हृदय का विकास और आनन्द प्राप्त करना है। माँग पूर्ण होने की बात तो बाहर की बात है, लौकिक जगत् की बात है। दु:ख सहन किए बिना मनुष्य कभी भी हृदय के आदर्श के साथ अभिन्नता अनुभव नहीं कर सकता और परीक्षा में पड़े बिना मनुष्य कभी भी निश्चित रूप से नहीं बता सकता कि उसके पास कितनी शक्ति है। इस अभिज्ञता के कारण मैंने अपने आपको और भी अच्छी तरह से पहचान लिया है और

अपने ऊपर मेरा विश्वास पहिले से सौगुना अधिक बढ़ गया है।

*　　　　*　　　　*

समाज-सेवा के अन्तर्गत गृह-शिल्प प्रतिष्ठान स्थापित करने का प्रयास हमें करना पड़ेगा। वाणिज्य संग्राहलय, बंगाल गृह-उद्योग संघ आदि दूकानों को घूमकर देखने से हमारे मस्तिष्क में नए विचार आ सकते हैं। बंगाल सरकार के शिल्प-विभाग के कई वर्षों का विवरण पढ़ने से भी लाभ हो सकता है। पहले तो जहाँ गृह-उद्योग चल रहे हैं, वहाँ जाकर अपनी आँखों से वहाँ की कार्य-प्रणाली को देखना आवश्यक है। मेरे विचार से यह धारणा गलत है कि कुटीर-शिल्प प्रारम्भ करने के लिए बहुत अधिक रुपये की आवश्यकता पड़ती है। सर्व प्रथम हमें एक सज्जन को नियुक्त करना होगा जो इस विषय में सोचेंगे, जानकारी रखेंगे और पुस्तकें आदि पढ़ेंगे। इसके उपरान्त वह स्वयं कुटीर-शिल्प चलाने की सम्भावना के सम्बन्ध में पर्यवेक्षण करके आयेंगे। इसके पश्चात् जब विशिष्ट कुटीर-शिल्प आरम्भ करने की बात निश्चित हो जाये तो कार्यकर्ताओं को भेजकर काम सिखलाना पड़ेगा। विभिन्न कला-संस्थानों में आरम्भ से अन्त तक किसी को पढ़ाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। बिजली द्वारा मुलम्मा चढ़ाने आदि के शिल्प वहाँ सीखने की आवश्यकता भी मुझे दिखलाई नहीं पड़ती, क्योंकि सिलाई का विभाग हमारे यहाँ अपना है ही और लुहार का काम अथवा बिजली से मुलम्मा चढ़ाने का काम इस समय समिति के कार्यकर्ताओं को सिखलाने से कोई लाभ नहीं होगा। जहाँ तक मुझे स्मरण है, मैं केवल एक बार विभिन्न कला संस्थानों, (पॉलिटैक्नीक) में गया था। पॉलिटैक्नीक के समस्त शिल्पों में से केवल बेंत का काम या मिट्टी की मूर्ति का काम हम कुटीर-शिल्प के रूप में चला सकते हैं। इसमें भी मुझे बेंत के काम के सम्बन्ध में कुछ सन्देह है, क्योंकि यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि हम स्त्रियों से यह कार्य करवा सकेंगे अथवा नहीं। अब यदि मिट्टी की मूर्ति का काम प्रारम्भ करने का प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है तो यह जानना भी आवश्यक होगा कि कोई कार्यकर्ता कितने दिन में यह काम सीखकर आ सकता है? व्यय कुछ भी नहीं होगा और जब हम कुटीर-शिल्प आरम्भ करेंगे तब हमें केवल रंग के लिए कुछ रुपये व्यय करने होंगे। वास्तव में बात यह है कि एक व्यक्ति को केवल इस समस्या को लेकर ही काम करना पड़ेगा। उसे इसके पीछे पागल होना पड़ेगा।

एक और बात भी बार-बार मेरे मस्तिष्क में आती है। मैंने सम्भवतः पहले भी इस सम्बन्ध में लिखा था। वह है सीपी के बटन बनाने का काम। ढाका जिले के बहुत से गाँवों में यह शिल्प घर-घर में प्रचलित है। गरीब घरों के स्त्री-पुरुष अवकाश के समय यह काम करते हैं। एक काम करने वाले को बहुत थोड़े समय में यह काम सिखाया जा सकता है। इसके लिए आप किसी नये कार्यकर्ता को नियुक्त कर सकते हैं।

समाचार-पत्रों में विज्ञापन देकर आप इस काम को करने वालों को आकर्षित कर सकते हैं। मेरा अपना अनुमान है कि पत्थर पर घिसकर बटन बनाया जा सकता है। यदि चाहें तो हम भी बना सकते हैं। बारीक छेद करने के लिए केवल एक यंत्र की आवश्यकता पड़ेगी और सम्भव है कि गोल छेद करने के लिए किसी धार वाले यंत्र की आवश्यकता हो। समिति के द्वारा कुछ यंत्र और एक बोरा सीपी मंगवाकर हम काम प्रारम्भ कर सकते हैं। काम के लिए सहायता की आवश्यकता है, परन्तु एक बार सफल होने पर आप देखेंगे कि गरीब गृहस्थ अपनी आय बढ़ाने के लिए यह काम प्रारम्भ कर देंगे। आपको तो केवल सस्ते भाव पर कच्चा माल जुटाने और तैयार माल को अधिक मूल्य पर बेचने की व्यवस्था करनी होगी। यदि इस क्षेत्र में कार्य करना हो तो पर्याप्त समय देना पड़ेगा। इति।

८९

माँडले जेल

आपने पहले जो काग़ज़ात भेजे थे (महात्मा जी का अभ्यर्थना पत्र, देशबन्धु स्मृति-भण्डार सम्मेलन की कार्य-सूची) वे यथासमय मुझे प्राप्त हो गये थे। कल फिर आपकी भेजी हुई लाइब्रेरी की पुस्तक-सूची (विविध मनोरंजन की कार्य-सूची आदि) मिली। समिति के कार्य-प्रसार से मुझे कितना आनन्द मिला है इसे लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता।

* * *

आपने व्यय के अतिरिक्त इतने रुपये और अधिक प्राप्त किए, यह जानकर प्रसन्नता हुई। चरखे से सूत कातने के सम्बन्ध में आपने जो

कुछ लिखा है, उसके सम्बन्ध में मेरी भी वही राय है। अब भी प्रयास छोड़ देने से काम नहीं चलेगा। आपने पहले पत्र में लिखा था कि यदि कपास की खेती की जाए तो एक सज्जन अस्सी बीघा भूमि देने को तैयार हैं। यदि उस तरह भूमि मिलने की सम्भावना हो तो कपास की खेती में पहले अधिक लागत नहीं लगानी पड़ेगी। दो एक माली और कपास के बीजों का मूल्य जुटाने पर ही हम एक वर्ष के भीतर फल प्राप्त कर सकते हैं। बंजर भूमि को बोने योग्य बनाने में अधिक व्यय बैठ सकता है। कृषि-विभाग से परामर्श करके निश्चित करना पड़ेगा कि किस नस्ल की कपास के बीज कहाँ बोने चाहिएँ। कई प्रकार के कुटीर-शिल्प आरम्भ किए जा सकते हैं (जैसे लिफाफे बनाना), उनसे यदि हानि न हो और साधारण लाभ हो तो भी उन्हें चलाते रहना चाहिए। बाद में अपेक्षाकृत लाभदायक शिल्प प्रारम्भ किए जाने पर हम वह सब छोड़ देंगे। आजकल लोग जो सहायता ले रहे हैं उसे किसी प्रकार से कम करना आवश्यक है। भिक्षा-वृत्ति छोड़कर जब वह काम करना सीख लेंगे तो उन्हें लाभप्रद शिल्पों में भी लगाया जा सकता है, उस समय परिणाम अनुकूल निकलेगा। इस बार यदि कुटीर उद्योग में आर्थिक लाभ नहीं हुआ तो काम करने की प्रवृत्ति और श्रम के सम्मान की भावना जगानी पड़ेगी ताकि समाज का कल्याण हो सके। कुटीर-शिल्प के सम्बन्ध में श्रीयुत मदनमोहन बर्मन महोदय ने अनेक प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। यदि आप उनसे इस सम्बन्ध में मिल लें तो कुछ लाभ हो सकता है।

यदि बड़ी, अचार, चटनी आदि तैयार की जाएँ तो इनके न चलने का कोई कारण नहीं है। स्त्रियाँ और विशेष रूप से विधवाएँ, यह कार्य भली भाँति कर सकती हैं। परन्तु क्या इस काम को सिखाने के लिए कोई व्यक्ति मिल सकेगा? यदि बाजार में बेचना हो तो ये वस्तुएँ बहुत ही उत्तम होनी चाहिएँ। यदि उत्तम वस्तुएँ तैयार करने की सम्भावना हो तो आप इस दिशा में प्रयास कर सकते हैं। कच्चा माल देकर आप तैयार माल प्राप्त कर सकते हैं (बेचने का भार अवश्य ही आप पर होगा) अथवा वे स्वयं ही कच्चा माल खरीदें और सामग्री बनाकर आपको बेच सकते हैं। काम आरम्भ करने से पूर्व दुकानदारों से बातचीत करना आवश्यक होगा। वे हमारा माल चला सकते हैं अथवा नहीं? कच्चा माल उत्तम होने पर सामान भी उत्तम बनेगा, परन्तु दूसरी ओर चोरी की भी बहुत सम्भावना है। जो यह काम करेंगे वे बहुत ही निर्धन हैं। अतएव आम, नींबू, मिर्च, तेल आदि मिलने पर वे उन्हें घर के काम में नहीं लाएँगे यह कौन कह

सकता है ? दूसरी ओर यदि वे स्वयं कच्चा माल खरीदकर सामान बना कर दें तो खराब माल (जैसे तेल के सामान) बनने की आशंका है। इस सम्बन्ध में आप स्वपक्ष और विपक्ष की बातों को सोचकर अपना कर्त्तव्य स्वयं निश्चित कीजिए। एक बात और है, इन सब वस्तुओं की बाजार में माँग कैसी है, यह जानना भी आवश्यक है। मेरा अपना विचार है कि अधिक संख्या में शुद्ध विचार से काम करने वाले न मिलने पर इस दिशा में सफलता की आशा कम है। वैसे गरीब शिष्ट परिवारों से यह काम चल सकता है। सामान बनकर आने के साथ ही उसका मूल्य या पारिश्रमिक चुका देना पड़ेगा और बिक्री न होने तक सामान को अपने भण्डार में रखना होगा।

समिति को एक और भी काम हाथ में लेना चाहिए।

कलकत्ते में दो जेलें हैं, प्रेसिडैन्सी और अलीपुर सैन्ट्रल। जेल में यदि कोई ऐसा हिन्दू कैदी मर जाता है जिसका कि कोई सगा-सम्बन्धी कलकत्ते में नहीं होता तो पैसे देकर डोम या मेहतर जाति के लोगों द्वारा उसके अन्तिम संस्कार की व्यवस्था की जाती है। हाँ, मुसलमानों का कब्रिस्तान-संघ है, जो किसी मुसलमान कैदी के मरने पर, उसका समाचार पाते ही, संस्कार की व्यवस्था करता है। इस प्रकार का एक संगठन हिन्दू कैदियों के लिए भी बनाना आवश्यक है। क्या इस कार्य का उत्तरदायित्व सेवक समिति ले सकती है ? यदि आपका विचार हो तो बसन्त बाबू द्वारा एक पत्र जेल सुपरिन्टैन्डैन्ट को भिजवा सकते हो कि सेवक समिति इस कार्य का भार उठाने को प्रस्तुत है। यदि आप इस समय व्यवस्था नहीं कर सकते तो मैं जेल से बाहर आकर स्वयं इस सम्बन्ध में प्रयास करूँगा। लोकहित की भावना के कारण मैं इस प्रकार का कार्य करने के लिए स्वयंसेवक के रूप में प्रस्तुत हूँ।

* * *

यदि आप कुटीर उद्योग चलाना चाहते हैं तो एक काम करना आवश्यक है कि उपयुक्त युवकों को कासिम बाजार पॉलिटैकनीक या इसी प्रकार के किसी अन्य प्रतिष्ठान में काम सिखवायें। कासिम बाजार के स्कूल में मिट्टी के पुतले और देवी-देवताओं की बहुत सुन्दर मूर्तियाँ बनती हैं। यदि समिति की सहायता से आप प्राथियों के लिए इस प्रकार का उद्योग आरम्भ कर सकते हैं तो बंगाल में सर्वत्र ही उनके द्वारा बनाए हुए सामान को (विशेषतः मेले और उत्सव के अवसरों पर) बेचा जा सकता है। एक

अन्य शिल्प का प्रचार भी इस देश में है—वह है रंगीन कागजों से अनेक प्रकार के फूल, गुलदस्ते, फूलदार पौधे आदि बनाना। ये वस्तुएँ इतनी सुन्दर होती हैं कि अचानक देखने पर यह परखने का कोई साधन नहीं होता कि ये असली हैं अथवा कागज की। भले घरों के छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ भी इन वस्तुओं को बहुत सुन्दर बना सकते हैं।

ढाके में बटन का काम कुटीर-उद्योग के रूप में चल रहा है। बहुत से लोगों का विचार है कि ढाके के बटन फैक्ट्री में बनते हैं, परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। अवकाश के समय देहात के घर-घर में—यहाँ तक कि रसोई के काम में व्यस्त रहते समय भी—स्त्रियाँ यह काम करती हैं। इसीलिए ये वस्तुएँ इतनी सस्ती मिलती हैं। बटन के शिल्प का कलकत्ते में प्रचार करना सम्भव है या नहीं, इस बारे में सोचना पड़ेगा। सम्भव है कि किसी व्यक्ति को यह देखने के लिए ढाका भेजना पड़े कि किस प्रकार वहाँ यह शिल्प घर-घर चल रहा है।

स्वास्थ्य सम्बन्धी भाषण और छायाचित्र का प्रबन्ध यदि भवानीपुर अंचल में कर सकें तो ठीक है। जहाँ गरीबों की बस्तियाँ हैं वहाँ भाषणों की अधिक आवश्यकता है। यदि सम्भव हो तो सेवा समिति के लिए एक मैजिक लैन्टर्न का सामान और चित्र खरीदने का प्रयास करना। छपे हुए चित्रों के द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धी भाषण देने में बहुत सहायता मिलती है। चित्र खरीदने की अपेक्षा उन्हें किसी स्थानीय चित्रकार से बनवा लेना सम्भवतः अधिक सुलभ रहेगा। इति।

९०*

माँडले
१६–१०–२५

द्वारा, डी० आई० जी०, आई० बी०, सी० आई० डी०,
बंगाल
१३, एलिसियम रोड, कलकत्ता।

प्रिय सन्तोष बाबू,

जब से आपने मुझे पत्र लिखना बन्द किया है तब से मैंने भी आपके पास कोई पत्र नहीं डाला। संभवत: मैंने यह पत्र भी न लिखा होता, परन्तु कुछ अन्य आवश्यक कारणों से लिख रहा हूँ। इसके लिखने में मुझे कुछ संकोच भी अनुभव हो रहा है।

आप तो आयुर्वेद एकीकरण समिति की समस्त प्रगति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से जानते हैं। जब श्यामदास वाचस्पति के वैद्यशास्त्र पीठ को अनुदान देने का प्रश्न आया था तभी किसी सदस्य ने एक विरोधी प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया। सम्भवत: यह सज्जन निरुपेन्द्र नाथ वसु थे। वे चाहते थे कि समस्त आयुर्वैदिक संस्थाओं को मिलाकर एकीकरण कर दिया जावे और कार्य-संचालन के लिए एक कमेटी बना ली जावे। वास्तव में इस प्रस्ताव के पीछे कविराज जैमिनीभूषण राय का हाथ था, जिसके करण थे निरुपेन्द्र बाबू, रामप्रसाद तथा अन्य। जैमिनी कविराज यह आशा करते थे कि यदि तीनों कालेजों का एकीकरण हो जायगा तो वस्तुत: वे सर्वेसर्वा बन जावेंगे। इस कार्य में उनका योग इतना ही है कि वे स्वयं कारपोरेशन के प्रत्येक सदस्य के पास गये तथा उन्हें प्रभावित करने के लिए जो कुछ भी सम्भव हो सका वह किया तथा हर एक को इस बात के लिए राजी किया। मेरे पिताजी से वह पहले से ही परिचित थे। उन्हीं के द्वारा उन्होंने मुझ तक भी पहुँच की। आप जानते हैं मैं तो साफगो आदमी हूँ और सिफारिश से घृणा करता हूँ, और विशेषतया तब और भी अधिक जबकि सिफारिश के लिए कोई परोक्ष मार्ग अपनाये।

मान लो समस्त आयुर्वैदिक संस्थाओं का एकीकरण हो जाता है, तब भी तो कोई न कोई उसका सर्वेसर्वा बनेगा। प्रश्न यह है कि इस महत्वपूर्ण कार्य को कौन पूरा करे? जैमिनी कविराज के प्रति तो मेरा विरोध तीन

* श्री संतोष कुमार वसु के नाम दो पत्र।

कारणों से है। प्रथम तो उनका आयुर्वेद का ज्ञान अति अल्प है। भला कहीं प्राचीन आयुर्वैदिक प्रणाली का उद्धार अल्पज्ञानियों द्वारा सम्भव है ? मुझे तो उनकी आयुर्वेद के प्रति सच्ची श्रद्धा में भी सन्देह है। दूसरी आपत्ति यह है कि वे एक वैद्य होते हुए भी अपने धन्धे में स्पष्टवादी व्यक्ति नहीं हैं। इस व्यवहार से उनके चरित्र का भी साफ-साफ पता लग जाता है। एक ऐसा अग्रगण्य वैद्य, जो अपना धन्धा चलाने के लिए बहुत कुछ दलालों पर आश्रित हो, कदापि विश्वसनीय नहीं हो सकता। वे स्वयं तो आयुर्वेद तथा एलोपैथी के एक विचित्र मिश्रण हैं। तीसरी आपत्ति यह है कि जो चालबाजियाँ वे खेलते हैं उनमें वे किसी भी स्तर तक गिर सकते हैं। इस सम्बन्ध में उनकी गिरावट का अन्दाजा लगाना कठिन है। उनका अपना एक छोटा सा गुट है—"अष्टाङ्ग आयुर्वेद दल"। वे लोग एक नये कालेज की स्थापना करके उस पर अधिकार जमाना चाहते हैं। ऐसा करने में उन्हें तीन लाभ हैं—वे अधिकांश में कारपोरेशन के खर्चे पर, बिना किसी कठिनाई के एक कालिज की स्थापना कर सकेंगे। इससे उनका सम्मान भी बढ़ेगा तथा ख्याति भी, साथ ही उनका धन्धा भी पनपेगा। कारपोरेशन का पूरा-पूरा सहयोग एवं संरक्षण प्राप्त करके जैमिनी गुट का प्रभुत्व इतना बढ़ जावेगा कि या तो अन्य संस्थाओं को उनके सामने समर्पण करना पड़ेगा अन्यथा वे उनको कुचल डालेंगे। यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि कारपोरेशन एक नई संस्था की नींव डालता है तो उससे तो अन्य संस्थाओं की कमर ही टूट जावेगी।

एकीकरण का प्रस्ताव तो वास्तव में जैमिनी गुट की तरफ से आया है ; क्योंकि वे ही अन्य समस्त संस्थाओं को कुचलकर इस नये कालेज में अपनी शक्ति और प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। ये वही लोग हैं जिन्होंने असहयोग आन्दोलन के समय देशबन्धु जी के आवाहन पर भी उनका साथ नहीं दिया था।

वैद्य-शास्त्र विद्यापीठ की नींव तो देशबन्धु जी ने डाली थी। मेरे विचार से उसकी इमारत बड़ी मूल्यवान है और भविष्य में उसका महत्व और भी अधिक बढ़ने की सम्भावना है। वहाँ के प्रधानाचार्य अन्य सभी कविराजों की अपेक्षा अधिक विद्वान हैं, वे कोई भ्रष्ट व्यापारी नहीं हैं, और न अपना धन्धा चलाने के लिए दलालों का सहारा टटोलते हैं। वे तो पुरानी परम्परा के एक "पक्के" कविराज हैं परन्तु वे नये विचारों का भी स्वागत करते हैं। उनका चरित्र बड़ा उज्ज्वल है। वे तो आडम्बर-

रहित शुद्ध विचारों के व्यक्ति हैं। मैं नहीं सोच सकता कि इस संस्था को भविष्य में उनसे उत्तम कोई अध्यापक मिल सकेगा। परन्तु वे न तो जैमिनी गुट जैसी बातें ही बना सकते हैं और न तलुए सहलाने की कला में इतने प्रवीण ही हैं। यही कारण है कि जैमिनी गुट के साथ इतना पक्षपात किया जा रहा है।

श्यामदास कविराज जी ने अपने कालिज को अभी तक अपने धन से चलाया है और यदि भविष्य में जनता अथवा कारपोरेशन की सहायता उन्हें प्राप्त नहीं होती है तो उनके लिए कालिज को आगे चलाना कठिन हो जावेगा। स्वाभाविक ही है कि श्यामदास जी अपने कालिज को किसी ऐसे समझौते के अनुसार मिलाने के लिए तैयार न होंगे, जिसका उद्देश्य जैमिनी गुट की सत्ता एवं प्रभुत्व की वृद्धि करना हो। उधर जैमिनी गुट भी किसी ऐसी बात पर राज़ी नहीं होगा जिसमें उसको संस्थाओं पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त न हो।

हम में से जो देशबन्धु जी के अनुयायी हैं वे सब उनके कार्यों एवं संस्थाओं को चलाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या हमारे कारपोरेशन के सदस्य इस सम्बन्ध में अपने उत्तरदायित्व को पहिचानते हैं ?

जब तक यह एकीकरण सम्मानित शर्तों पर नहीं होता तब तक यही उत्तम है कि तीनों कालिजों को अनुदान अलग-अलग मिलता रहे और यह बात तब तक रहनी चाहिए जब तक कि समझदारी और ईमानदारी से काम नहीं लिया जाता।

नये कालिज की स्थापना के लिए जैमिनी कविराज तो अपने ५०००० रु० के दान का ढिंढोरा पीट रहे हैं। श्यामदास कविराज ने तो वैद्य-शास्त्र विद्यापीठ के चलाने के लिए पहले ही अपने पास से बहुत सा रुपया खर्च कर दिया है। यदि केवल रुपये को ही मापदण्ड माना जाय तो श्यामदास कविराज भी उदारता में किसी से कम नहीं बैठेंगे।

यदि आपको मेरी कही हुई बातों में सन्देह हो तो आप स्वयं वैद्य-शास्त्र पीठ में जाकर देख लीजिए। यदि आप श्यामदास कविराज जी को फोन करेंगे तो वे प्रसन्नता के साथ कालिज में सब कुछ दिखला देंगे। यद्यपि श्यामदास जी स्वयं एक पुरानी पीढ़ी के कविराज हैं; फिर भी उन्होंने वैद्य-शास्त्र पीठ के पाठ्य-क्रम में भौतिकी, रसायन-शास्त्र शरीर-विज्ञान आदि की व्यवस्था की है।

मैं यह जानता हूँ कि हर कार्य को आप तत्परता से करते हैं और तब

तक चैन नहीं लेते जब तक उसे पूरा नहीं कर लेते। कविराज श्यामदास जी के पत्र में हाल के समाचारों को पढ़कर बड़ा दुःख हुआ, तभी मैंने सोचा कि यदि आप इस मामले को अपने हाथों में ले लें तो सम्भव है कि कुछ लाभ हो जावे।

आशा है आप सकुशल होंगे। मैं भी ठीक-ठाक हूँ। विजयदशमी की हार्दिक बधाई और प्यार!

आपका परम स्नेही
सुभाष

पश्च-लेख :

आप इस बात की चर्चा ब्रज बाबू से भी कर दीजिए। आजकल तो वे जन-स्वास्थ्य समिति के अध्यक्ष हैं।

पत्र में यदि कहीं कठोर शब्दों का प्रयोग हो गया हो तो उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

सुभाष

९१

माँडले
४–१२–२५

प्रिय वसु,

आपके पत्रों को पढ़कर चित्त प्रसन्न हो जाता है और उनका उत्तर देने में भी बड़ा आनन्द अनुभव होता है। इतने दिन बाद आपके पत्र को पाकर मुझे कितनी ख़ुशी हुई है इसे क्या बतलाऊँ? वर्तमान परिस्थिति में भी, जहाँ तक सम्भव हो सका है, मैंने तो आपकी कारपोरेशन सम्बन्धी गतिविधियों की पूरी जानकारी रखने का प्रयत्न किया है। न्यू मार्केट के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में भी काफी शिकायतें छप रही हैं। मुझे आशा है कि आवारा कुत्तों का वध करने की व्यवस्था हो जाने पर इस अभिशाप से तो सदा के लिए मुक्ति मिल जावेगी।

गज़ट का वार्षिक अंक बहुत सफल रहा। कृपया मेरी ओर से सम्पादक महोदय को बधाई दे दीजिए। उनका मुझसे भी सन्देश भेजने

का आग्रह था, परन्तु मैंने तो सन्देश के साथ-साथ कुछ सुझाव भी भेजे हैं। यद्यपि सुझाव देने के लिए यह अवसर बहुत उपयुक्त न था तथापि मैंने तो इस अवसर का उपयोग कर ही लिया है। बात यह है कि सुझाव रखने के इस अवसर को मैं हाथ से खोना नहीं चाहता था। इन सुझावों को भेजने में मेरे पास केवल एक ही तर्क है कि मैं नहीं समझता कि निकट भविष्य में गजट के सम्बन्ध में मैं फिर अपने विचार सम्पादक महोदय तक भेज सकूँगा। कुछ बड़े महत्वपूर्ण मामले हैं। उन्हें तो मैं इस आशा से आपके पास प्रेषित कर रहा हूँ कि आप उन प्रश्नों को अपनी शक्ति और उत्साह के साथ अवश्य उठावेंगे। इस सम्बन्ध में मैंने कुछ अन्य सदस्यों को भी लिखा है, परन्तु उससे कुछ बनना-बनाना नहीं है। सड़कों की रोशनी का ठेका गैस कम्पनी के पास है। वह ठेका १९३१ में समाप्त हो जावेगा। उसके लिए हमें नया करार ५ वर्ष पूर्व करना होगा अर्थात् १९२६ में करना होगा, ताकि नया ठेकेदार १९३१ तक कार्य करने की स्थिति में आ जावे। इसके लिए हमारे पास चार विकल्प हैं—

(१) इस विभाग पर नगर-प्रशासन का अधिकार हो और गैस ही जलाई जावे।

(२) इस विभाग पर नगर-प्रशासन का अधिकार हो और गैस के स्थान पर बिजली जलाई जावे।

(३) किसी अन्य ठेकेदार से बिजली के प्रकाश के लिए करार किया जावे।

(४) गैस कम्पनी के ठेके की अवधि बढ़ा दी जावे।

इससे आप अनुमान लगा सकते हैं कि मैं इस विभाग पर नगर-प्रशासन के अधिकार के पक्ष में हूँ।

संसार के प्रमुख कारपोरेशन प्रकाश का प्रबन्ध स्वयं करते हैं, फिर अपना प्रबन्ध हम स्वयं क्यों न करें? यदि हम गैस का प्रयोग ही चालू रखते हैं तो हम उसके सभी गौण उत्पादनों का प्रयोग उद्योगों में कर सकते हैं। हम चाहें तो उन्हें निजी व्यवसायियों को भी बेच सकते हैं या नगर-प्रशासन द्वारा संचालित उद्योगों में काम में ला सकते हैं। उदाहरण के लिए हम कीटाणुनाशक पदार्थ बना सकते हैं। ऐसी दशा में हमें फनायल या फैनोकोल आदि खरीदने की आवश्यकता न पड़ेगी। चाहें तो हम गैस कम्पनी का समस्त संयन्त्र (प्लान्ट) खरीद सकते हैं और उनके संचालन के स्थान पर अपना संचालन प्रतिस्थापित कर सकते हैं। मैं कोई कारण

नहीं समझता कि भविष्य में यह संस्था हमें आर्थिक लाभ देने वाली न हो।

नगर-प्रशासन के अन्तर्गत गैस के स्थान पर विद्युत के प्रयोग का प्रश्न गम्भीर रूप से विचारणीय है। इसका पूर्णरूपेण समाधान तो आर्थिक अभिसंधान पर निर्भर है। मैंने अपने बन्दी होने से पूर्व, प्रकाश अधीक्षक महोदय से, विद्युत तथा गैस प्लान्ट चलाने के सम्बन्ध में लागत सम्बन्धी एक तुलनात्मक विवरण तैयार करने को कहा था। नहीं मालूम इस दिशा में क्या प्रगति हुई है? परन्तु बातों से वे विद्युत प्रकाश के पक्ष में जान पड़े। आपको विदित हो कि पम्पिग स्टेशन के चलाने और सड़कों पर प्रकाश करने की मद में हम विद्युत सप्लाई कारपोरेशन को लाखों रुपया वार्षिक देते हैं। यदि विद्युत प्रकाश का हमारा अपना प्रबन्ध हो तो हम पम्पिग स्टेशनों को भी चला सकते हैं और इससे हमें पर्याप्त बचत भी हो सकती है। अतः अन्तिम निर्णय करने से पूर्व इन सभी अभिसन्धानों पर बड़ी सतर्कता के साथ विचार करना होगा। इस विवाद में यदि एक वर्ष नहीं तो कम से कम ६ महीने तो लग ही जायेंगे। अतः इस विषय का इसी समय सूत्रपात कर देना उचित है।

मैं कुछ दिनों से म्युनिसिपल मार्केट में कोल्ड स्टोरेज यंत्र लगाने के सम्बन्ध में विचार कर रहा हूँ। ऐसा होने से माँस, मछली, फल आदि का संरक्षण सम्भव हो सकेगा, क्योंकि ये वस्तुएँ तत्काल तो बिक नहीं जातीं। इनमें से कुछ न कुछ खाद्य-पदार्थ तो मार्केट में रोज ही खराब हो जाते हैं और इस घाटे को पूरा करने के लिए साधारणतया वस्तुओं का मूल्य बढ़ा दिया जाता है। यदि इस हानि को कोल्ड स्टोरेज यंत्र की सहायता से रोका जा सकता है तो खाद्य-पदार्थों का परिमाण बढ़ जावेगा और वस्तुओं का मूल्य गिरने लगेगा। यदि आप चाहें तो इस प्रस्ताव को मार्केट कमेटी के सम्मुख प्रस्तुत कर सकते हैं।

इंगलैण्ड में खाद्य-पदार्थ-संरक्षण विभाग है। वहाँ केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में वेतनभोगी शोध-स्नातक के रूप में मेरे एक मित्र श्री पी० पारिजा, जो अब रैविनशौ कालिज में जीव-विज्ञान के प्राध्यापक हैं, काम करते थे। उन्होंने लगभग एक वर्ष तक सेव और उसके संरक्षण की सम्भावनाओं पर खोज की। अभी पिछले दिनों मैंने लन्दन टाइम्स में एक लेख पढ़ा था, जिसमें लिखा था कि सेव संरक्षण पर किये गए परीक्षण अभी सफल नहीं हुए। यदि आप चाहें तो श्री पारिजा को सीधा एक पत्र लिख सकते हैं या मन्त्री जी के द्वारा इस विषय की व्यावहारिक क्षेत्र

में नवीनतम जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। आप इस सम्बन्ध में इंगलैण्ड के स्वास्थ्य मन्त्रालय अथवा लन्दन काउन्टी काउन्सिल से भी पत्र-व्यवहार करके जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। सफल खाद्य-पदार्थ संरक्षण से सम्भरण बढ़ेगा, जिससे वस्तुओं का मूल्य अवश्य गिरेगा। अतः खाद्य-पदार्थों के संरक्षण के क्षेत्र में दूसरे देशों में कितनी प्रगति हुई है; इसको हमें जान लेना और भी आवश्यक है।

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा योजना के लागू करने में बम्बई, दिल्ली और चटगाँव हमसे बाजी मार गये हैं हमारे लिए यह कितनी लज्जा की बात है।

आज से लगभग तीन मास पूर्व मैंने इसी विषय पर एक पत्र डिप्टी मेयर के पास भेजा था, परन्तु मेरे विचार से तो उन्होंने अभी कुछ नहीं किया है। मेरा विचार था कि अगले वर्ष, १६२६ में, नगर के कुछ चुने हुए क्षेत्रों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू कर दी जावे, ताकि वर्तमान कारपोरेशन के समाप्त होने से पूर्व ही कम से कम एक वर्ष का अनुभव तो हो जावे। अधिनियम के अनुसार हमको अनिवार्य शिक्षा लागू करने का अधिकार नहीं है। अतः कारपोरेशन को इस कार्य के लिए विशेष अधिकार प्राप्त करने होंगे। मुझे विदित हुआ है कि पिछली परिषद् में बाबू सुरेन्द्रनाथ राय के प्रस्ताव पर यह निर्णय हुआ था कि स्थानीय सरकार को एक अधिसूचना द्वारा एक स्थानीय निकाय को विशेष अधिकार प्रदान किये जावें ताकि जहाँ तक सम्भव हो सके वहाँ तक अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की समस्या को हल किया जा सके।

सरिताओं का उद्भव, उनका विकास एवम् ह्रास की जानकारी भी स्वयं में एक विज्ञान है और अन्य देशों में तो बहुत से इन्जीनियरों ने इस क्षेत्र में विशेष जानकारी प्राप्त की है। यह देखने के लिए कि वास्तविक स्थिति में एक लघु सरिता का मार्ग भविष्य में किधर-किधर होकर हो सकता है सरिताओं के छोटे-छोटे प्रतिमान बनाकर इसका परीक्षण किया जाता है। एक सरिता इन्जीनियर यदि विद्याधरी सरिता का अध्ययन करने का इच्छुक है तो सबसे पहिले वह स्थानीय मिट्टी को देखेगा, फिर उसका प्रतिमान बनाकर परीक्षण आरम्भ करेगा। जब तक कि आप विद्याधरी सरिता के विषय में पहिले से घोषणा नहीं कर देते तब तक आप कलकत्ते में नालियों की समस्या का निश्चित समाधान नहीं कर सकते। दूसरी समस्या का समाधान तो श्री विलसन अथवा अन्य कोई अभियन्ता भी कर सकता है, परन्तु पहली

समस्या को केवल सरिता-अभियन्ता ही हल कर सकता है। विद्याधरी कमेटी ने तो अभी प्रथम समस्या के केवल एक छोर का स्पर्शमात्र ही किया है।

आप चाहें तो व्यक्तिगत रूप से डा० बैन्टले से पत्र द्वारा योरोप और अमरीका के प्रसिद्ध सरिता-अभियन्ताओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर लें। इंगलैण्ड के इन्स्टीट्यूट आफ़ सिविल इन्जीनियर्स से यदि कारपोरेशन प्रसिद्ध सरिता-अभियन्ताओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहे तो कर सकता है। यदि आप अन्य समस्याओं के साथ-साथ इस समस्या को भी उठाते हैं तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

मैं मार्केट कमेटी द्वारा किए गए कार्यों के सम्बन्ध में कुछ पढ़ने का इच्छुक हूँ। साथ ही मैं सच्चे हृदय से यह भी आशा करता हूँ कि मंशाताल नौका का मामला भविष्य में आने वाली समस्त विघ्नबाधाओं को पार कर जावेगा। जब कभी मुझे कोई हितकर बात सूझती है वह मैं मेजदादा को लिखता ही रहता हूँ। मुझे आशा है कि आप मेरे सुझावों की ओर भी थोड़ा ध्यान देंगे।

क्या वर्कशाप कमेटी ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी? आजकल मोटर-गाड़ी विभाग के क्या हालचाल हैं? क्या शीघ्र ही इसे मान्यता प्राप्त हो जावेगी? मैं देखता हूँ कि म्युनिसिपल रेलवे के इन्जनों की बुरी दशा है। इस सम्बन्ध में तो आपके लिए पूर्व बंगाल रेलवे की सहायता अपेक्षित है।

आगामी बजट में तो सड़क झाड़ने वाली नई मशीनों के खरीदने के लिए थोड़े बहुत रुपये का प्रबन्ध करना ही चाहिए। जो नये क्षेत्र कारपोरेशन के अन्तर्गत आ गये हैं उनके लिए भी छिड़काव वाली गाड़ियों की आवश्यकता है। भविष्य में कौन सी नीति अपनाई जावेगी इसका निर्णय करने से पूर्व ही नई मशीनों का परीक्षण कर लेना आवश्यक है। सड़कों की दशा के सम्बन्ध में जो जाँच हो रही थी, क्या वह पूरी हो गई? मैं तो ऐसा समझता हूँ कि यह काम आपको सड़क-विभाग के योरोप में शिक्षित किसी अभियन्ता—जो सड़क निर्माण की नवीनतम प्रणालियों से परिचित हो—की देख-रेख में देना होगा। हमारे पास तो कारपोरेशन में कोई होशियार सड़क-अभिन्यता है ही नहीं। विदेशों में तो सड़क निर्माण का कार्य हमारे देश के मुकाबले में बहुत आगे है।

मेरी तो यह राय है कि किसी होशियार से आदमी को चुनकर शिक्षा के लिए विदेश भेजा जावे। हमारे यहाँ का सड़क-विभाग तो बहुत

गया-बीता है और उस बोझ को वह कदापि सहन नहीं कर सकता जब कि कलकत्ते का विस्तार आज के मुकाबले में कहीं अधिक होगा। मेरे विचार से तो यह प्रत्याशित है कि आगामी वर्ष में सड़कों की दशा और भी अधिक बुरी होगी, उस समय टैक्स देने वाली जनता आपकी जान को आ जावेगी। समस्त अभियन्ता-विभाग का पुनर्गठन करना होगा। सड़क-विभाग और सफाई-विभाग को स्वायत्त शासन प्रदान करना होगा। मुझे तो इसमें सन्देह है कि कलकत्ता जैसे नगर का कार्य कोई गया-बीता मुख्य-अभियन्ता कर पायेगा।

क्या आपने कलकत्ते में आये दिन फैलने वाले चेचक के रोग के बारे में कोई जाँच कमेटी बिठलाई है?

लीजिये अब अचानक ही मैं अपने पत्र को समाप्त करता हूँ। पत्र भी लम्बा हो गया है और इधर डाक भी निकलने वाली है। मेरे पास तो इतना भी समय नहीं है कि मैं इसे एक बार दुहरा लूँ। जल्दी के लिए क्षमा।

आपका बन्धु
सुभाष

९२*

श्री श्री दुर्गा सहाय

माँडले जेल
१६ दिसम्बर, १९२५ ई०

पूजनीया भाभी जी,

आपका ५ दिसम्बर का पत्र प्राप्त करके मुझे वर्णनातीत प्रसन्नता हुई है। मैं आपके दो पत्रों का उत्तर न दे सका था, इसलिए आशा न थी कि आप पत्र डालेंगी। अब आपके तीनों पत्रों का उत्तर एक साथ दे रहा हूँ।

आपका भेजा हुआ कुर्ता आज से कई दिन पूर्व मुझे मिल गया था। पार्सल मिलते ही मैं समझ गया था कि घर के सूत का बना हुआ है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो केवल एक ही कुर्ता नहीं आता। फिर मुझे नहीं मालूम कि किस सूत का बना हुआ है। एक बार सोचा कि

* सुश्री विभावती वसु के नाम।

भाभी आदि ने जो सूत काता था उससे बना होगा। बाद में अनुमान लगाया कि लाल भाभी के सूत से बना होगा, क्योंकि पिछली बार जब मैं जेल में था, उस समय उन्होंने घर के सूत से बनी एक चादर तथा कुछ अन्य वस्त्र भेजे थे। परन्तु देखता हूँ कि मेरा अनुमान ठीक नहीं निकला। आप लोग जिस प्रकार का सूत कात रही हैं उसके सम्बन्ध में मैंने पहले कभी नहीं सुना। आप किस किस प्रकार का सूत कात रही हैं, और किसका सूत कैसा होता है, मुझे यह लिखना न भूलिए। किसका उत्साह सर्वाधिक है? क्या दीदी सूत कात सकती हैं? आप सूत कहाँ बुनवाती हैं?

कुर्ता बहुत सुन्दर है। मैं उसे पहनकर ही पत्र लिख रहा हूँ। जिस प्रकार अपने हाथ का बनाया हुआ भोजन दूसरे के बनाए हुए भोजन से दसगुना स्वादिष्ट लगता है, ठीक उसी प्रकार अपने हाथ का कपड़ा दूसरे के बनाए हुए कपड़े की अपेक्षा, दसगुना सुन्दर लगता है। आशा है कि आप लोगों का उत्साह दिन प्रति दिन बढ़ेगा। हमने यहाँ आकर कई दिन सूत काता था, बाद में चरखा टूट गया। परन्तु जिस व्यक्ति में अधिक उत्साह था, उसका यहाँ से स्थानान्तरण हो गया। इसीलिए अब वह टूटा हुआ चरखा आलमारी के ऊपर रखा है। एक बार सोचा था कि डा० बी० सी० राय को एक चरखा भेजने के लिए लिखूँ, किन्तु बाद में सोचा कि वह कहीं मार्ग में ही न टूट जाए, इसीलिए नहीं लिखा।

शारदा की बातें बहुत याद आती हैं। अब वह कैसी है? आज-कल उसका समय काहे में बीतता है? बकरी, बिल्ली, पंछी या लड़के-लड़कियों में? वह किसके साथ अधिक रहती है?

बहुत दिन पहले सुना था कि छोटी भाभी बीमार हैं। अब उनका क्या हाल है?

मैं प्रवास में बन्दी हूँ; इससे आप लोग, बन्धु-बान्धव और सब स्वजन अत्यन्त दुखी हैं। यह नहीं कह सकता कि मुझे दुःख नहीं है, परन्तु सोचता हूँ कि इसमें भी निःसन्देह भगवान का कोई उद्देश्य निहित है। यदि ऐसा नहीं है तो इतने राजबन्दियों में से मैं या हम कुछ व्यक्ति ही यहाँ क्यों भेजे गये? इसके अतिरिक्त मैं कभी कभी वर्णनातीत आनन्द अनुभव करता हूँ। वह आनन्द यदि न मिलता तो सम्भवतः मैं अब तक पागल हो गया होता। हम धर्मग्रन्थों में पढ़ते हैं कि दुःख में सुख छिपा है। यह बात शत प्रतिशत सत्य है। कर्म में यदि मनुष्य

को सुख न मिले तो वह कभी भी प्रसन्नचित्त से कष्ट सहन नहीं कर सकता। निश्चित ही जो मनुष्य दूसरों के लिए कष्ट भोगता है, उसे उस कष्ट में जितना सुख मिलता है, सम्भवतः उतना सुख उसे अन्यत्र नहीं मिलता। माँ बच्चों के लिए, भाई भाई के लिए, बन्धु बन्धु के लिए, देशभक्त देश के लिए जो दुःख भोगता है, उसमें यदि आनन्द न होता तो क्या कोई भी उस कष्ट को सहन कर सकता था? यह बात सत्य है कि भक्त विरह में ही भगवान को प्राप्त करते हैं। आज मैं भी एक वर्ष से अपने प्यारे देश से दूर हूँ और इस बात का अनुभव कर रहा हूँ कि मेरी जन्मभूमि मेरे लिए कितनी प्रिय है। वह मेरे लिए कितनी मधुर और सुन्दर बन गई है। आज सोचता हूँ कि मैं इस समय अपनी जन्मभूमि को जितना प्यार कर रहा हूँ सम्भवतः मैंने जीवन में उससे उतना प्यार कभी नहीं किया और यदि उस स्वर्गादपि गरीयसी जन्मभूमि के लिए कष्ट सहन करना पड़ता है तो वह मेरे लिए आनन्द का विषय क्यों नहीं होगा? आज मैं देश से बाहर हूँ, देश से दूर हूँ, परन्तु मन सदा वहीं रहता है और इसमें मुझे कितना आनन्द अनुभव होता है?

(इसके बाद वाली पाँच पंक्तियाँ सेन्सर अधिकारी ने काट दीं।)

१६-१२-२५

मँझले दादा को न तो गत सप्ताह और न इस सप्ताह पत्र भेज सका, आगामी सप्ताह में अवश्य भेजूँगा।

कनक की भेजी हुई भैया-दूज की धोती-चादर पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। उसको अलग से पत्र लिखने की इच्छा है, परन्तु कब लिख पाऊँगा यह पता नहीं। उसके वहाँ आने पर मेरी सब बातें उससे कह देना।

अभी तक मैं यह बात नहीं लिख पाया कि आपके भेजे हुए पूजा के वस्त्र प्राप्त करके हम सबको कितनी प्रसन्नता हुई। कपड़े पूजा के अवसर पर नहीं आ सके परन्तु इससे कोई हानि नहीं हुई। हमारी मास में ३० दिन की छुट्टी रहती है। आपको विजया का प्रणाम अलग से नहीं भेज सका, मँझले दादा के पत्र में ही लिख भेजा था। आशा है आप इसको महसूस नहीं करेंगी।

पूजा की बात तो सम्भवतः पुरानी हो गई। इतना आनन्द किसी पूजा में मिला या नहीं, यह ज्ञात नहीं। बहुत लड़ने-भिड़ने के उपरान्त हमें पूजा की अनुमति मिली थी। इसीलिए सम्भवतः पूजा में

अधिक आनन्द आया। पता नहीं अभी कितने दिन जेल में और व्यतीत करने होंगे ? वर्ष के अन्त में जब माँ के दर्शन फिर मिलेंगे तो सब दुःख भूल जाऊँगा। दुर्गा की मूर्ति में हमें माँ, स्वदेश, विश्व, सभी के दर्शन तो होते हैं। वह एक साथ जननी, जन्मभूमि और विश्वमयी हैं।

हाँ, मैं एक बात तो बताना भूल ही गया। मैंने मँझले दादा को पहले बताया था कि दुर्गापूजा के व्यय के पैसे सम्भवतः सरकार से मिल जाएँगे। अब हमें आदेश मिला है कि हमें अपनी जेब से देने पड़ेंगे। हमने कहा है कि पाँच सौ सरकार दे और शेष हम दे देंगे। हमने अपना भाग दे दिया है परन्तु पाँच सौ रुपए में से एक भी कौड़ी सरकार ने अभी नहीं दी है।

आप अवश्य ही यहाँ के समाचार जानना चाहती होंगी। यहाँ मुर्गियों की संख्या बढ़ गई है। चार बच्चे हुए हैं और भी कई बच्चे हुए थे, जो पैदा होने के बाद ही मर गए। मुर्गियों के लिए वैज्ञानिक ढंग से एक कमरा बनाया गया है और नए मुर्गे भी खरीदे गए हैं। कभी कभी मुर्गों की लड़ाई भी होती है। इससे पहले हमने कभी मुर्गों की लड़ाई नहीं देखी थी। कबूतर पालने का प्रस्ताव आया था, परन्तु रखने के लिए व्यवस्था न होने के कारण खरीदे नहीं गए। यदि यहाँ अधिक दिन तक ठहरना हुआ तो निःसन्देह कबूतरों के दड़बे भी बनवा लिए जाएँगे। जेल में जीवन इतना ढर्रे का और नीरस होता है कि इसमें रस उत्पन्न न कर सकने पर तो मस्तिष्क को सन्तुलित रखना भी कठिन हो जाता है।

बिल्लियों के उपद्रव पूर्ववत् चल रहे हैं। पहले आठ-नौ थीं, अब कुछ अधिक हैं। प्रतिदिन रात को बिलाव के झगड़े से नींद टूट जाती थी। वे हमारे चिल्लाने की भी परवाह नहीं करते थे क्योंकि वे समझते थे कि हम कमरे में बन्द हैं। बाद में एक दिन हम सबने कई बिलावों को बोरे में भर कर दूर भेज दिया। उनमें से फिर भी कई बिलाव लौटकर आ गए। कुल तीन बिलाव रह गए थे। उनको भी बीच में विदा कर दिया था परन्तु वे वापस आ गए। यहाँ बहुत से बिल्ली-प्रेमी हैं। क्या किया जाए, प्रेम करने योग्य वस्तु के अभाव में हम लोग बिल्ली से हो प्रेम करके जी बहला लेते हैं, परन्तु मैं अभी तक बिल्ली को प्यार नहीं कर पाया हूँ। ये देखने में बहुत भद्दी हैं। शारदा की बिल्ली जैसी हों तो प्यार भी किया जा सकता है।

बगीचा बनाने का प्रयास ज़ोर से चल रहा है। हमारे स्थायी

मैनेजर अब मैनेजरी छोड़कर बाग लगाने के पीछे पड़ गए हैं; किन्तु धरती सोना उगलने को तैयार नहीं है। इधर मैनेजर बाबू भी हार मानने वाले नहीं हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उन्होंने दो हाथ भूमि में न बोया हो। साग, बैंगन, चने, मटर, गन्ने, अनन्नास, प्याज और भी न जाने क्या-क्या उन्होंने बोया है? इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के फूलों के पौधे भी। थोड़े से भाग में धूप के अभाव में पौधों को बढ़ते न देखकर उन्होंने अनेक वैज्ञानिक उपायों का प्रयोग किया है। आजकल तो वे कई सप्ताह से धूप में एक बड़ा सा दर्पण रखकर फूलों के पौधों पर कई घण्टे तक सूर्य का प्रकाश फेंकते रहते हैं। उनके अनुमान से इस उपाय के द्वारा फूलों के पौधे अब बहुत शीघ्रता से बढ़ रहे हैं। इसीलिए अब हम उन्हें दूसरा जगदीश बोस मानते हैं।

निःसन्देह जेलखाना एक चिड़ियाघर है। हमारे यहाँ श्यामलाल नामक एक व्यक्ति है जिसकी बुद्धि का परिचय पाकर हमने उसे पंडित की उपाधि दी थी। फिर उसकी बुद्धि का और परिचय मिला। अतः उसको उपाध्याय की पदवी भी दी गई और उसे विश्वास दिलाया गया कि क्रमशः उसे महामहोपाध्याय की उपाधि भी दी जावेगी।

श्यामलाल महाप्रभु डकैती में जाकर पाँच रुपए लेकर घर लौटा। हजार से भी अधिक रुपए उससे ठगकर उसके डकैत मित्रों ने उससे ले लिए। पाँच रुपए लेकर उसे मिला पन्द्रह वर्ष का कठोर कारावास। उसको राजशाही जेल में भेजा गया था। वहाँ कैदी जेल तोड़कर भागे तब श्यामलाल ने देखा कि जेल तो खाली हो गई और सदर फाटक खुला पड़ा है। तब उसने जमादार से जाकर कहा—"जमादार साहब क्या मैं भी जा सकता हूँ?" जमादार ने कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा हो करो।" जब सब कैदी पकड़े गए और वापस जेल में लाये गये तो उनके सम्बन्ध में विचार आरम्भ हुआ। विचार के समय श्यामलाल उठकर बोला—"हुजूर मैं तो जमादार की अनुमति लेकर जेल से बाहर गया था।" जज ने उसकी बात को सत्य नहीं माना और जेल तोड़ने के अपराध में उसे एक वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड और दिया।

यहाँ श्यामलाल को स्नानागार का काम सौंपा गया। उसका काम था पानी, कपड़े, तेल, साबुन आदि तैयार रखना। कैदियों को जल नष्ट करते देखकर उसने सोचा कि क्या उपाय किया जाए जिससे जल नष्ट न हो। बहुत देर तक सोचने के उपरान्त उसने स्नानागार में घुसकर अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया और फिर जंगले से बाहर निकलकर

जोर से धक्का देकर, जंगला बन्द किया जिससे चटकनी गिर कर भीतर से जंगला बन्द हो गया, इस पर श्यामलाल मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। स्नान के समय जब दरवाजा खोलना आवश्यक हो गया तब श्यामलाल सर खुजाने लगा। हमने उसकी बुद्धि का परिचय पाकर तुरन्त उसे पंडित की उपाधि दे दी।

श्यामलाल की उपाधियों की संख्या बढ़ने लगी परन्तु वह पंडित की उपाधि से सर्वाधिक सन्तुष्ट रहा। उपाधि मिलने के उपरान्त उसके ऊलजलूल कामों की संख्या और भी बढ़ने लगी।

एक बार श्यामलाल पंडित को खाज हो गई। उसने सोचा कि उसे कोढ़ हो गया है। कोढ़ किस उपाय से दूर होता है यह जानने के लिए वह सबसे पूछताछ करने लगा। आगे चलकर एक घटना में उसने ऐसी बुद्धिमत्ता दिखलाई कि उसको 'प्रमोशन' देकर उपाध्याय की उपाधि से विभूषित किया गया। जिस शीघ्रता के साथ उसकी बुद्धि का विकास हो रहा है उससे तो यही प्रतीत होता है कि वह शीघ्र ही महामहोपाध्याय की उपाधि प्राप्त कर लेगा!

यहाँ एक और भी मजेदार व्यक्ति है। उसका नाम है "इयाकांया"। उसका आदि निवास-स्थान मद्रास अंचल में है। लगभग आज से चालीस वर्ष पूर्व, जब अंग्रेजों ने उत्तरी बर्मा पर अधिकार किया था, उस समय वह अंग्रेजों के साथ इस देश में आया था। इस समय उसकी उम्र करीब ६० वर्ष की है। उसने तीन विवाह किए थे। वह जैसा लम्बा-चौड़ा है वैसा ही विशाल उसका उदर भी है। उसकी भोजन में बहुत रुचि है। उसके लिए संसार में पेट भरना ही सबसे बड़ा सत्य है। यह बात वह अपने मन में भली भाँति जानता है। ऐसी कौनसी भाषा है जो वह नहीं जानता? आजकल जो भाषा वह बोलता है, वह कारूँगी (एक मद्रासी भाषा), हिन्दुस्तानी और बर्मी भाषा की खिचड़ी है। वह कोई भी भाषा अच्छी तरह नहीं बोल सकता इसीलिए उसको बंगालियों का सेवाकार्य दिया गया था। हम उसकी बात भाषा की अपेक्षा उसकी भावभंगियों से अधिक समझते हैं। उसमें एक और भी महत्वपूर्ण गुण यह है कि वह कोई भी नाम सही नहीं ले सकता। "भोगसिंह" न कह कर वह कहता है "वुसिं", कृपाराम के स्थान पर वह कहता है "त्रिपदराजु", सुभाष बाबू को कहता है "सर्वन बाबू", "विपिन बाबू" के स्थान पर "गोविन बाबू" आदि। उसकी भाषा का एक उदाहरण देता हूँ—त्रिपदराजु चला गया सीदा—अर्थ है कृपाराम चला गया। इसमें चला गया

हिन्दी भाषा का है, "सीदे" बर्मी बोली है। इयाकांया को सदैव इस बात का भय रहता है कि हम लोग किसी दिन चले जाएँगे तब उसको खाने-पीने में कुछ असुविधा होगी।

यदि हम सामूहिक रूप से समाचार पढ़ने बैठते हैं तो उसकी आत्मा पिंजरे से तुरन्त भागने का उपक्रम करने लगती है। आड़ में होते ही वह पूछता है—"बाबू बेंगला चला गया।" अर्थात् बाबू क्या बंगाल देश चले जाओगे? उत्तर में "नहीं" सुनकर वह आश्वस्त होता है। फिर कहता है, "बाबू बेंगला चला गया बहुत काउंडे"—अर्थ यह है कि बाबू लोगों के बंगाल चले जाने पर बहुत अच्छा होगा। "काउंडे" बर्मी शब्द है जिसका अर्थ है "भला है।"

जाने दो, एक ही दिन में सारी कहानी समाप्त कर देने से काम नहीं चलेगा। पलि कैसी है? वैद्यक औषधि सेवन करने से क्या कुछ लाभ हुआ? कहा नहीं जा सकता लाभ स्थायी होगा या नहीं। बीच में जुकाम बुखार हो गया था, अब ठीक हूँ। आप सबके कैसे हाल-चाल हैं? मेरा प्रणाम स्वीकार हो। इति।

सुभाष

९३*

सैन्सर द्वारा निरीक्षण एवं पास
किया हुआ।
ह० अस्पष्ट
१–२–२६
डी० आई० जी०, आई० बी०,
सी० आई० डी०, बंगाल

माँडले जेल
(द्वारा डी० आई० जी०, आई० बी०,
सी० आई० डी० (बंगाल)
१३, एलिसियम रो, कलकत्ता)
२३–१–२६

श्रीचरणेषु,

माँ, बहुत दिन से आपका कोई समाचार नहीं मिला। दो-तीन दिन पूर्व मँझले दादा के पत्र द्वारा आपके सम्बन्ध में कुछ बातें ज्ञात हुई थीं। बहुत दिन से आपको पत्र लिखने की इच्छा थी। उत्तर-प्राप्ति

* श्रीमती वासन्ती देवी के नाम।

की इच्छा से नहीं, यद्यपि उत्तर मिलने पर बहुत प्रसन्नता होगी। सम्भवत: पत्र लिखने से मन हल्का हो जाए, इसी लिए लिखने की इच्छा हो रही थी। कुछ दिन पूर्व आपके समाचार जानने के लिए ही हलदार को पत्र लिखा था। उन्होंने उत्तर भी दिया था किन्तु दुर्भाग्य से वह पत्र पुलिस द्वारा रोक लिया गया। न जाने, आपके समाचार पाने के लिए मेरा मन इतना व्याकुल क्यों रहता है ?

एक बार मेरे मन में आया था कि आपसे मिलने की अनुमति के लिए सरकार के पास प्रार्थना-पत्र भेजूँ। राजबन्दियों को आत्मीय स्वजनों से मिलने दिया जाता है ; यहाँ तक कि कई को तो पाँच-सात दिन तक घर में रहने तक दिया गया था। तो भी बाद में सोचकर देखा कि इससे कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि मुझे विश्वास नहीं होता कि मेरा ऐसा सौभाग्य होगा। प्रार्थना करना निष्फल होगा और लाभ की आशा में मन अधिक व्याकुल रहेगा। इस प्रकार वर्तमान स्थिति के विरुद्ध व्यर्थ ही प्रयत्न करना पड़ेगा। यही सोचकर प्रार्थना-पत्र देने की बात मन से निकाल दी है।

आप बहुत दुर्बल हो गई हैं और आपका स्वास्थ्य भी बिगड़ गया है, यह जानकर बड़ी चिन्ता हुई। हम इतने विवश हैं कि कुछ कर भी नहीं सकते। हमारे भाग्य में क्या बदा है यह भी नहीं जानते। आपसे न जाने मेरा मन कितनी बातें करना चाहता है, कहने के लिए कितनी ही बातें हैं, परन्तु कहने का समय अभी नहीं आया। यह पत्र भी बहुत दुविधा के उपरान्त लिखने बैठा हूँ क्योंकि यह पत्र दूसरों के हाथों में से होकर जाएगा।

समाचार-पत्रों में आपका कांग्रेस में दिया हुआ भाषण पढ़ा। उन करुणापूर्ण बातों ने मेरे मर्मस्थल को किस प्रकार स्पर्श किया है यह मैं बता नहीं सकता। अपनी पर्वत के समान विशाल विपत्ति और दुःख को दूर रखकर जो व्यक्ति दूसरों के लिए आँसू बहाते हैं उनके प्रति लोग कृतज्ञ हुए बिना रह नहीं सकते। यदि कोई दूसरा व्यक्ति यह बातें कहता तब भी मैं कृतज्ञ होता और कृतज्ञता प्रकट करता, परन्तु यहाँ कृतज्ञता प्रकट करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि कृतज्ञता प्रकट करने योग्य सम्बन्ध ही नहीं है। आपके हृदय की विशालता का परिचय पाये बिना भला देशवासी आपको 'माँ' कहकर क्यों पुकारते ! जिन्हें माँ कहा जाता है, क्या उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट की जाती है ? यदि माँ का हृदय ही अपनी सन्तान के लिए नहीं रोयेगा तो फिर किसका हृदय रोयेगा ? कृतज्ञता प्रकट करने से

क्या माँ-बेटे के सम्बन्ध का अपमान नहीं होता ? मैं आशा करता हूँ कि आप अपनी समस्त विपत्तियों और शोक में यह कभी नहीं भूलेंगी कि बंगाल की सन्तानें आपको माँ कहती हैं। यह बात स्मरण रहने से सम्भवत: आपको कुछ सान्त्वना मिले। उन्होंने असहाय और अशक्त होते हुए भी आपकी विपदाओं को अपनी विपदा माना है।

आज आपका धैर्य और आपकी सहिष्णुता आपके सब देशवासियों को तथा हम सबको, धैर्य और सहिष्णुता की शिक्षा दे रहे हैं। यदि आप इतना सहन कर सकती हैं तो क्या हम उसका कुछ अंश भी सहन नहीं कर सकते ? आशीर्वाद दीजिए, कितनी भी बड़ी विपत्ति क्यों न आए उसे सहन करने की शक्ति हमें प्राप्त हो। भगवान की कृपा से आज तक यह शक्ति प्राप्त करता रहा हूँ, चिरकाल तक यह शक्ति प्राप्त होती रहे, इससे बड़ी प्रार्थना मेरे जीवन में और क्या हो सकती है ?

और क्या लिखूँ ? पता नहीं क्या लिखने बैठा था और क्या लिख गया। इति

आपका सेवक
सुभाष

श्रीमती बासन्ती देवी
द्वारा, न्यायमूर्ति श्री पी० आर० दास,
पटना।

९४*

माँडले जेल
(१९२६)

आपने जो कुछ लिखा है वह सत्य है। शुद्ध मन से कार्य करने वालों का अत्यधिक अभाव है। जैसे साधन जुट पायें उन्हें लेकर ही काम करना चाहिए। जिस प्रकार जीवन दिए बिना जीवन नहीं मिलता, ठीक उसी प्रकार दिए बिना प्रतिदान में प्रेम नहीं मिलता। उसी प्रकार स्वयम् मनुष्य बने बिना दूसरों को मनुष्य भी नहीं बनाया जा सकता।

राजनीति की धारा शनैः शनैः जिस प्रकार पंकिल होती जा रही

* श्री हरिचरण बागची के नाम तीन पत्र।

है, उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि कम से कम थोड़े दिन के लिए तो राजनीति से देश का कोई लाभ नहीं होगा। सत्य और त्याग के आदर्श राजनीति के क्षेत्र में जितनी जल्दी लोप होते हैं, राजनीति की कार्य-शक्ति का उतनी ही शीघ्रता से ह्रास होता है। राजनीतिक आन्दोलन रूपी सरिता की धारा कभी स्वच्छ रहती है, तो कभी पंकिल ; सभी देशों में ऐसा होता है। बंगाल की राजनीतिक स्थिति कैसी भी क्यों न हो तुम उस ओर ध्यान न देकर सेवाकार्य में रत रहो।

* * *

तुम्हारे मन की वर्तमान अशान्ति का क्या कारण है, चाहे यह बात तुम्हें मालूम न हो, परन्तु मुझे उसका ज्ञान है। केवल काम करने से ही आत्म-विकास सम्भव नहीं। दैनिक कार्यों के साथ-साथ, लिखने-पढ़ने और ध्यान-धारणा की भी आवश्यकता पड़ती है। किसी कार्य में सफलता अथवा असफलता से जो अहंकार एवं निराशा मिलती है, उनका उन्मूलन करके, मनुष्य को संयत बनाने के लिए, अध्ययन एवं मनन ही एकमात्र उपाय है। मनुष्य में तभी आन्तरिक अनुशासन आ सकता है। आन्तरिक संयम न होने पर बाह्य संयम स्थायी नहीं हो सकता। नियमित व्यायाम से जिस प्रकार शरीर का विकास होता है ठीक उसी प्रकार नियमित साधना से सद्वृत्तियों का उद्भव और वासनाओं का नाश होता है। साधना के दो उद्देश्य हैं—(१) वासनाओं का नाश करना, विशेषत: काम, भय और स्वार्थपरता पर विजय प्राप्त करना। (२) प्रेम, भक्ति, त्याग, बुद्धि आदि का विकास करना।

काम पर विजय प्राप्त करने का प्रमुख उपाय है सब स्त्रियों को मातृरूप में देखना और स्त्री मूर्तियों जैसे दुर्गा, काली भवानी का चिन्तन करना। स्त्री-मूर्ति में भगवान या गुरु का चिन्तन करने से मनुष्य शनैः शनैः सब स्त्रियों में भगवान के दर्शन करना सीखता है। उस अवस्था में पहुँचने पर मनुष्य निष्काम हो जाता है। इसीलिए महाशक्ति को रूप देते समय हमारे पूर्वजों ने स्त्री मूर्ति की कल्पना की है। व्यावहारिक जीवन में सब स्त्रियों को माँ के रूप में सोचते-सोचते मन शनैः शनैः पवित्र हो जाता है।

भक्ति और प्रेम से मनुष्य नि:स्वार्थी बन जाता है। मनुष्य के मन में जब किसी व्यक्ति के प्रति श्रद्धा बढ़ती है तब उसी अनुपात में स्वार्थपरता घट जाती है। मनुष्य प्रयास करने पर प्रेम और भक्ति को

बढ़ा सकता है और उसके फलस्वरूप स्वार्थपरता भी घटा सकता है। प्रेम करने से मन शनैः शनैः सब प्रकार की संकीर्णताओं को छोड़कर विश्व में लीन हो जाता है। प्रेम, भक्ति अथवा श्रद्धा के लिए किसी भी वस्तु अथवा विषय का ध्यान एवं चिन्तन करना आवश्यक है। मनुष्य जैसा चिन्तन करता है वैसा ही स्वयं बन जाता है। जो अपने आपको दुर्बल और पापी समझता है वह क्रमशः दुर्बल और पापी हो जाता है। जो अपने आपको पवित्र और शक्तिशाली मानता है वह पवित्र और शक्तिशाली बन जाता है। मनुष्य की जिस प्रकार की भावना होती है उसी प्रकार की सिद्धि उसे प्राप्त होती है।

भय पर विजय प्राप्त करने का उपाय है शक्ति, विशेष रूप से दुर्गा, काली, आदिशक्ति की साधना करना। शक्ति के किसी भी रूप की मन में कल्पना करके प्रार्थना करने और उनके चरणों में मन की दुर्बलता और मलिनता को अर्पित कर देने से मनुष्य शक्ति प्राप्त कर सकता है। हमारे भीतर अनन्त शक्ति निहित है। उस शक्ति का बोध करना पड़ेगा। पूजा का उद्देश्य है मन में शक्ति का बोध करना। प्रतिदिन शक्ति रूप का ध्यान करके शक्ति से प्रार्थना करना और पाँचों इन्द्रियों तथा सभी शत्रुओं को उनके चरणों में समर्पित करना। पंचप्रदीप का अर्थ है पंचेन्द्रियाँ। इन पाँच इन्द्रियों की सहायता से माता की पूजा होती है। हमारे आँखें हैं इस कारण हम धूप, गुग्गुल आदि सुगन्धित पदार्थों से पूजा करते हैं। बलि का अर्थ है—वासनाओं की बलि देना, मैथुन भावना की विशेष रूप से बलि देना।

साधना का लक्ष्य है एक ओर तो वासनाओं का नाश करना और दूसरी ओर सद्वृत्तियों का विकास करना। वासनाओं के नष्ट होते ही दिव्य भावों से हृदय परिपूर्ण हो जायेगा और हृदय में दिव्य भावों के प्रवेश करते ही समस्त दुर्बलतायें भाग जाएँगी।

प्रतिदिन (सम्भव हो तो) दोनों समय इस प्रकार का ध्यान करना चाहिये। कुछ दिन ध्यान करने से शनैः शनैः शक्ति प्राप्त होगी, हृदय में शान्ति भी अनुभव करोगे।

इस समय स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें पढ़ सकते हो। उनकी पुस्तकों में 'पत्रावली' और उनके भाषण विशेष रूप से शिक्षाप्रद हैं। 'भारत में विवेकानन्द' नामक पुस्तक में सम्भवतः यह सब मिल जाएगा। सम्भवतः पृथक् पुस्तकें भी मिलती हों। पत्रावली और भाषण न पढ़कर अन्य पुस्तकें पढ़ना ठीक नहीं है। धर्म का दर्शन, ज्ञानयोग या इसी प्रकार

की पुस्तकों को पहले मत पढ़ना, बाद में पढ़ना। साथ में 'रामकृष्ण कथामृत' पढ़ सकते हो। रवि बाबू की बहुत सी कविताओं से बहुत प्रेरणा मिलती है। द्विजेन्द्र लाल राय की बहुत सी पुस्तकें हैं—जैसे 'मेवाड़ पतन', 'दुर्गादास', जिन्हें पढ़ने से बहुत शक्ति प्राप्त होती है। बंकिम बाबू और रमेश दत्त के ऐतिहासिक उपन्यास भी बहुत शिक्षाप्रद हैं। नवीन सेन का 'पलासी का युद्ध' भी पढ़ सकते हो। 'शिखेर बलिदान' (सम्भवतः श्रीमती कुमुदिनी वसु द्वारा लिखित) भी एक अच्छी पुस्तक है। विक्टर ह्यूगो का 'ला मिज़रेबल्स' पढ़ना (सम्भवतः लाइब्रेरी में होगी), उससे बहुत शिक्षा मिलेगी। शीघ्रता में इस समय अधिक नाम स्मरण नहीं आ रहे। मैं अवसर के अनुकूल सोचकर पुस्तकों की एक सूची बनाकर भेज दूँगा। इति।

९५

माँडले जेल
(१९२६)

स्वास्थ्य की बहतरी के लिए यदि तुम प्रतिदिन थोड़ा व्यायाम करो तो तुम्हें लाभ होगा। मुलर की "माई सिस्टम" नामक पुस्तक पढ़कर यदि उसके निर्देशानुसार व्यायाम करोगे तो ठीक रहेगा। मैं स्वयं कभी-कभी उसी के अनुसार व्यायाम करता हूँ, मुझे उससे लाभ भी हुआ है। मुलर के व्यायामों की विशेषता है—(१) कुछ भी व्यय नहीं होता और व्यायाम के लिए बहुत कम स्थान की आवश्यकता पड़ती है। (२) व्यायाम करने में अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता और अतिरिक्त श्रम के कारण किसी प्रकार की हानि की आशंका भी नहीं होती। (३) केवल अंग विशेष को न चलाकर सम्पूर्ण शरीर की मांसपेशियों को चलाना पड़ता है। (४) पाचन शक्ति बढ़ती है।

मेरे विचार से हमारे देश में—विशेष रूप से छात्र समाज में—यदि मुलर के व्यायामों का अधिक प्रचलन हो जाय तो अधिक लाभ हो सकता है।

दैनिक कार्य करके सन्तुष्ट रहने से ही हमारा काम नहीं चलेगा। इन सब कार्यों का लक्ष्य है आत्मविश्वास उत्पन्न करना, इस बात को नहीं

भूलना चाहिए। काम ही जीवन का परम लक्ष्य नहीं है। काम करते हुए चरित्र को विकसित करना पड़ेगा और जीवन का सर्वाङ्गीण विकास भी करना होगा। मनुष्य को अपने व्यक्तित्व और प्रकृति के अनुसार वैशिष्ट्य-लाभ अवश्य करना पड़ेगा। परन्तु इस वैशिष्ट्य (विशेषज्ञता) से सर्वाङ्गीण विकास भी होना चाहिए। जिस मनुष्य की सर्वाङ्गीण उन्नति नहीं हुई उसे कभी सन्तोष नहीं मिलता। उसे मन में सदैव एक शून्यता या अभाव का बोध होता रहता है। इस सर्वाङ्गीण विकास के लिए निम्नलिखित कार्य करने चाहियें—(१) व्यायाम, (२) नियमित अध्ययन, (३) दैनिक चिन्तन या ध्यान करना। काम के आधिक्य के कारण कभी-कभी इस ओर ध्यान नहीं जाता या ध्यान रहने पर भी समय नहीं मिलता, परन्तु काम का बोझ कम होते ही फिर इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। दैनिक कार्य करके निश्चिन्त होने से ही काम नहीं चलेगा। इस काम के बीच में व्यायाम, लिखने-पढ़ने और ध्यान-धारणा के लिए भी समय निकाल लेना चाहिए। इन अत्यन्त आवश्यक तीन कामों के लिए यदि मनुष्य कम से कम डेढ़ घण्टे या दो घण्टे का समय दे सके तो बहुत लाभ हो सकता है। मुलर महोदय का कहना है कि यदि कोई मनुष्य उनके निर्देशानुसार प्रतिदिन केवल पन्द्रह मिनट नियमित रूप से व्यायाम करे तो पर्याप्त है। फिर यदि मनुष्य निर्जन में पन्द्रह मिनट चिन्तन या ध्यान करे तो कुल आधा घण्टा समय लगेगा। इसके साथ यदि एक घण्टा लिखने-पढ़ने के लिए और रखा जाए—इसमें अखबार पढ़ना सम्मिलित नहीं है, उसके लिए अलग समय चाहिए—तो डेढ़ घण्टा प्रतिदिन लगेगा। कम से कम इस डेढ़ घण्टे के समय का तो नियम ही बना लेना चाहिए। इसके उपरान्त "अधिकन्तु न दोषाय"—जितना अधिक समय दे सकते हो उतना ही उत्तम है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सुविधा-नुसार यह कार्य करना चाहिये। ध्यान-धारणा के सम्बन्ध में सम्भवतः पहले पत्र में मैंने कुछ लिखा था, इसीलिए उसके सम्बन्ध में अब और कुछ नहीं लिख रहा। पहले तो उन पुस्तकों के नाम इस पत्र में दे रहा हूँ जो कि समिति की लाइब्रेरी में मिल जाएँगी, बाद में अन्य पुस्तकों के नाम हैं।

(क) धर्म सम्बन्धी—

(१) श्री रामकृष्ण-कथामृत (२) ब्रह्मचर्य—सुरेन्द्र भट्टाचार्य, वही—रमेश चक्रवर्ती, वही—फकिर दे (३) स्वामी-शिष्य संवाद—शरत् चक्रवर्ती, (४) पत्रावली—विवेकानन्द, (५) प्राच्य और पाश्चात्य—विवेकानन्द, (६) वक्तृतावली—विवेकानन्द (७) भाववार कथा—

वही (८) भारतेर साधना—स्वामी प्रज्ञानन्द, (९) शिकागो वक्तृता—स्वामी विवेकानन्द।

(ख) साहित्य, कविता, इतिहास आदि—

(१) देशबन्धु ग्रन्थावली (बसुमती संस्करण), (२) बाँगलार रूप—गिरिजाशंकर राय चौधरी, (३) बंकिम ग्रन्थावली, (४) नवीन सेन का कुरुक्षेत्र, प्रभास, रैवतक और पलाशीर युद्ध, (५) योगेन्द्र की 'ग्रन्थावली' (बसुमती संस्करण), (६) रवि ठाकुर की 'कथा व कहानी', 'चयनिका', 'गीतांजलि', 'घरे बाहिरे', 'गोरा', (७) भूदेव बाबू के 'सामाजिक प्रबन्ध' व 'पारिवारिक प्रबन्ध', (८) डी० एल० राय के 'दुर्गादास', 'मेवार पतन', 'राणा प्रताप', (९) 'छत्रपति शिवाजी'—सत्यचरण शास्त्री, (१०) 'शिखेर बलिदान'—कुमुदिनी वसु, (११) राजनारायण वसु का 'सेकाल व एकाल', (१२) सत्येन दत्त का 'कुहु' व 'मेका' (कविता ग्रन्थ), (१३) महर्षि देवेन्द्रनाथ का 'आत्मजीवन-चरित्र', (१४) राजस्थान (बसुमती संस्करण), (१५) 'नव्य जापान'—मन्मथ घोष, (१६) 'सिपाही युद्धेर इतिहास'—रजनीकान्त गुप्त, (१७) उपेन बाबू का 'निर्वासितेर आत्मकथा' व अन्यान्य पुस्तकें, (१८) कर्नल सुरेश विश्वास—उपेन्द्रकृष्ण वन्द्योपाध्याय। शिशुपाठ्य तीन आने वाले संस्करण में भारत के अनेक महापुरुषों की छोटी-छोटी जीवनियाँ मिलेंगी।

पुस्तकों की यह सूची पर्याप्त है। कम से कम एक वर्ष की सामग्री इनमें मिल जायेगी। अब प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ कहता हूँ।

प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि प्राथमिक शिक्षा में नवीन तथ्य सिखाने का प्रयत्न आवश्यक है। उच्च शिक्षा में नवीन तथ्य सिखाने के साथ ही तर्क-शक्ति का विकास भी होना आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा में इन्द्रिय शक्ति पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है। इसका कारण यह है कि उस समय चिन्तन-शक्ति और स्मरण-शक्ति भली भाँति जागती हैं। अतः जिस विषय के सम्बन्ध में भी बताया जाए—जैसे गौ, घोड़ा, फल, फूल, तो इन पदार्थों को नेत्रों के सामने रखे बिना सिखाना कठिन होगा। उच्च शिक्षा में ऐसे विषय या वस्तुओं के सम्बन्ध में पढ़ाया जा सकता है जिन्हें छात्रों ने कभी नहीं देखा और बिना देखे ही छात्र चिन्तन शक्ति के बल पर उसे समझ लेते हैं। एक बात और है, सिखाने के समय जितनी अधिक इन्द्रिय शक्ति की सहायता ली जाती है उतनी ही सरलता से सिखाना सम्भव होता है।

बाँसुरी या किसी बाजे के सम्बन्ध में कुछ समझाना चाहो तो यदि छात्र वस्तु को नेत्रों से देख ले, हाथ से स्पर्श कर ले और बजाकर उसकी ध्वनि अपने कानों से सुन ले, तो उस विषय में उसे शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। इसका कारण यही है कि दृष्टि शक्ति, स्पर्श शक्ति तथा श्रवण शक्ति तीनों ही एक साथ काम में लग जाती हैं। गोद का शिशु किसी पदार्थ को देखकर स्पर्श करना चाहता है और उसे मुँह में डालना चाहता है, इसका कारण यह है कि शिशु सब इन्द्रियों द्वारा पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार प्रकृति के नियम का अनुसरण करके यदि हम सभी इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकें तो हमें शीघ्र ही सफलता मिल सकती है। गणित सिखाते समय यदि हम केवल सिद्धान्त कंठस्थ न कराकर कौड़ी, संगमरमर या ईंट-पत्थरों के टुकड़ों से जोड़ना, घटाना, गुणा करना, भाग देना आदि का उदाहरण दें तो बच्चे शीघ्रता से सीख सकते हैं।

एक महत्वपूर्ण बात और है कि केवल मानसिक शिक्षा न देकर शिल्प-शिक्षा की व्यवस्था भी साथ-साथ करनी चाहिए। पुतला बनाना, मिट्टी से मानचित्र बनाना, फोटो खींचना, रंग का प्रयोग, गाना सीखना, इन सबकी व्यवस्था करनी चाहिए। इससे न केवल सर्वाङ्गीण शिक्षा मिलेगी अपितु साथ ही साथ लिखने-पढ़ने की भी विशेष उन्नति होगी। कई प्रकार की विद्या सीखने से लड़कों की बुद्धि बढ़ती है, लिखने-पढ़ने में मन लगता है। लिखने-पढ़ने का नाम सुनकर भय नहीं लगता। विभिन्न वस्तुएँ न दिखाकर केवल रटाते हुए लिखाई-पढ़ाई सिखाना प्रारम्भ कर देने से तो उस लिखाई-पढ़ाई में आनन्द नहीं आता। बच्चा लिखाई-पढ़ाई से भयभीत हो जाता है और उसकी बुद्धि का विकास नहीं होता। शिशु के आँख, कान, नाक, हाथ और जिह्वा यदि उपभोग की ओर ले जाने वाली कोई वस्तु प्राप्त करते हैं तो सब इन्द्रियाँ जाग्रत हो जाती हैं, परिणामस्वरूप बुद्धि भी जाग्रत हो जाती है और ज्ञानवृद्धि के कारण पढ़ाई-लिखाई में उसको आनन्द आने लगता है। मानसिक प्रशिक्षण के अभाव में शिक्षा के मूल में ही त्रुटि रह जाती है। अपने हाथों से कोई वस्तु बनाने में जिस प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है उस प्रकार का आनन्द संसार में बहुत ही कम मिल पाता है। सृष्टि आनन्द से परिपूर्ण है। सृजन के इस आनन्द को बच्चे थोड़ी उम्र में ही महसूस करने लगते हैं। जब कि वे कोई भी वस्तु बनाते हैं चाहे वह बगीचे में बीज बोकर पौधे उगाना हो, या अपने हाथों से पुतला बनाना हो; किसी भी वस्तु की नई सृष्टि करके

बच्चे स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करते हैं। जिन उपायों से छात्र इस आनन्द का किशोर वय में ही उपभोग कर सकें, उनका प्रबन्ध अवश्य होना चाहिए। इससे उन्हें मौलिकता तथा व्यक्तित्व के विकास में सुविधा प्राप्त होगी। वह पढ़ाई-लिखाई से भयभीत न होकर आनन्द प्राप्त करना सीखेंगे। विलायत के अधिकांश प्राथमिक स्कूलों में छात्र बागबानी का काम सीखते हैं, व्यायाम करते हैं, कवायद करते हैं, पढ़ाई के साथ-साथ खेल आदि में भी व्यस्त रहते हैं, गाना-बजाना सीखते हैं, कवायद करते हुए मार्गों पर दल बनाकर घूमते हैं, मिट्टी के खिलौने आदि बनाना सीखते हैं, कहानियों के द्वारा अनेक देशों की और अनेक विषयों की बातें सीखते हैं। कहानियों के माध्यम से शिक्षा देना सर्वाधिक लाभप्रद और आवश्यक है, इससे छात्रों को इस बात का अनुभव ही नहीं होता कि वे कुछ लिखना-पढ़ना भी सीख रहे हैं। वे तो यही समझते हैं कि कहानी सुन रहे हैं या खेल रहे हैं। प्रथम अवस्था में पाठ्य-पुस्तकों की कोई आवश्यकता नहीं है। जब पेड़-पौधे, फूल आदि के सम्बन्ध में बताओ तब उनके समक्ष यह सब रहने चाहिएँ। जब उन्हें आकाश और नक्षत्रों के सम्बन्ध में बताओ तब उन्हें खुले आकाश के नीचे ले जाकर सिखाना चाहिए। जो कुछ उन्हें सिखाओ वह उनके नेत्रों के समक्ष उपस्थित रहना चाहिए। जब भूगोल पढ़ाओ तब मानचित्र, ग्लोब आदि रहना चाहिए। जब इतिहास पढ़ाओ तब सुविधानुसार अजायबघर आदि स्थानों में ले जाना चाहिए। निर्धनों को शिक्षा देते समय संगीत, छपाई, चित्रकला, बागबानी आदि भी सिखलाये जाने चाहिएँ। यदि ऐसा न हुआ तो प्राथमिक शिक्षा एकदम व्यर्थ है। वस्तुओं का ज्ञान ही अधिक आवश्यक है, पाठ कंठस्थ करना नहीं।

मैंने प्राथमिक शिक्षा के सिद्धान्तों या नीति के सम्बन्ध में ही कहा है, पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में जानबूझकर कुछ नहीं कहा। पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता बहुत कम है और जो भी पाठ्य-पुस्तकें हों उनका महत्व भी कम है। यदि शिक्षक योग्य नहीं तो प्राथमिक शिक्षा सफल नहीं हो सकती। सर्वप्रथम तो शिक्षक को प्राथमिक शिक्षा के मौलिक सिद्धान्त समझने चाहियें। तभी वह नई प्रणाली से शिक्षा प्रदान कर सकता है। शिक्षक को अपने हृदय में प्रेम और सहानुभूति को स्थान देना होगा। यह आवश्यक है कि वह छात्रों के दृष्टिकोण से ही सब वस्तुओं को देखे। यदि शिक्षक अपनी कल्पना छात्रों की स्थिति में नहीं कर सकता तो वह किस प्रकार छात्रों की कठिनाइयों और भ्रान्तियों को

समझ सकता है। इसी कारण अध्यापक का व्यक्तित्व सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण होता है। शिक्षा के प्रमुख उपादान तीन हैं—(१) शिक्षक का व्यक्तित्व, (२) शिक्षा-प्रणाली, (३) शिक्षा के विषय और पाठ्य-पुस्तकें। यदि शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं है तो किसी भी प्रकार की शिक्षा सम्भव नहीं हो सकती। चरित्रवान, व्यक्तित्व सम्पन्न शिक्षक मिल जाए तभी शिक्षा की प्रणाली निर्धारित हो सकती है। फिर तो किसी भी विषय की पुस्तक सरलता से पढ़ाई जा सकती है।

* * *

आशा है आप सब सकुशल होंगे। इति।

९६

माँडले जेल
६–२–२६

तुम्हारा पत्र यथा समय मिल गया था। उत्तर देने में मुझे विलम्ब हुआ। इसके लिए तुम दुःखी न होना। आशा है कि तुम हर प्रकार की मानसिक अशान्ति से दूर रहकर, प्रसन्न भाव के साथ अपना कर्त्तव्य पालन करते रहोगे। एक स्थल पर मिल्टन ने लिखा है—मस्तिष्क का अपना एक विशिष्ट महत्व है, यह स्वर्ग को नरक और नरक को स्वर्ग बना सकता है। यह बात तो सत्य है कि इस तथ्य को हर स्थिति में लाभदायक नहीं माना जा सकता, परन्तु आदर्श को प्रत्येक क्षण सामने न रखने से जीवन में प्रगति करना असम्भव है। जीवन की कोई भी अवस्था अशान्ति से रहित नहीं होती। इस तथ्य को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

मैं अपनी कारा-मुक्ति के सम्बन्ध में अब अधिक नहीं सोचता, तुम्हें भी अधिक सोचने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर की अनुकम्पा से मुझे यहाँ मानसिक शान्ति प्राप्त हुई है। आवश्यकता पड़ने पर तो मैं यहाँ सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। इस प्रकार की शक्ति प्राप्त करने की मेरी इच्छा है। मेरी शुभ कामना से तो कुछ होता नहीं, परन्तु विश्व जननी की शुभकामना और आशीष तुम्हारी सदैव रक्षा करें

यही मेरी कामना है। मैं और क्या लिखूँ, तुम विश्वजननी में विश्वास रक्खो, उनके अनुग्रह से तुम समस्त विपदाओं और मोह-नद के पार उतर जाओगे। यदि हृदय में सुख और शान्ति नहीं है तो किसी भी दशा में (बाह्य अभाव दूर हो जाने पर भी) मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। इस कारण सब कार्य करते हुए विश्व जननी के चरणों में हृदय को अर्पित करना चाहिए। इति।

९७*

श्री श्री दुर्गा सहाय

माँडले जेल
१२–२–२६

पूजनीया मँझली भाभी,

कुछ दिन पूर्व आपका पत्र मिला था। मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि अशोक ने इतना उत्तम कातना सीख लिया है। कह नहीं सकता कि यह बात सुनकर मुझे विस्मय क्यों नहीं हुआ? वास्तव में सूत कातना इतना सरल है कि मेरे विचार से किशोर वय के लड़के-लड़कियाँ भी सरलता से सूत कात सकते हैं। आसाम के अंचल में एक रीति प्रचलित है कि कन्या को उत्तम सूत कातना अवश्य आना चाहिए। यह उसी प्रकार की प्रथा है जैसे कि हमारे यहाँ उत्तम भोजन बनाने की प्रथा है। गोरा और अरुणा आदि सूत क्यों नहीं काततीं? उन्हें समय तो अवश्य ही मिलता होगा। मेरे विचार से यदि कोई अपने हाथ के काते हुए सूत का वस्त्र अपनी आँखों से देखे तो उसका सूत कातने का उत्साह अवश्य ही बहुत बढ़ जाएगा। जिस प्रकार अपने हाथों से बनाया हुआ भोजन स्वादिष्ट लगता है उसी प्रकार अपने हाथों से काते हुए सूत से बना कुर्ता तथा अन्य वस्त्र भी अवश्य ही बहुत पसन्द आयेंगे।

आजकल मेरे पत्र प्रायः बिना काट-छाँट के अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँचते। ईश्वर की इच्छा कुछ ऐसी ही है। सम्भवतः आप इसका अभिप्राय समझ गई होंगी।

* श्रीमती विभावती वसु के नाम दो पत्र।

आपका पत्र मिलने से पूव ही यहाँ कबूतरों का दड़बा बन गया था। दुर्भाग्य से इसी दौरान में एक कबूतर को एक बिलाव खा गया। बिलाव के अपराध पर विचार करने के लिए यहाँ कोर्ट बिठलाया गया। खाना डालकर और रात को जाल बिछाकर बिलाव को गिरफ्तार भी किया गया। पहले तो यह निश्चित किया गया कि बिलाव को फाँसी दी जानी चाहिए, क्योंकि मनुष्य की हत्या करने पर मनुष्य को फाँसी दी जाती है। बाद में सोचा गया कि फाँसी देने से किसी को कोई लाभ नहीं होगा। अतः बिल्लियों के भोजन की ही व्यवस्था होनी चाहिए। एक महाशय ने तो यहाँ तक कहा कि इस देश में बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो संकट पड़ने पर बिल्ली को भी खाने के लिए तैयार हैं, अर्थात् इस प्रकार के कैदी भी यहाँ जेल में हैं। यदि उन कैदियों को मांस, मछली न मिले तो वे बिल्ली का मांस भी खाने को तैयार हो सकते हैं। इन बातों को सुनकर सब व्यक्तियों के मन में करुणा-भाव जाग उठा और बिलाव को बोरे में बन्द करके वनवास देने का आदेश दिया गया।

लगभग एक माह तक मुर्गी ने अण्डे सेये तब कहीं अण्डों से बच्चे निकले। इयंका मुर्गियों की देखभाल करने के काम पर नियुक्त किया गया था। आरम्भ से ही इयंका ने अण्डे गायब करने शुरू कर दिये। अण्डे तो होते थे पाँच-छः और हमारे पास आने लगे दो-तीन, शेष अण्डे उसकी कृपा से गायब होते रहे। जब वह पकड़ा गया तो विवश हो गया। यद्यपि उसकी उम्र ७१ वर्ष की है फिर भी उसका उदर विशाल है। बहुत से लोग तो कहते हैं कि वह गणेश जी का अवतार है, क्योंकि उसका पेट उन्हीं के पेट की भाँति विशाल है। इसके बाद इयंका की कृपा से प्रतिदिन मुर्गी के बच्चे मरने प्रारम्भ हो गए। दस बारह में से केवल तीन जीवित रह गए हैं। सम्भवतः अब यह नहीं मरेंगे। एक दिन असावधानी के कारण एक बच्चे को चील उड़ा ले गई। प्रातःकाल जब भेद खुला तब इयंका साधु बनकर बोला "मुसीतु" अर्थात् वह तो था ही नहीं। बहुत धमकाने के उपरान्त उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया।

वास्तव में इयंका बुरा मनुष्य नहीं है। उसने तो समझ रखा है कि जगत् में सत्य का सार है—पेट। "तस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्टम्।" पेट भरने पर ही जगत् सन्तुष्ट होता है। अतः पेट के लिए कोई भी काम करने में वह किसी से पीछे नहीं रहता। वह बर्मी भाषा में बुद्ध भगवान का स्तवन भली भाँति कर लेता है, एक स्तवन उससे सुनकर मैंने भी

सीख लिया है। जब लौटूँगा तब आपको सुनाऊँगा।

बंगाल जेल से स्थानान्तरण करके इस जेल में चार कैदी हमारा काम करने के लिए लाये गए हैं परन्तु उनमें काम का मनुष्य केवल एक ही है। उसके ऊपर ही रसोई-घर का उत्तरदायित्व है। यहाँ अनेक प्रकार के मनुष्य दिखलाई पड़ते हैं, जिनसे आनन्द और शिक्षा दोनों ही मिलते हैं।

दो माह तक तो वैद्यक दवाओं के सेवन से मुझे बहुत लाभ हुआ था। सम्भवत: अब दवा बदलनी पड़ेगी क्योंकि विशेष लाभ दिखलाई नहीं पड़ रहा। यहाँ गर्मी आरम्भ हो गई है। गर्मी इस बार कुछ जल्दी पड़ना आरम्भ हो गई है। चलो जी, ये दिन भी बीत ही जाएँगे। मेरे पत्रों को सँभाल कर रखना और मँझले दादा के आने पर उन्हें दिखलाना।

आशा है कि वहाँ सब ठीक-ठाक होंगे। मैं मंझले दादा को लिख रहा हूँ कि लड़के-लड़कियों को चित्रांकन और संगीत सिखाने के लिए मास्टर रख लें। वह इस बात से सहमत होंगे या नहीं, यह मैं नहीं जानता। परन्तु मैं तो अपने जीवन में इन दोनों वस्तुओं का अभाव अनुभव करता हूँ। लड़के-लड़कियों के सुशिक्षित मिलने पर मुझे बड़ा संतोष होगा।

हमने भी यहाँ सरस्वती-पूजा की थी। पूजा के खर्च के सम्बन्ध में सरकार से हमारी खींचातानी चल रही है, दुर्गा-पूजा और सरस्वती-पूजा के रुपये अभी तक सरकार से नहीं मिले। मैं इस पत्र के साथ और भी कई काग़ज़ात भेज रहा हूँ, जिनसे ज्ञात हो जाएगा कि हमसे सम्बन्धित व्यय का भार बंगाल सरकार के ऊपर है, न कि बर्मा सरकार के ऊपर। बर्मा सरकार कहती है कि व्यय का भार बंगाल सरकार के ऊपर है और बंगाल कौन्सिल में सरकार की ओर से बताया गया है कि सब व्यय बर्मा सरकार वहन करती है। इन कागजों से ज्ञात हो जाएगा कि बंगाल सरकार ने वह व्यय देना अस्वीकार कर दिया है। इन कागजों के साथ दो प्रार्थना-पत्रों की प्रतिलिपियाँ भी भेज रहा हूँ। ये प्रार्थना-पत्र हमने बर्मा सरकार के पास भेजे थे। इति।

सुभाष

९८

श्री श्री दुर्गा सहाय

माँडले जेल
९–४–२६

पूजनीया भाभी जी,

यथा समय आपके दोनों पत्र मिल गये थे, परन्तु मैं आज तक उनका उत्तर न दे सका। इसके लिए क्षमा करें।

मेजदादा के भेजे हुए कंघा और दियासलाई मिल गए हैं। वह काफी अच्छे बने हैं। आशा है कि शनैः शनैः और भी बेहतर होते जावेंगे।

आजकल यहाँ बहुत गर्मी पड़ रही है। दिन में तो हम तली हुई झिगा मछली के समान हो जाते हैं, परन्तु रात को कुछ ठण्ड हो जाती है, इसीलिए नींद आ जाती है।

इस समय आयुर्वेदिक औषधि सेवन कर रहा हूँ। कुछ दिन सेवन करने के उपरान्त ही लाभ का पता लगेगा।

अशोक और अरुण द्वारा काते गये सूत से बनी हुई दो धोतियाँ मिलीं। अच्छी हैं। उसी पार्सल के एक बण्डल में पापड़ भी मिले। जिन्होंने सूत काता है उनके लिए भी इसी सूत के कपड़े या कुर्ते बनवाना। अपने ही सूत से बना हुआ वस्त्र पहन कर उनका उत्साह और भी अधिक बढ़ेगा।

जीवन का जब एक ढर्रा बँध जाता है तब कभी-कभी वैचित्र्य की आवश्यकता होती है। मैंने इस नूतनता के लिए ही कबूतर तथा अन्य पक्षी पाले हैं। कल हम एक तोता लाए हैं। अगले महीने एक मैना भी लायेंगे।

मेरी समझ में नहीं आया कि मैंने पत्र के साथ जो काग़ज़ात भेजे थे वह क्यों नहीं मिले। इस प्रकार की गड़बड़ कभी-कभी हो जाती है।

गोपाली की परीक्षा कैसी रही, उसका पूरा विवरण भेजना। आज-कल अशोक कौनसी कक्षा में पढ़ रहा है?

इस सप्ताह मैं मँझले दादा को पत्र नहीं लिख रहा हूँ। आजकल यह सोचता हूँ कि अब जेल पर तो हमारा स्थायी अधिकार हो ही गया है। ऐसा लगता है कि जेल से हमें कोई सरलता से नहीं भगा सकता।

आशा है कि आप सब सकुशल होंगे। पिताजी और माता जी कैसे हैं? मेरा प्रणाम स्वीकार हो। इति।

सुभाष

९९*

सेन्सर के बाद अनुमति
प्राप्त पत्र
२४–४–२५
डी० आई० जी०
आई० बी०, सी० आई० डी०,
बंगाल

द्वारा
डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०,
१३, एलीसियम रो,
कलकत्ता

माँडले जेल

प्रिय श्री वसु,

आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। सड़कों की प्रकाश व्यवस्था के सम्बन्ध में जो कुछ आपने लिखा है, उसे पढ़कर मुझे बड़ा अनुतोष प्राप्त हुआ। विशेष रूप से मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप इस मामले को पी० यू० समिति के सम्मुख प्रस्तुत करने जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इस विषय पर बहुत अच्छी तरह से विचार करेंगे। मुझे आशा है कि कारपोरेशन आसानी से सड़कों की प्रकाश व्यवस्था के म्युनिसिपलीकरण करने के विचार का परित्याग नहीं करेगा जब तक इसके विपरीत पर्याप्त कारण न हों (चाहे प्रकाश गैस द्वारा हो, चाहे विद्युत से)।† यदि आप आवश्यक समझें तो गजट के माध्यम से जनता की राय जान सकते हैं। यदि आपको इस कार्य के कोई विशेषज्ञ मिल जावें तो उनसे तो अवश्य ही सलाह ले लीजिए। यदि दुर्भाग्य से आपको यह कार्य किसी निजी संस्था को सौंपना ही पड़े तो ऐसी स्थिति में आप केवल इंग्लैण्ड में ही टैन्डरों के लिए विज्ञापन न निकालें अपितु योरुप महाद्वीप के अन्य देशों में भी इसे विज्ञापित करें। इस सब कार्य में पर्याप्त समय लगेगा। अतः इस विषय पर शीघ्रातिशीघ्र ही निर्णय लेना उचित है। यदि सड़कों के प्रकाश की व्यवस्था नगर-प्रशासन के हाथ में आ जाती है तो उस स्थिति में भी गौण उत्पादनों को

* श्री सन्तोषकुमार वसु के नाम यह पत्र १६–४–२६ को लिख कर समाप्त किया।

† आप पूरी तरह से प्रकाश अधीक्षक के प्राक्कलन पर ही निर्भर न रहें। आवश्यक समझें तो किसी स्वाधीन विशेषज्ञ की भी राय ले लें।

सुभाष

व्यापारिक कार्यों में प्रयोग करने की बात को दृष्टिच्युत मत कर देना।

मैं तो समस्त नई सड़कों पर—विशेष रूप से उन क्षेत्रों की सड़कों पर जो कारपोरेशन में सम्मिलित किये गए हैं—विद्युतीकरण की नीति का अनुमोदन करता हूँ। यदि हम कलकत्ता विद्युतपूर्ति संस्थान से विद्युत-करेंट खरीद कर केन्द्रीय कार्यालय, मार्केट आदि को प्रकाशित करें तो मेरे विचार से कोई विशेष लाभ नहीं होगा। जब तक खर्च कम न हो अथवा अधिक सुविधाएँ न प्रदान की जायें तब तक इस विभाग के कार्य-भार को बढ़ा देना कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं होगी, बल्कि इसका परिणाम तो यह होगा कि विद्युत अधीक्षक को वेतन-वृद्धि की माँग प्रस्तुत करने में और अधिक सहारा मिलेगा।

मैं समझता हूँ कि आवारा कुत्तों से मुक्ति प्राप्त करने की योजना अभी कार्यान्वित नहीं हुई होगी। अब क्या स्थिति है?

मुझे आशा है कि आप कोल्ड स्टोरेज की योजना का परित्याग आसानी से नहीं करेंगे। यदि आप आवश्यक समझें तो मछली, माँस एवं फलों के व्यापारियों से यह ज्ञात कर लें कि यहाँ कोल्ड स्टोरेज संयन्त्र लगाने से उन्हें कुछ लाभ भी होगा अथवा नहीं? यदि इससे उनको लाभ होता है तो हम कोल्ड स्टोरेज संयन्त्र के खर्चे को पूरा करने के लिए उनसे कुछ फीस ले सकते हैं। मुझे ज्ञात नहीं कि हमारे यहाँ का मार्केट कार्यालय भिन्न-भिन्न खाद्य-पदार्थों की महीने भर की कीमतों की औसत का सारांश तैयार करता है अथवा नहीं। मेरे विचार से भिन्न-भिन्न खाद्य-पदार्थों का महीने भर का औसत निकालना और उन औसतों की पिछले वर्ष के अनुवर्ती महीने के औसत से तुलना करना और आगे चलकर भविष्य में इसी प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन करना हितकर सिद्ध हो सकता है। ऐसा करने से हम एक ही नजर में यह बतला सकेंगे कि वस्तुओं का मूल्य गिर रहा है अथवा चढ़ रहा है। इन औसतों की सूचियों को पी० यू० एवं मार्केट्स समितियों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सकता है और गजट में भी प्रकाशित किया जा सकता है। वर्ष के अन्त में कीमतों का वार्षिक औसत भी निकाला जा सकता है। वस्तुओं का औसत मूल्य निकालने का कार्य सभी म्युनिसिपल मार्केटों में होना चाहिए, फिर समस्त कलकत्ते का मूल्य-माध्य मार्केट कन्ट्रोल द्वारा निकाला जा सकता है। मार्केट कन्ट्रोलर को चाहिए कि वह इन सभी औसतों का अध्ययन सूक्ष्म रूप से करे। उसे यह भी ज्ञात करने का प्रयत्न करना चाहिए कि भिन्न-भिन्न मार्केटों में

एक ही वस्तु के मूल्यों में क्यों अन्तर है एवं मूल्यों के कम करने की युक्ति पर भी विचार करना चाहिए। मुझे ज्ञात नहीं है कि बाजार-नियन्त्रण अधिकारी ने खाद्य-पदार्थों की पूर्ति में वृद्धि करने अथवा उनके मूल्य गिराने की दिशा में कोई कदम उठाया भी है अथवा नहीं।* इस दिशा में पहला कदम तो यह है कि हमें भिन्न-भिन्न वस्तुओं के मूल्य की सही स्थिति ज्ञात हो, और जहाँ तक हो सके वहाँ तक दूकानदारों को अनुचित मुनाफाखोरी से रोका जावे। इसका सबसे आसान ढंग यह है कि खाद्य-पदार्थों का एक मार्केट से दूसरे मार्केट में पुनर्वितरण स्थानीय रूप में होना चाहिए, ताकि किसी विशेष स्थान पर यदि किसी वस्तु की अधिक माँग है तो उस वस्तु का मूल्य कम किया जा सके। इस पुनर्वितरण को विक्रेताओं के माध्यम से सफल बनाया जा सकता है। यदि कोई कानूनी रुकावट न हो तो कारपोरेशन इसे अपने हाथ में ले सकता है।

समस्त कलकत्ते के लिए प्रत्येक प्रकार की उपलब्ध एवं इच्छित वस्तुओं† का एक आदर्श केन्द्रीय मार्केट बनाना सम्भव नहीं है। हाग मार्केट को माँस और फलों का केन्द्रीय मार्केट बनाया जा सकता है। कालिज स्ट्रीट मार्केट को केन्द्रीय मछली मार्केट बनाना चाहिए, क्योंकि यह तो वहाँ की स्थानीय जनता का मुख्य भोजन है। दुग्ध का केन्द्रीय बाजार स्यालदह सर्वोत्तम रहेगा। इस आधार पर कलकत्ते के मार्केटों का विकास होना चाहिए। मैं तो यह बात सोचता हूँ कि कलकत्ते के समस्त मार्केटों के विकास के लिए हमारे पास कोई योजना हो,‡ इस समय तो हम अंधेरे में टटोल रहे हैं।

* इस सम्बन्ध में श्री एस० सी० राय (सहायक अधिशासन अधिकारी) की राय लेना हितकर होगा। आगे चलकर भारतीय अर्थशास्त्र के लिए इन आँकड़ों का बड़ा लाभ होगा। ये आँकड़े म्युनिसिपल कर्मचारियों की वेतन सम्बन्धी माँग की जाँच में भी सहायक होंगे। इस समय केवल आवश्यक वस्तुओं का औसत-मूल्य ज्ञात करने की आवश्यकता है—विलास की वस्तुओं को छोड़ा जा सकता है।

सुभाषचन्द्र वसु

† यहाँ मैं खाद्य-पदार्थों से सम्बद्ध हूँ, अन्य पदार्थों से नहीं।

‡ किसी भी मार्केट के विकास की मंजूरी देने से पहले हमारे मस्तिष्क में उसकी एक रूपरेखा हो कि वह मार्केट कैसा होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो मार्केट का विकास अव्यवस्थित होगा और अन्त में सब मामला गड़बड़ हो जावेगा। मुझे तो कालिज स्ट्रीट मार्केट के मामले में ऐसा ही होने की आशंका है।

शिक्षा अधिकारी का क्या हाल है ? विभागीय कार्य के अतिरिक्त उन्हें चार काम करने के लिए तैयार रहना चाहिए—(१) भिन्न-भिन्न वार्डों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में विभागीय प्राक्कलन तैयार करें और अनिवार्य शिक्षा के अन्तर्गत पाठशाला जाने योग्य सभी बालकों की गणना के आधार पर संगत तथ्यों को एकत्रित करें। (२) किन्डर गार्टन शिक्षा प्रणाली के तथ्यों की जानकारी प्राप्त करें तथा शिक्षा मनोविज्ञान के मुख्य-मुख्य तथ्यों की, विशेष रूप से बालकों के सम्बन्ध में, जानकारी प्राप्त करें। (३) भिन्न-भिन्न श्रेणियों के विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने की स्वस्थ प्रणाली खोजना और उन पुस्तकों को लिखने के लिए योग्य व्यक्तियों को चुनना। (४) अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण विद्यालय का प्रबन्ध करना। कार्य के विस्तार के साथ-साथ शिक्षा अधिकारी की उपलब्धियाँ भी तब तक बढ़ती रहनी चाहिएँ, जब तक कि उसका वेतन अन्य विभागों के अधिकारियों के वेतन के बराबर न हो जावे। यद्यपि शिक्षा-विभाग को बनाने में कई वर्ष लग जावेंगे, परन्तु हमारा लक्ष्य यही होना चाहिए। वह विभाग कलकत्ते के सभी पाठशालाओं में जाने योग्य दीन-हीन बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिए उत्तरदायी है, उसका महत्त्व भला अन्य विभागों से कम कैसे समझा जा सकता है।

जहाँ तक म्युनिसिपल बैंकिंग का सम्बन्ध है, उस विषय में अभी कुछ दिन चुप रहना ही श्रेयस्कर है। आपके इस विचार से मैं सहमत हूँ।

कारपोरेशन द्वारा प्रबन्धित स्टोर्स मेहतरों को क्या सुविधाएँ प्रदान कर रहे हैं ? इस विषय में मैं तो पूर्णरूपेण अनभिज्ञ हूँ।

मेरे विचार में कारपोरेशन को दो समस्याओं के सम्बन्ध में कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। प्रथम समस्या है कि कलकत्ते के समस्त स्कूलों एवं कालिजों के विद्यार्थियों का स्वास्थ्य-परीक्षण, दूसरी समस्या है राजनीति विज्ञान विभाग के अन्तर्गत एक उप-विभाग खोलने की। जनसाधारण को इस विषय में कोई जानकारी नहीं है कि राजनीति विज्ञान में योरुप और अमरीका के लोगों ने कितनी विशिष्टता प्राप्त कर ली है। अमरीका में तो विशेष रूप से नगर-प्रशासन को एक अलग विज्ञान ही बना दिया गया है। उन्होंने नगर-प्रशासन प्रणाली और उसके सिद्धान्तों पर बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। यदि म्युनिसिपल सरकार को राजनीति-विज्ञान के पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया जाता है तो इससे बड़ा लाभ होगा। ऐसा करने से

राजनीति-शास्त्र का एक पक्ष पूर्णरूपेण व्यावहारिक बन जावेगा और हम विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को नगर प्रशासन के आन्तरिक कार्यों का पूर्ण ज्ञान कराने में सहायक होंगे, यहाँ तक कि यहाँ की अर्थ-व्यवस्था का भी उन्हें ज्ञान करा देंगे। यदि आप चाहें तो इस विषय में कारपोरेशन सदस्य रामप्रसाद जी से भी वार्तालाप कर सकते हैं।

जहाँ तक स्वास्थ्य-परीक्षण का सम्बन्ध है, यदि वह प्रतिवर्ष नहीं हो सकता तो नियमित रूप से हर दूसरे अथवा तीसरे वर्ष अवश्य होना चाहिए। ऐसा करने से हमें बिल्कुल सही-सही ज्ञात हो जावेगा कि अनुवर्ती बन्ध के विद्यार्थी पहले बन्ध के विद्यार्थियों से अधिक स्वस्थ हैं अथवा नहीं। ऐसा करने के लिए विश्वविद्यालय को कारपोरेशन तथा स्वास्थ्य एसोसियेशन के साथ अनुक्रम बन्धन करना होगा।

१६–४–२६

इस पत्र को मैंने आज से दो महीने पूर्व लिखना आरम्भ किया था, परन्तु तभी से यह अधूरा ही पड़ा है। इतने दिनों में न जाने कितनी घटनायें घट गई होंगी। आज तो मैं इसे समाप्त करके आपके पास प्रेषित करे दे रहा हूँ।

भाई साहब के पत्र द्वारा मुझे यह ज्ञात हुआ कि नगर के भिन्न-भिन्न भागों में मलेरिया संक्रामक रूप से फैल रहा है। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि कारपोरेशन ने नगर का शैक्षिक सर्वेक्षण करने की अनुमति प्रदान कर दी है। यह कार्य तो पिछले वर्ष ही हो जाना चाहिए था, खैर न होने से तो होना अच्छा है।

विद्याधरी सरिता के सम्बन्ध में जो प्रयत्न आपने किये उनमें मैंने विशेष रुचि ली है। मेरा अनुमान है कि इस समस्या को हल करने से पहिले आपको विदेश से एक सरिता-अभियन्ता बुलाना होगा। इसके लिए आप अभी से इंग्लैण्ड, अमरीका एवं योरुप के अन्य देशों में विज्ञापन क्यों नहीं प्रकाशित करा देते? आपको अच्छा अभियन्ता मिलने में यदि वर्षों नहीं तो कई महीने तो अवश्य ही लग जावेंगे।

इस दौरान में मैं डा० बैन्टले से पत्र-व्यवहार करूँगा। उनसे कहूँगा कि वे प्रतिरूपों की सहायता से विद्याधरी सरिता का परीक्षण करें और यह पता लगावें कि नमक झील क्षेत्र में जलमार्गों का भविष्य में क्या रूप

हो सकता है। योरुप में ऐसे परीक्षण हुए हैं और उनके परिणाम बहुत अच्छे रहे हैं। जहाँ तक मुझे स्मरण है मर्सी नदी के साथ भी ऐसा ही परीक्षण किया गया था। कारपोरेशन को इस बात को याद रखना चाहिए कि जल-निकासी की मुख्य योजना का निश्चय करने से पूर्व, नाले-नालियाँ कहाँ जाकर गिरेंगे, यह निश्चय करना आवश्यक है। हो सकता है कि हमारे यह अग्रिम सुझाव गलत निकलें, परन्तु जल-निकासी का आधार तो यही होंगे।

श्री विलकिन्सन छुट्टियों के बाद लौटकर आ रहे हैं अथवा नहीं ? मुझे तो उनके चले जाने पर बड़ा दुःख होगा।

यातायात विभाग के नये अधीक्षक कैसे लगे ? क्या वाचा महोदय के समय से अब कुछ सुधार हुआ है ?

मैंने अब से कुछ मास पूर्व डीटी ४ गऊखाने में चारे और चने की छोटी-मोटी चोरियों से सम्बन्धित एक रिपोर्ट भेजी थी। ई० जी० पी० समिति के आग्रह पर मेरी रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। क्या आपको इस सम्बन्ध में कुछ जानकारी है कि समिति ने इस पर कुछ विचार किया अथवा इस मामले को यहीं दबा दिया ?

क्या श्री कोट्स छुट्टी से लौट आये हैं ?

मैं समझता हूँ कि कहीं सड़क-विभाग में हमें आमूल-चूल परिवर्तन न करना पड़े। सिद्धान्ततः तो केन्द्रीकरण से मुझे कोई लगाव नहीं है, परन्तु फिर भी मैं ऐसा सोचने के लिए विवश हूँ कि कुछ वर्षों के लिए सड़क विभाग को अलग ही किसी विशेष रूप से प्रशिक्षित सड़क-अभियन्ता की देख-रेख में केन्द्रित कर देना चाहिए। वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत तो आप इस विभाग की कार्य-कुशलता को एक विशेष स्तर तक उठा नहीं पायेंगे। मैं इस बात को जानता हूँ कि जिला अभियन्ता तथा श्री कोट्स मेरे इस सुझाव के विरुद्ध होंगे, परन्तु इस नई योजना का किसी भी वर्तमान अधिकारी के वेतन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

कृपया चेचक जैसे संक्रामक रोग के सम्बन्ध में न भूल जाइये। इस रोग के आवधिक आवर्तन के कारणों की खोज की जानी चाहिए।

क्या आपको छटनी अधिकारी की पूरी रिपोर्ट मिल गई है ?

'हमारा लेखा-विभाग पर्याप्त रूप से कुशल है।' ऐसा कहने में मैं गर्व अनुभव करता हूँ—परन्तु कभी-कभी हमारे अधिकारी आवश्यकता से अधिक उत्साही बन जाते हैं। जब मैं वहाँ था तब तो आम तौर से ऐसा

उत्साह दिखलाने से मुख्य लेखा अधिकारी को रोक दिया करता था।

मुझे यह जानकर बड़ा दु:ख है कि कलकत्ते में साम्प्रदायिक झगड़ा हो गया—समझिये हमारे पाप का घड़ा भर चुका है। न जाने देश की आत्मा को क्या हो गया है? जब तक मैं कारागार से मुक्त नहीं हो जाता तब तक मुझे वास्तविक कारणों और झगड़ा करने वाले लोगों का ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता। अब तक मैं तो समझ रहा था कि बंगाल साम्प्रदायिक झगड़ों से मुक्त है, परन्तु ऐसी बात न निकली।

आशा है आप सब लोग अच्छी तरह होंगे। अब मैं पत्र समाप्त करता हूँ।

समस्त शुभ कामनाओं के साथ
आपका प्रिय भाई
सुभाषचन्द्र वसु

श्री एस० के० वसु,
१० ए, गोपाल घोष लेन,
किद्दरपुर—कलकत्ता।

१००*

निरीक्षणोपरान्त पास किया गया।
ह० अस्पष्ट
३–५–२६
डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०, बंगाल

माँडले जेल
(द्वारा डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी० (बंगाल)
१३, ऐलीसियम रो, कलकत्ता)
२६–४–२६

श्री चरणेषु—

माँ, आपका छ: फरवरी का पत्र यथा समय मिल गया था, परन्तु अनेक कारणों से उत्तर नहीं दे सका। आपका पत्र आयेगा यही विश्वास लेकर मैंने आपको पत्र नहीं लिखा। इतने दिनों बाद आपका पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई, लेकिन पत्र को पढ़ते-पढ़ते न जाने वह आनन्द कहाँ चला गया? सोचा कि यदि जेल से बाहर होता तो

* श्रीमती वासन्ती देवी के नाम दो पत्र।

कदाचित् आपको कुछ सान्त्वना दे पाता। आज लगभग डेढ़ वर्ष बीत जाने के उपरान्त भी हम हर प्रकार से एक दूसरे से बिछड़े हुए हैं। इस दीर्घ प्रवास-निशा का कब अवसान होगा, यह तो केवल ईश्वर ही जानता है। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि अब मैं तो अन्धकार का अभ्यस्त हो चला हूँ। बाहर का प्रकाश और भी दूर होता जा रहा है। कारावास के प्रारम्भिक दिनों में, बन्दी होने के कारण, एक प्रकार की जलन हृदय में अनुभव करता था, वह जलन अब शनैः शनैः घटती जा रही है। निर्विकार भाव हृदय में आता जा रहा है। कभी-कभी तो यह भी मालूम नहीं पड़ता कि मैं किस दिशा में बढ़ता चला जा रहा हूँ। हमें प्रवासी बनाकर सरकार किस उद्देश्य की पूर्ति कर रही है इस तथ्य को मेरा मन समझ कर भी नहीं समझ पा रहा। इसीलिये सदैव प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर विपत्ति और बाधाओं के मध्य से मेरे इस अशान्त जीवन को अपनी ओर आकर्षित कर ले। मैं समझता हूँ कि उसने किसी महान उद्देश्य की सिद्धि के लिए ही मुझको हर प्रकार से निराश्रित बना दिया है। डेढ़ वर्ष के इस दीर्घ काल में और ऐसी असहाय स्थिति में रहकर भी क्या मैं उसकी ओर अग्रसर हो पाया हूँ?

जाने दीजिये, क्या कहते-कहते मैं क्या कहने लगा। न जाने कब आपके श्री चरणों के दर्शन कर पाऊँगा। आपके सम्बन्ध में बिना सोचे नहीं रहा जा सकता। सम्भवतः एक भी दिन ऐसा नहीं जाता जब आपकी बात स्मरण न आती हो। यदि मैं अपना सर्वस्व देकर भी आपको कुछ सान्त्वना दे सकता, या आपकी सेवा कर सकता तो अपने आपको धन्य समझता, परन्तु ऐसा होना संभव कहाँ?

ऐसा प्रतीत होता है कि आज लेखनी कुछ भी लिखने में असमर्थ है, इसलिए बस आज यहीं तक। हम सबका प्रणाम स्वीकार कीजिये। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१०१

सेन्सर के उपरान्त अनुमति
प्राप्त पत्र
ह० अस्पष्ट
२८–७–२६
डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०, बंगाल

मांडले जेल
द्वारा डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०,
१३, एलीसियम रो, कलकत्ता
२१–७–२६

श्री चरणेषु—

माँ, बहुत दिन हुए पटना के पते पर आपको एक पत्र लिखा था। आशा है कि नियत समय पर मिल गया होगा। १६ जून को आपको पत्र लिखने बैठा था परन्तु थोड़ा सा लिखने के बाद लेखनी फिर आगे नहीं बढ़ी। वह पत्र आज तक अधूरा ही पड़ा है, इसी लिये उसे नये सिरे से लिखने बैठा हूँ। इस दौरान में आपने जो-जो कष्ट सहन किये हैं उनके सम्बन्ध में सोचने से हृदय काँपने लगता है। क्या भगवान इतना निष्ठुर है? क्या मनुष्य की परीक्षा इसी प्रकार होती है? २९ जून की सन्ध्या को समाचार-पत्र में जब यह दुखद समाचार पढ़ा तभी सबकी अनुमति से एक तार आपको भेजा गया था, बाद में आपको पत्र लिखने की इच्छा हुई, परन्तु जब लिखने बैठा तो उपयुक्त शब्द ही नहीं मिल पा रहे थे कि क्या लिखूँ, और क्या न लिखूँ? किस प्रकार की सान्त्वना भेजूँ? किस प्रकार शोक के गुरुतर भार को हल्का करने का प्रयास किया जाए? परन्तु कुछ भी निश्चित नहीं कर सका। आपको देखने की प्रबल इच्छा है, परन्तु वह अभी पूर्ण नहीं हो सकती। जीवन में कभी यह इच्छा पूर्ण होगी अथवा नहीं, आज तो यह भी नहीं कहा जा सकता। मैं तो यहाँ स्थायी रूप से रहने को तैयार हूँ। आज जब हम कारागारों में हैं, हमारे समक्ष जननी, बंगजननी, विश्वजननी, ये सब सैंकड़ों गुना पवित्र, सुन्दर व प्रिय हो उठी हैं। हमारे मानस जगत में तो वे सदैव निवास करती हैं, किन्तु उनकी सत्ता का निवास मानस जगत् में लौकिक जगत् से हमारे अलगाव की अनुभूति को और भी तीव्र कर देता है।

मानस जगत् में स्थित उन सब महान् मूर्तियों की ओर निहारते हुए कितने दिन, कितने मास और कितने वर्ष व्यतीत करने होंगे, अभी इसका

कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इतने पर भी मैं विश्वास करता हू कि मनुष्य की आत्मा सत्य है, उसका जीवन सत्य है, और मनुष्य के साथ मनुष्य का सम्बन्ध भी सत्य है। इस जीवन के समाप्त होने पर भी जीवन का अन्त नहीं होगा, जीवन के सम्बन्धों का अन्त नहीं होगा। पार्थिव शक्ति हमें कारागार में डाल सकती है, हमारा सर्वस्व अपहरण कर सकती है, परन्तु जीवन का अन्त नहीं कर सकती। जीवन के पवित्र सम्बन्धों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। गौरवमय भविष्य की कल्पना और ध्यान हमारे वर्तमान दुःखों को पूर्ण रूप से विस्मृत कराने में समर्थ हैं। भविष्य में प्रकाश प्राप्त करने के लिए ही हम वर्तमान के निविड़ तम को सहन कर रहे हैं। इसीलिये बहुत असहाय होने पर भी दृढ़संकल्प होकर उस सुप्रभात की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

जगत के मूल में जो न्याय की प्रतिष्ठा है उसे हमें मानना ही पड़ेगा। मैं इसी लिये यह विश्वास करता हूँ कि हमारा भी एक दिन आएगा जब हम वर्तमान अभावों का प्रतिशोध गिन-गिन कर लेंगे। इस विश्वास के कारण ही हम वास्तविकता के भार से नहीं दबे, न दबाये ही जा सकेंगे।

जाने दीजिए, व्यर्थ में मैं न जाने क्या-क्या लिख गया हूँ? सदैव आपकी चिन्ता बनी रहती है। आपका क्या हाल है? मँझले दादा और भाभी आपसे मिलने आते हैं, यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। यहाँ नवीन समाचार तो कुछ हैं ही नहीं। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१०२*

माँडले जेल
२७-७-२६

पूजनीया मँझली भाभी,

आपका १४ जुलाई का पत्र आज मिला। अशोक का पत्र तो इससे पूर्व ही मिल चुका था। उसका शीघ्र ही उत्तर

* श्रीमती विभावती वसु के नाम दो पत्र।

दूँगा। दादा क्या अब भी नौकरी कर रहे हैं ? कोई नई नौकरी कर ली है, या पुरानी नौकरी पर ही डटे हुए हैं ? यदि मेजदीदी गोरक्षपुर गईं तो गोरा को छोड़ जाएँगी या लड़के-लड़की सब को साथ ले जाएँगी ? माँ और पिताजी का पत्र बहुत दिन से नहीं आया। गजट में देखा था कि गोपाली पास हो गया है। अब वह क्या करेगा ? आप लोग माता वासन्ती देवी के पास जाते हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई। वह किस मकान में रहती हैं ? उनको एक बार देखने की प्रबल इच्छा है, परन्तु कोई उपाय नहीं सूझ पा रहा। मैं सरकार की खुशामद नहीं कर सकता। यह मेरा दुर्भाग्य है कि ऐसी विपत्ति के समय भी मैं उनकी कोई सेवा नहीं कर सका।

यहाँ साधारण वर्षा होती है, परन्तु फिर भी इस महीने गर्मी कम ही है। जेल में और शहर में कई प्रकार की बीमारियाँ फैल रही हैं। हम में से एक व्यक्ति को इनफ्ल्यूएंजा जैसा एक रोग हो गया था, इस रोग का नाम 'सैन्डफ्लाई फीवर' है। यह एक प्रकार के मच्छर के काटने से फैलता है। बाद में एक दूसरे व्यक्ति को एपेंडिसाइटिस हो गया। इसके बाद एक को लंगड़ा बुखार हुआ। मुझे भी आशंका हुई कि कहीं टाइफाइड न हो जावे, परन्तु छठे दिन बुखार उतर गया। इस समय यहाँ किसी का भी स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, काम में मन नहीं लगता, वैसे मुझे कोई गंभीर रोग नहीं हुआ।

आप सब लोगों का क्या हाल है ? पूजा की छुट्टियाँ कब प्रारम्भ होंगी ? आप छुट्टियों में करस्योंग जाएँगी या और किसी जगह ?

इस समय यहाँ कोई गंभीर रूप से बीमार नहीं है। यहाँ की बातों और व्यवस्था से तो यही अनुमान होता है कि यहाँ राजबन्दियों की संख्या और बढ़ेगी। सबको मेरा प्रणाम स्वीकार हो। इति।

सुभाष

१०३

श्री श्री दुर्गा सहाय

माँडले जेल
२८–७–२६

पूजनीया मँझली भाभी,

मैं आपके २७ अप्रैल के पत्र का उत्तर आज तक नहीं दे सका, इसके लिए क्षमा करेंगी। क्या गोपाली का परीक्षा परिणाम घोषित हो चुका है ? अशोक और अरुण के पत्र मुझे देर से मिले थे, जिनका उत्तर मैंने दे दिया है। आशा है उन्हें यथासमय मिल गए होंगे। दीदी के पत्र से ज्ञात हुआ कि अरुणा अब ससुराल में है। बड़ी दीदियाँ आजकल कहाँ हैं ? विमल कहाँ है और उसकी पढ़ाई कैसी चल रही है ?

इस बार जून-जुलाई के महीने में पिछले वर्ष की अपेक्षा यहाँ ठंड है, परन्तु इसके बाद गर्मी पड़ेगी या नहीं, कह नहीं सकता। अबकी बार तो यहाँ एक एक करके सभी को बिस्तर पकड़ना पड़ा। केवल मैं ही ऐसा था जो बीमार नहीं पड़ा। ऐसा मालूम तो होता नहीं कि ठण्ड न पड़ने से पेट की तकलीफ हो जाएगी। गत वर्ष की भाँति आजकल भी किसी काम में मन नहीं लग रहा। बस किसी न किसी प्रकार दिन बीत रहे हैं। सर्दी आने पर पुनः पढ़ने-लिखने में मन लगाऊँगा। समाचार-पत्र में पढ़ा था कि इस बार वहाँ बहुत गर्मी पड़ रही है, और गर्मी से लोग मर भी रहे हैं। यहाँ की गर्मी के विषय में अभी कुछ नहीं कह सकता।

मैंने मँझले दादा को लिखा था कि घर पर मास्टर लगाकर लड़के-लड़कियों को गाने-बजाने की शिक्षा देने का प्रबन्ध करें—सम्भवतः प्रारम्भ में तो वे सीखना नहीं चाहेंगे। उन्हें तो बलपूर्वक सिखाना पड़ेगा। परन्तु इसका आनन्द वे जीवन भर उठायेंगे। यदि मैं गाना बजाना अथवा चित्रांकन जानता तो यहाँ मेरे दिन और भी अधिक आनन्द से व्यतीत होते।

हमारा तोता खा-खा कर मोटा होता जा रहा है, परन्तु ऐसे लक्षण दिखलाई नहीं पड़ते कि वह बोलना भी सीख जाएगा। कबूतरों का परिवार बढ़ता ही जा रहा है, अब छः जोड़े हो गए हैं। दो जोड़े सफेद काले मिश्रित, एक जोड़ा लाल, एक जोड़ा सफेद, दो जोड़े मोरपंखी हैं। मोरपंखी कबूतर देखने में बहुत ही सुन्दर हैं। मोर की भाँति सदैव नाचते रहते हैं। दो जोड़ों ने अंडे दिए हैं, जिन्हें वे से रहे हैं। इनके फूटने पर वंश और भी बढ़ेगा। हमारे यहाँ जो पोखर है, आजकल उसके

किनारे प्रातःकाल कबूतरों के झुंड श्रेणीबद्ध होकर बैठते हैं। उस समय वे बहुत ही सुन्दर लगते हैं।

आजकल माँ और पिताजी कहाँ हैं और कैसे हैं? मुझे बहुत दिन से उनका कोई पत्र प्राप्त नहीं हुआ। क्या छोटे मामा का परीक्षा-फल निकल गया? वह और छोटे दादा कब लौटेंगे? मीरा के टाइफाइड की बात मैंने नहीं सुनी थी, मुझे तो दीदी के पत्र से ज्ञात हुआ कि उसे टाइफाइड हो गया था। मीरा अब कैसी है? नदादा अब कौनसी नौकरी कर रहे हैं? नौकरी पक्की है या अस्थायी है? लाल मामा बाबू की प्रैक्टिस कैसी चल रही है? और दूसरे मामा बाबू कहाँ और कैसे हैं? लाल मामा बाबू का स्वास्थ्य कैसा है? गोपाली अब कहाँ है? वह मुझे पत्र तो लिख ही सकता है। दीदी वहीं रहेंगी या कटक जाएँगी? पलि का स्वास्थ्य अब कैसा है? क्या मेजदादा के कारखाने का माल बाजार में जाने लगा है?

१०४*

माँडले जेल
१९२६

प्रियवरेषु,

आपका दिनांक २–५–२६ का पत्र पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उत्तर देने में विलम्ब हो गया, इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं अब बहुत सी बातों में स्वतन्त्र नहीं हूँ, यह तो आप समझते ही होंगे। आपके पत्र द्वारा भवानीपुर के सब समाचार जानकर एक साथ सुख और दुःख दोनों ही अनुभव किए बिना नहीं रह सका। आजकल बंगाल में प्रायः सर्वत्र ही दलबन्दी और लड़ाई-झगड़े दिखाई देते हैं। जहाँ काम कम है वहाँ झगड़ा उतना ही अधिक है। भवानीपुर में कुछ काम हो रहा है, इसी कारण वहाँ झगड़ा और विवाद अपेक्षाकृत कम है। मैं सोचता हूँ इस बात के चक्कर में निरपेक्ष मनुष्य भी आये बिना नहीं रह सकता। झगड़ा करने वाले तो असंख्य लोग हैं, परन्तु जो मीमांसा कर सके ऐसा मनुष्य क्या समस्त बंगाल में एक भी नहीं है? इस दलबन्दी के कारण ही बंगाल

* श्री भूपेन्द्रनाथ वन्दोपाध्याय के नाम।

ने आज श्रीयुत अनिलवरण राय जैसे देशभक्त को खो दिया। कौन बता सकता है कि अभी और कितनों को खोना पड़ेगा। बंगाली आजकल अन्धे होकर कलह और विवाद में पड़े हुए हैं, इसी कारण इस तथ्य को समझते हुए भी नहीं समझ रहे हैं। निःस्वार्थ आत्मत्याग की बात तो कहीं सुनाई ही नहीं देती। एक महाप्राण व्यक्ति ने अपने आपको निःशेष करके महाशून्य में विलीन कर दिया। अग्नि के समान उस त्यागमूर्ति ने बंगालियों के समक्ष आत्मप्रकाश की ज्योति प्रज्वलित की। बंगालियों ने उस दिव्य आलोक के प्रभाव से क्षणभर के लिए स्वर्ग का आनन्द प्राप्त किया था परन्तु आलोक के बुझते ही बंगाली फिर स्वार्थ में डूब गए। आज बंगाल में सर्वत्र केवल अधिकारों के लिए छीना-झपटी चल रही है। जिसके पास क्षमता है वह उस क्षमता की सुरक्षा के लिए चिंतित है और जिसके पास क्षमता नहीं है वह क्षमता छीन लेने के लिए प्रयत्नशील है। दोनों पक्षों का कहना है कि देशोद्धार हो तो हमारे ही द्वारा हो, नहीं तो उसकी आवश्यकता ही नहीं है। इन क्षमतालोलुप राजनीतिज्ञों के झगड़े और विवाद को छोड़कर और मौन रहकर आत्मोत्सर्ग कर सकें क्या ऐसे कार्यकर्ता आज बंगाल में नहीं हैं ?

जिन व्यक्तियों ने अपनी बौद्धिक और आत्मिक उन्नति की उपेक्षा करके जन-सेवा का व्रत लिया है वह यदि इस तुच्छ कलह-विवाद में सबको फँसे हुए देखकर, अत्यन्त निराश होकर राजनीति से दूर हट जायें तो आश्चर्य नहीं। जो व्यक्ति अपने मानसिक और पारमार्थिक कल्याण को विस्तृत करके जनहित में संलग्न हो रहे हैं क्या इन क्षुद्र झगड़ों में वे अपने आपको फँसा देंगे ? जनसेवा के सम्बन्ध में निराश होकर वे यदि पुनः पारमार्थिक कल्याण में व्यस्त हो जायें तो क्या उन पर किसी प्रकार का दोष लगाया जा सकता है ? मैं आज यह बात स्पष्ट रूप से समझ रहा हूँ कि यदि वर्तमान स्थिति चलती रही तो बंगाल के बहुत से निःस्वार्थ कार्य-कर्त्ता शनैः शनैः अनिलवरण वाला मार्ग अपनाने के लिए विवश हो जायेंगे।

बंगाल के कार्यकर्त्ताओं में व्यापारिक बुद्धि बहुत आ गई है। उन्होंने अब कहना आरम्भ कर दिया है कि 'मुझे अधिकार दो नहीं तो मैं काम नहीं करूँगा।" मैं पूछता हूँ कि भगवान की सेवा करना दुकानदारी या ठेकेदारी कब से हो गई ? मैं तो समझता था कि सेवा का आदर्श ही यह है —

दो, दान जहाँ तक हो सम्भव,
मत करो कामना पाने की ।

जो बंगाली इतनी शीघ्रता से देशबन्धु के त्याग की बात भूल गए यदि उन्होंने बहुत दिन पूर्व ही विवेकानन्द की वीर वाणी भी भुला दी तो इसमें क्या आश्चर्य की बात है ?

दुःख और कलंक की बात सोचकर हृदय विदीर्ण हो जाता है। प्रतिकार का न तो कोई उपाय ही है, न शक्ति ही। इस कारण कभी-कभी सोचता हूँ कि पत्र आदि लिखना बन्द करके बाह्य जगत् से सब सम्बन्ध तोड़ लूँ। लोक से दूर देशवासियों की ओर से मैं तिल-तिल कर जीवन को समाप्त करके प्रायश्चित्त कर सकता हूँ। यदि सर पर भगवान हैं, और पृथ्वी पर सत्व की प्रतिष्ठा है तो हमारे हृदय की बात एक न एक दिन भविष्य में देशवासी अवश्य समझेंगे। हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि बीसवीं शताब्दी में बंगाल में एक ऐसे प्रहसन का अभिनय भी देखना पड़ेगा जो "जब रोम जल रहा था तब नीरो बाँसुरी बजा रहा था" का नवीन उदाहरण प्रतीत होगा।

मैंने बहुत कुछ कह दिया, हृदय के आवेग को मैं दबा कर न रख सका। आपको अपने बहुत ही निकट मानता हूँ, इसीलिए यह सब कहने का साहस हुआ। आप लोग संगठनात्मक कार्यों में व्यस्त हैं, आशा है आप इस दलदल के पंक की ओर नहीं जायेंगे।

विद्यालय के समाचार पढ़कर विशेष प्रसन्नता हुई। घर की बात सुनकर मैं दुःखित हुए बिना नहीं रह सका। यह बात मैं पहले से ही जानता था और चण्डी बाबू आदि बन्धुओं से कई वर्ष पूर्व ही मैंने यह कह भी दिया था। मैं सदैव यही सोचता था कि कार्यकर्त्ताओं ने 'पट्टे' पर जमीन लेकर जो मकान बनवाना प्रारम्भ किया था वह व्यापारिक दृष्टि से व्यावहारिक न था। इससे जमींदार को ही लाभ होगा। अन्ततोगत्वा अब तो "गतस्य शोचना नास्ति।" यह बात बहुत आशाजनक है कि आप अकेले ही 'गृह-निर्माण' कोष संग्रह करने के लिए कटिबद्ध हैं। कार्य करते समय सफलता या असफलता की ओर ध्यान न दें। कहा भी है—

"न हि कल्याण कृत कश्चित् दुर्गति तात ! गच्छति।"

समिति के सब समाचार प्राप्त करके प्रसन्नता हुई। यदि आप मेहतर, मोची आदि तथाकथित निम्न श्रेणी के बालकों के लिए एक विद्यालय खोल सकें तो अत्यन्त श्रेष्ठ बात होगी। इस विषय में अमृत से भी परामर्श करना। बहुत दिन हुए मुझे उसका पत्र मिला था, परन्तु मैं उत्तर नहीं दे सका ; इस बात का मुझे खेद है। आज कुलदा को उत्तर दे रहा हूँ। आशा है कि आगामी सप्ताह में अमृत को भी पत्र लिखूँगा।

मैं वहाँ होता तो आप लोगों को पृथक् न होने देता। नई शाखा के संगठन में तो मैं अवश्य सहायता करता, परन्तु पूर्णतः पृथक् नाम से नवीन प्रतिष्ठान की स्थापना नहीं करने देता। कुछ भी हो, अब तो कोई दूसरा उपाय है ही नहीं। जो हुआ सो ठीक ही हुआ, यह मानकर कार्यरत हो जाना पड़ेगा। आप लोगों ने विधान बनाकर अच्छा ही किया।

आशा है कि आप लोग इस बात का ध्यान रखेंगे कि बालक समिति जहाँ से चावल और चन्दा एकत्रित करे वहाँ आप न जाएँगे। यदि एक ही स्थान पर दो एक सी समितियाँ चावल और चन्दा उगाहेंगी तो वहाँ गृहस्थ लोगों को कठिनाई होगी।

मेरे विचार से यदि आप दो कार्यकर्ताओं को कासिम बाजार पॉलिटेकनीक स्कूल में शिक्षा दिला सकें तो टेक्निकल शिक्षा देने में बहुत सुविधा होगी। मैं एक बार कासिम बाजार स्कूल में गया था। मुझे तो बहुत ही अच्छा लगा। वहाँ कई नवीन विषय सिखाये जाते हैं जो कि साधारण स्कूलों में नहीं सिखाये जाते, जैसे बेंत का काम, मिट्टी की मूर्तियाँ बनाना, लुहार का काम, सिलाई का काम, बिजली से मुलम्मा चढ़ाने का काम आदि। जिस दिन मैं वहाँ गया था, उस दिन बिजली से मुलम्मा चढ़ाने की मशीन खरीद कर मँगवाई जा रही थी।

आपका भेजा हुआ समिति का विधान मुझे मिल गया है। यह बहुत खेद की बात है कि स्वास्थ्य-विभाग का काम सुचारु रूप से नहीं चल रहा। इसका कारण यही है कि जनसाधारण को भली भाँति समझाया ही नहीं गया। यदि उन्हें ढंग से बुलाया जाए तो वह आए बिना रह नहीं सकते। हमारा प्रमुख उद्दश्य उनमें सहज ज्ञान और कर्म प्रेरणा जाग्रत करना है। स्वास्थ्य-विभाग का उद्देश्य दातव्य चिकित्सालय के उद्देश्य से सर्वथा भिन्न है। उनमें यदि कार्य के प्रति प्रेरणा जागृत करनी है तो उन्हें प्रेमपूर्वक अपनाना पड़ेगा।

सम्भवतः आप लोगों को यह बात ज्ञात नहीं है कि दक्षिण कलकत्ता सेवाश्रम की कमियों के लिए मुख्य रूप से मैं ही उत्तरदायी हूँ। बाहर रहने के कारण मैं भली भाँति उसे संगठित नहीं कर पाया और बाद में बलात् मेरी गिरफ्तारी हुई। जब सेवाश्रम कालीघाट में था तब मकान का किराया और सहकारी सम्पादक का वेतन मैं स्वयं देता था ; केवल बालकों के भरण-पोषण का व्यय जनसाधारण द्वारा दिये गये चन्दे से चलता था। सेवाश्रम के सम्बन्ध में मेरी आत्मा निष्कलुष है, क्योंकि

जनता द्वारा दान दिये हुए धन में से मैंने एक पाई का भी दुरुपयोग नहीं किया। मेरी गिरफ्तारी के पश्चात् भी भाई साहब (शरत् बाबू) मेरा देय अंश बराबर देते आ रहे हैं। अब सेवाश्रम की आय बढ़ गई है और व्यय घट गया है, इस कारण उन्हें पहले की भाँति अधिक नहीं देना पड़ता। पहले जब मैं मास में दो सौ रुपये सेवाश्रम के लिए व्यय करता था तब बहुत से मित्रों ने कहा था कि मैं व्यर्थ में छः सात बालकों के लिए इतना धन व्यय कर रहा हूँ, इस धन का सदुपयोग दूसरे प्रकार से भी तो हो सकता है। परन्तु ये लोग यह नहीं जानते कि मैंने भावुकतावश सेवाश्रम के कार्यों में भाग नहीं लिया। लगभग बारह-चौदह वर्ष से जो गम्भीर व्यथा तुषारानल की भाँति मुझे दग्ध कर रही है, उसे बुझाने के लिए ही मैंने इस कार्य में भाग लिया। मैं कांग्रेस का कार्य छोड़ सकता हूँ परन्तु सेवाश्रम का कार्य छोड़ना मेरे लिए सम्भव नहीं है। 'दरिद्रनारायण' की सेवा का ऐसा सुअवसर मुझे अन्यत्र कहाँ मिलेगा? इस सेवाश्रम के पीछे क्या इतिहास छिपा हुआ है, इसका विचार कब मेरे मन में उठा और किस प्रकार मैंने चिन्तन से कर्मक्षेत्र में प्रवेश किया, ये सब बातें फिर कभी बताऊँगा। यदि इस पत्र में यह सब लिखने लगूँ तो अलग से एक ग्रन्थ ही बन जाएगा।

बहुत बातें लिख दीं। अब समाप्त करता हूँ। तुम्हारी जिज्ञासा का क्या उत्तर दूँ? रवि बाबू की एक कविता मुझे बहुत ही प्रिय है। क्या कवि की भाषा में उत्तर देना धृष्टता होगी? कवियों का आदर इसी कारण किया जाता है कि कवि लोग हमारे हृदय की भावनाओं को हमसे भी अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं। इसीलिए कहता हूँ—

अब तक रहे हो खेलते
बस कल्पना के जगत् में
राजधानी, जेलखाना
या किसी अरण्य में
या किया तुमने है बस
चिन्तन, औ' कर्मविहीन साधना

× ×

दिवारात्रि बैठे-बैठे
सुनता हूँ मैं हृद्-वीणा

× ×

हूँ कर रहा अपने को मैं
निर्मित सदा इस भाव से
कर सकूँ कुछ कार्य मैं
परमार्थ का भी चाव से

× ×

कब बोलूँगा मुक्त हृदय से
लक्ष्य पा लिया जीवन का
तुम करो अनुसरण सब मेरा
हैं रहे बुला गुरु तुम सबको
मेरे जीवन से जीवन ले
हे महादेश मेरे जागो।

स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं है किन्तु उसके लिए चिन्तित भी नहीं हूँ। मेरा प्रेम और प्रीति-सम्भाषण स्वीकार हो। अमृत आदि सब भाई कैसे हैं ? आप लोगों के कुशल समाचार प्राप्त करके मुझे प्रसन्नता होगी, परन्तु काम का समय नष्ट करके पत्र लिखना आवश्यक नहीं है। मेरा सप्रेम नमस्कार स्वीकार कीजिए। इति।

१०५*

माँडले जेल
१९२६

सविनय निवेदन,

आपका ९ नवम्बर का पत्र यथा समय प्राप्त हुआ। उत्तर देने में विलम्ब हुआ। इसके लिए बुरा न मानें। यदि मैंने अपनी इच्छा का अनुसरण किया होता तो सम्भवतः उत्तर न देता, क्योंकि राजबन्दियों से सम्बन्ध रखना वांछनीय नहीं होता! यही सोचकर उत्तर दे रहा हूँ कि आप मेरे पत्र की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आशा है यह पत्र पाकर आपको प्रसन्नता होगी।

आप लोग सामूहिक रूप से कारागार से मेरे मुक्त होने की कामना कर रहे हैं और आपने अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भी मेरे पास

* श्री अनाथबन्धु दत्त के नाम।

भेजी हैं, इसके लिए मैं आप सबका हृदय से आभारी हूँ। इससे उत्तम पारितोषिक प्राप्त करने की कोई देश-भक्त कामना नहीं कर सकता। इसी कारण आपका पत्र पाकर, और समाचार-पत्रों में आप सबके विवरण पढ़कर, मुझे अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। मैं जानता हूँ कि ऐसा आनन्द प्राप्त करने वाला मन उच्च-स्तर का नहीं हो सकता। किन्तु करूँ क्या? स्वदेशसेवी होने की स्पर्द्धा रखते हुए भी मैं एक मनुष्य हूँ। भला ऐसा कौन है जो प्रेम और अपनत्व को प्राप्त करके सुखी न होता हो? कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा को जीतना अच्छा होता है। उच्च स्तर के कार्यकर्ताओं को तो प्रत्येक प्रकार के प्रतिदान की आकांक्षा को जय करना वांछनीय है। मेरे लिए तो अभी यह बात एक आदर्श के रूप में ही है। हृदय पर हाथ रखकर कहना हो तो मुझे एलेक्जैन्डर सेल्किर्क के शब्दों में कहना पड़ेगा—

मित्र मेरे भेजते हैं क्या कभी,
शुभकामनायें या विचारों की लड़ी।

मैं चौदह मास से जेल में हूँ, और इनमें से ग्यारह मास सुदूर ब्रह्म देश में व्यतीत हुए हैं। कभी-कभी सोचता हूँ कि यह दीर्घकाल देखते ही देखते कैसे व्यतीत हो गया? परन्तु कभी ऐसा लगता है कि न जाने यहाँ कितने युगों से हूँ। कभी कभी तो ऐसा लगता है कि यह मेरा अपना घर है; कारागार से बाहर की बात तो स्वप्नवत् प्रतीत होती है। ऐसा जान पड़ता है कि इस जगत् में यदि कुछ सत्य है तो केवल लोहे की सलाखें, गारद और जेल की पत्थर की दीवारें। वास्तव में यह भी अपने किस्म का एक राज्य है। कभी-कभी सोचता हूँ कि जिसने जेल नहीं देखी, उसने जगत् में कुछ नहीं देखा। संसार के बहुत से सत्य प्रत्यक्ष रूप से उसने नहीं देखे। मैंने अपने मन का विश्लेषण करके देखा है कि इस विचार के मूल में चिन्ता या ईर्ष्या नहीं है। वास्तव में मैंने जेल में आकर बहुत कुछ सीखा है। जीवन के बहुत से सत्य, जो किसी समय छाया से लगते थे अब स्पष्ट हो गये हैं। अनेक नई अनुभूतियों ने मेरे जीवन को सबल और गम्भीर बना दिया है। यदि ईश्वर ने कभी मुझे अवसर दिया और जिह्वा को वाणी दी तो ये सब बातें अपने देशवासियों को बताना चाहूँगा।

मुझे इस बात का दुःख नहीं है कि मैं जेल में हूँ। माँ के लिए दुःख सहन करना तो गौरव की बात है। इस बात का विश्वास करिये कि दुःख सहन करने में भी एक प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है। यदि ऐसा न होता तो लोग पागल हो जाते; कष्टों के बीच में रहते हुए

भी पूर्ण प्रसन्नता के साथ कैसे हँसते ? जिस वस्तु में बाहर से देखने पर कष्ट दिखाई देते हैं, उसमें भीतर झाँकने पर आनन्द का बोध होता है। यह तो निश्चित है कि वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिन और चौबीसों घण्टे मेरा यही विचार नहीं रहता, क्योंकि अभी तक लौह शृङ्खला के चिह्न मेरे शरीर पर मौजूद हैं। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जिसे ऐसी अनुभूति नहीं हुई, वह न तो कष्टों के माध्यम से जीवन को दृढ़ बना सकता है और न ही दु:खों में स्थिर रह सकता है।

मुझे केवल यही पश्चात्ताप है कि चौदह मास का समय मैंने उपेक्षा में ही व्यतीत कर दिया। बंगाल की जेल में रहता तो सम्भवत: साधना पथ पर बहुत आगे बढ़ जाता। परन्तु यह होना बदा नहीं था। अब मेरी तो केवल यही प्रार्थना है कि "जिसे तुम अपनी पताका दो उसे वहन करने की सामर्थ्य भी दो।" जब कारागार से मुक्त होने की कल्पना करता हूँ तब आनन्द की अपेक्षा भय अधिक प्रतीत होता है। भय इस बात से होता है कि कहीं स्वस्थ होने से पूर्व ही कर्त्तव्य का बुलावा न आ जाये। तब विचार आता है कि जब तक मैं स्वस्थ न हो जाऊँ, तब तक मुझे कारा-मुक्ति की बात नहीं सोचनी चाहिए। आज मैं मन और शरीर से स्वस्थ नहीं हूँ इसी लिए कर्त्तव्य की पुकार नहीं आई। जब मैं तैयार हो जाऊँगा उस दिन एक क्षण के लिए भी कोई मुझे रोक कर नहीं रख सकता। यह सब भावना की बातें हैं। इनमें कितना सत्य है यह मुझे ज्ञात नहीं। जेल में रहते-रहते आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ सत्य एक हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो भाव और स्मृति सत्य में परिणत हो गए हैं। मेरा भी ऐसा ही हाल है। भाव ही इस समय मेरे लिए सत्य हैं। इसका कारण भी स्पष्ट है—एकत्व-बोध में ही शान्ति है।

आपने लिखा है—"देश और काल के व्यवधान ने आपको बंगाल देश के निकट और भी प्रिय बना दिया है।" परन्तु देश और काल के व्यवधान ने स्वर्णभूमि बंगाल को मेरे लिए कितना सुन्दर और सत्य बना दिया है, इसका वर्णन करना बहुत कठिन है। देशबन्धु ने अपनी एक बंगाली कविता में लिखा है—"बंगाल के जल और बंगाल की मिट्टी में एक चिरन्तन सत्य छिपा हुआ है।" यदि यहाँ वर्ष भर न रहता तो क्या इस उक्ति की सत्यता इस प्रकार समझ सकता था। बंगाल के शस्य श्यामल खेत, मधुगन्धवाही मुकुलित आम्र-निकुञ्ज, मन्द-मन्द धूप वाली सन्ध्या की आरती, गाँव-गाँव के कुटीर प्रांगण की शोभा—यह सब दृश्य कल्पना में भी कितने सुन्दर हैं।

प्रातःकाल अथवा मध्याह्न के समय जब शुभ्र बादलों की टुकड़ियाँ नेत्रों के सामने चलती नजर आती हैं तब क्षण भर के लिए विचार उठता है कि मेघदूत के विरही यक्ष की भाँति उनके द्वारा हृदय की कुछ व्यथायें बंगजननी के पास भेज दूँ। कम से कम वैष्णवों की भाषा में कह भेजूँ—

तुम्हारे लिए कलंक का बोझ
वहन करने में ही है मेरा सुख

सन्ध्याकाल की गहरी छाया के आगमन के समय जब दिवाकर माँडले दुर्ग की ऊँची दीवार के पीछे छिपने लगता है, अस्तोन्मुख दिनमणि के किरण-जाल से जब पश्चिमी क्षितिज सुरंजित हो जाता है और उस लालिमा से असंख्य मेघखंड अपना रूप बदलने लगते हैं तथा देवलोक का भ्रम उत्पन्न करते हैं, तब स्मरण हो आता है बंगाल का आकाश और सूर्यास्त के समय का दृश्य। इससे पूर्व कौन जानता था कि इस काल्पनिक दृश्य में इतना सौन्दर्य छिपा है।

प्रभात की विचित्र वर्णछटा जब दिशाओं को आलोकित करते हुए अर्धनिमीलित नेत्रों पर आघात करते हुए कहती है "अन्धे जागो"— उस समय मुझे याद आती है सूर्योदय की कहानी। यह वही सूर्योदय है, जिसमें बंगाल के कवियों और साधकों ने बंगजननी का अन्तर्दर्शन प्राप्त किया था।

रहने दीजिए, सम्भवतः मैं पंडित बन गया हूँ, परन्तु यह पांडित्य नहीं है, कोरी बकवास है। बहुत दिन तक भावों का आदान-प्रदान रुक जाने से जो स्थिति होती है, यह उसी स्थिति का एक उदाहरण है। जिस प्रकार एंजिन थोड़ी सी भाप छोड़कर आत्मरक्षा करता है, ठीक वही हाल मेरा है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सेवा समिति का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। लैंसडाउन शाखा के साथ किसी प्रकार का मन-मुटाव होना उचित नहीं है। आशा है कि वह भी सुचारु रूप से कार्य कर रही होगी।

यदि दक्षिण कलकत्ता सेवाश्रम के अनाथालय के लिए आप कुछ कार्य कर सकें तो अति उत्तम होगा। ऐसा लग रहा है कि उसकी उन्नति वैसी नहीं हो रही जैसी कि होनी चाहिए परन्तु काम बहुत महत्वपूर्ण है।

आपको पहचानने में मुझे कठिनाई नहीं हुई। आशा है कि आप सब सकुशल होंगे। मेरी सप्रेम वार्ता और आलिंगन ग्रहण करें। इति।

१०६*

निरीक्षणोपरान्त पास किया गया
ह० अस्पष्ट
११-१-२७
डी० आई जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०, बंगाल।

रंगून सेन्ट्रल जेल
२०-१२-२६

श्रीचरणेषु—

माँ, बहुत दिन बाद आपका पत्र पाकर बड़ी शान्ति मिली। मैंने पहिला पत्र १३ सितम्बर को डाला था, दूसरा १७ नवम्बर को। सम्भवतः दोनों पत्र आपको मिल गये होंगे। आपका ३ दिसम्बर का पत्र आज मिला है। आज से पाँच-छः दिन पूर्व मैं माँडले जेल से यहाँ स्वास्थ्य-परीक्षा कराने के लिए आया था, सम्भवतः दो-चार दिन में माँडले फिर वापस चला जाऊँ।

जब मैं पत्र लिखने बैठता हूँ, न जाने लेखनी क्यों आगे नहीं चलती; विवश होकर थोड़ा सा लिखकर छोड़ देता हूँ। यह बात नहीं है कि पत्र लिखने से कारा-कष्ट असहनीय हो जायेगा। यह कहना सत्य नहीं है कि मुझे यहाँ कोई कष्ट नहीं, परन्तु जो कष्ट है वह तो है ही, न वह पत्र न लिखने से दूर होगा और न पत्र लिखने पर बढ़ ही जाएगा? पत्र पढ़कर कष्ट न होता हो ऐसी बात भी नहीं है, परन्तु क्या केवल कष्ट ही मिलता है? इन सब कड़वी-मीठी स्मृतियों को छोड़कर, जिनमें दर्द बहुत अधिक और सुख बहुत थोड़ा है, भला मैं कैसे जीवित रह सकूँगा? जब संन्यास नहीं लिया तब इतना दुखी होने पर भी बाहर की स्मृतियों को कैसे भूल सकूँगा? इसी लिए दुःख में भी उन्हें साथ रखना पड़ेगा।

आप एकान्तवास करना चाहती हैं, परन्तु क्या एकान्तवास से ही आपको शान्ति मिल जाएगी? कुछ समझ में नहीं आता? आपके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में दो-तीन दिन पूर्व एक समाचार-पत्र में पढ़ा था, तब इच्छा हुई थी कि तार भेजकर सब समाचार ज्ञात कर लूँ। फिर सोचा कि जब दो-एक दिन में यहाँ से जा ही रहा हूँ तब माँडले पहुँचकर ही समाचार प्राप्त करने का प्रयास करूँगा। इसी दौरान में मुझे आपका

* श्रीमती वासन्ती देवी के नाम।

पत्र प्राप्त हुआ ।

बन्दी की स्थिति में कितने दिन तक और रहना पड़ेगा, इस बात को तो केवल भगवान ही जानते हैं । चाहे कितने ही दिन क्यों न रहना पड़े, मुझे इससे जो सहनशक्ति प्राप्त हुई है, उससे मैं सन्तुष्ट हूँ । प्रायः सोचता हूँ कि मैं अभी बाहर जाने के लिए शरीर और मन से प्रस्तुत नहीं हूँ । जिस कार्य के हेतु भगवान ने मुझे यहाँ भेजा है, वह अभी पूरा नहीं हुआ । वैसे भी मेरी कारा-काल की शिक्षा अभी अधूरी ही समझिये । शान्त चित्त से जब कभी भी सोचता हूँ तभी यह विचार आता है कि मेरे लिए तो अब कारावास ही ठीक है । परन्तु मेरा मन हर समय इस बात को स्वीकार नहीं करता । केवल अपने परिजन ही नहीं अपितु बंगाल और समस्त भारत आज मेरे समीप एक मधुर उज्ज्वल स्वप्नवत् है । वास्तविक सत्य तो दूर हो गया । अब तो मैं स्वप्न को साथ लिए हुए हूँ । इस स्वप्न के पीछे जो वास्तविक सत्य है उसके लिए कभी-कभी हृदय व्याकुल हो उठता है । यद्यपि मेरे जैसे पाषाण-हृदय मनुष्य के लिए इस भाव को दबाये रखना सम्भव है, परन्तु मैंने पहले ही कह दिया है कि मैं अपने आपको संन्यासी नहीं मानता । इस कारण दुःख को अस्वीकार करने का अधिकार मुझे नहीं है ।

माँडले जेल

३०–१२–२६

जो पुरानी स्मृतियाँ मन में उठती रहती हैं और जिनसे मुझे यह लम्बा समय व्यतीत करने में सहायता मिलती है, उनमें व्यथा का अंश अधिक है, ऐसा नहीं लगता । वास्तविकता तो यह है कि उनमें सुख-शान्ति का अंश ही अधिक है, परन्तु वर्तमान के साथ तुलना करने पर ही व्यथा सजीव हो उठती है । मैं यह भी नहीं कह सकता कि उस व्यथा में कोई सुख नहीं है ।

मेरे एक मित्र ने आज से कुछ दिन पूर्व मुझे लिखा था—देशवासियों के आँसुओं में अपने आँसू मिलाकर हम व्यथा के बोझ को हल्का करते हैं, परन्तु वह सान्त्वना भगवान ने आपको नहीं दी । वास्तव में यह बात सत्य है । नीरवता और निर्धनता के वातावरण में आँसुओं की माला पिरोना बहुत ही कष्टप्रद होता है, परन्तु इस विपत्ति के समय भी हम किसी के काम नहीं आ सके, यह विचार भी कम कष्टदायक नहीं है ।

अपने आपको कर्म-क्षेत्र से दूर रखकर मेरे पास यह सोचने का कोई उचित कारण नहीं है कि "अपना व्यक्तिगत दुःख लेकर किसी को क्यों परेशान करूँ।" आपने लिखा था—"न मालूम तुम सबसे इस जीवन में मिलना भी होगा अथवा नहीं।" मैं इस सम्बन्ध में एकदम निराश नहीं हूँ। मैं हर प्रकार के दुःख उठाने को सदैव प्रस्तुत हूँ। यदि मातृ-भूमि के कल्याण के लिए मुझे जीवन भर कारागार में रहना पड़े तब भी मैं अपना कदम पीछे नहीं हटाऊँगा।

मैं अपने जीवन को एक सोद्देश्य कार्य के रूप में ले रहा हूँ। जीवन में सफलता या विफलता देना तो भगवान के हाथ में हैं। मुझे तो केवल इस बात का दुःख है कि यहाँ रहकर मुझे जितनी उन्नति करनी चाहिए थी, उतनी उन्नति न कर सका। फिर भी मेरे कारावास का समय व्यर्थ नहीं गया। आपने सत्य ही कहा है—"तुम्हारे निर्वासित जीवन के प्रतिघात भगवान स्वयं वहन कर रहा है ...... एक दिन यह समय भी समाप्त होगा ही।" इस बात का तो मुझे भी विश्वास है। "एक दिन सफलता के गौरव से जीवन गौरवान्वित होगा ही।" आपके इन सान्त्वनापूर्ण दुर्लभ शब्दों से मेरे हृदय की वाणी को अवलम्ब मिला है। मेरी तो यह धारणा है कि यदि कारागृह में ही सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़े तब भी मेरा जीवन व्यर्थ नहीं जाएगा, क्योंकि जीवन की सफलता का मापदंड तो हृदय का विकसित होना है, न कि बाह्य सक्रियता। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आपका स्नेहाशीर्वाद सदैव हमारी रक्षा करे और मैं सदैव सत्यमार्ग पर दृढ़ रहकर आपके आशीर्वाद के योग्य बन सकूँ।

उनका (देशबन्धु जी का) जीवन-चरित्र लिखने की कामना है परन्तु विश्वास नहीं होता कि लिख पाऊँगा। एक दो बार, जब कुछ लिखने का प्रयास किया तो केवल निराशा ही हाथ लगी। फिर भी सोचता हूँ कि उनके गम्भीर और अद्भुत चरित्र का जितना परिचय मुझे मिला है, उतना बहुत से अन्य लोगों को नहीं मिला। ऐसी बात नहीं है कि मैं अपनी जानकारी का लाभ दूसरों को देना नहीं चाहता। सत्येन बाबू कहते हैं कि उन्हीं ने कहा था कि श्रीयुत गिरिजाप्रसन्न रायचौधरी महाशय उनकी सही-सही जीवनी लिख सकते हैं। परन्तु यदि आप कुछ सामग्री दे सकें तो असमर्थ होने पर भी मैं प्रयास कर सकता हूँ। इस कार्य के लिए वास्तविक बाधा समयाभाव की नहीं, अपितु सामर्थ्य के अभाव की है। एक और कार्य भी करने की मैं सोचता हूँ,

वह है उनके द्वारा कारावास-काल में लिखे हुए नोट्स की सहायता से एक सम्बद्ध पुस्तक तैयार करना।

आज से कई दिन पहिले मँझले दादा के पत्र द्वारा आपके स्वास्थ्य का समाचार मिला था, जिसे जानकर मैं चिन्तित हूँ। आपकी मन:स्थिति कैसी भी क्यों न हो, किन्तु चिकित्सा के सम्बन्ध में और डाक्टरों तथा अन्य सबकी बातों से आपको इन्कार नहीं करना चाहिए। अपने स्वास्थ्य का आप ध्यान नहीं रखतीं। हम आपके हृदय की बात एकदम नहीं समझते, ऐसा नहीं है। आपका स्वास्थ्य हम सबके और देशवासियों के लिए कितना मूल्यवान है, यह बात आपको ज्ञात नहीं।

रंगून से लौटे सात दिन हो गए हैं। अब यहीं रहूँगा। हम सबका सादर प्रणाम स्वीकार कीजिए। मेरे स्वास्थ्य के लिए चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है, यह बात रंगून के डाक्टर ने कही है। माँ, अब मैं पत्र समाप्त करता हूँ। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१०७*

माँडले जेल
४–२–२७

प्रिय श्री वसु,

आपके १०/१९–१२–२६ के पत्र को पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपका यह पत्र यथा समय पहुँच गया था। आपने चुनावों एवं जन-सहानुभूति का जो उल्लेख किया है, उसे पढ़कर तो मैं आत्मविभोर हो गया हूँ। भाई मैं भी एक मानव हूँ—गीता के उपदेश को जानता हूँ, फिर भी मेरे लिये प्रेम और घृणा एक ही वस्तु नहीं हैं। मेरी जैसी स्थिति में कोई भी व्यक्ति किसी भी सम्बन्ध में आत्मा की स्वीकृति से अधिक न कुछ आशा कर सकता है और न कुछ प्राप्त ही कर सकता है। आपने कृपा करके जो प्रेमपूर्ण संदेश मेरे पास प्रेषित किया है, वैसी ही शुभ-कामना मैं भी आपके लिये करता हूँ। यद्यपि मुझे यह संदेश भेजने में कुछ विलम्ब हो गया है, आशा है फिर भी आप उसे स्वीकार करेंगे।

* श्री संतोष कुमार वसु के नाम।

आपने पिछले तीन वर्षों में कलकत्ते के करदाताओं के लिए बहुत काम किया है। मैं आशा करता हूँ उसी पवित्र कार्य को अविच्छिन्न रूप से आगे बढ़ाने के लिए आप आगामी चुनाव में फिर खड़े हो रहे हैं। निःसंदेह आपका निर्वाचन क्षेत्र पुनः आप में अपना विश्वास प्रमाणित करेगा। आपके प्रति मेरे मन में समुचित सम्मान और आदर की भावना है। इसके लिए मैं किसी प्रकार के प्रमाण की आवश्यकता अनुभव नहीं करता।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि अब की छुट्टियों में आपने जमशेदपुर की सैर का आनन्द लिया। मैं जमशेदपुर तो नहीं गया, हाँ राँची गया हूँ। मेरा अनुमान है, दोनों स्थानों के दृश्य बहुत कुछ समान होंगे।

किद्दरपुर क्षेत्र में स्थित 'मंशा' और 'मंशामाला' के विगत इतिहास पर आप अपने आगामी पत्र में और अधिक प्रकाश डालेंगे। उसके लिए मैं प्रतीक्षा करूँगा। मेरे विचार से, इस कार्य में कुछ उत्साही युवकों को लगा देना उपयोगी सिद्ध होगा। वे लोग यहाँ के पुराने निवासियों के पास जावेंगे, सूचनायें एकत्रित करेंगे और इनसे सम्बन्धित या तो कोई पुस्तिका प्रकाशित करेंगे अथवा पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर लेख देंगे।

मेरे विचार से धोबीखाना क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करना उचित नहीं है। इसके दो कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि वैद्य-शास्त्र पीठ के पास तो भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक बड़ा प्लाट होना ही चाहिये। दूसरा कारण यह है कि विधवा आश्रम का एक शिक्षा संस्था के निकट होना ठीक नहीं है। कृपया, कारपोरेशन में जब इन विषयों पर चर्चा हो तो उन दोनों पर गम्भीरता से विचार कीजिये। इस सम्बन्ध में मैंने मेजदादा को भी लिखा है। विधवा आश्रम के प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है। इस कार्य के लिए कहीं और अच्छा सा प्लाट ढूँढ लीजिये।

ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा अधिकारी महोदय शैक्षणिक सर्वेक्षण के लिए नियुक्त किये गये अधिकारी के चयन से संतुष्ट नहीं हैं।

सड़क-विभाग का केन्द्रीकरण करना कोई सरल कार्य नहीं होगा। मैं जानता हूँ कि सभी विभाग इसका विरोध करेंगे। फिर भी यह काम तो करना ही है।

डिप्टी मेअर महोदय के साथ जो व्यवहार हुआ उसके सम्बन्ध में तो आप और मैं एकमत हैं, परन्तु इस बात पर मुझे दुःख है कि उस

समय वहाँ अभद्र व्यवहार को नियन्त्रित करने वाला कोई भी व्यक्ति उपस्थित न था। रगून के समाचार-पत्रों से विदित हुआ है कि जाँच कमेटी डिप्टी मेअर महोदय को हटाना चाहती है। मुझे यह पढ़कर दुःख हुआ। मैं तो आशा करता हूँ कि यदि जाँच कमेटी ने ऐसा कोई प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो कारपोरेशन उसे अस्वीकार कर देगा। बिना किसी विवाद में पड़े हम यह कह सकते हैं कि शीघ्र ही कारपोरेशन भंग होने वाला है, परन्तु इस कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त तर्क की अपेक्षा है।

स्थानापन्न स्वास्थ्य अधिकारी डा० टी० एन० मजूमदार ने अब से कुछ दिन पूर्व मुझसे एक प्रमाण-पत्र माँगा था। इस बात को पढ़कर पहले तो मैं बहुत पशोपेश में पड़ा। मेरी समझ में ही न आया कि क्या करूँ? अन्त में मैंने यह सोचा कि यदि मैं कार्यालय में होता तो उस समय वह मुझ से प्रमाण-पत्र माँगने का अधिकारी था। अतः मैंने उसे एक साधारण सा प्रमाण-पत्र दे दिया। मेरे विचार से मना करना उचित न होता। फिर भी मैंने उसे यह समझा दिया है कि जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक वह इसका प्रयोग सरकारी कामों में न करे। मैंने उसे यह भी समझा दिया है कि औपचारिक रूप से कारपोरेशन तुम्हारे सम्बन्ध में मेरी राय माँगे तो अच्छा रहेगा।

मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आपकी उत्सुकता स्वाभाविक ही है, परन्तु उसके सम्बन्ध में जानकर तो आपको निराशा ही होगी। आजकल मेरा हाल तो पहिले ही जैसा है। हाँ इतना अवश्य है कि अब ज्वर बढ़ता ही जा रहा है। आपको इस सम्बन्ध में मेजदादा से सारा विवरण प्राप्त हो जावेगा। आप मुझे अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सीधी जानकारी न देने के लिये क्षमा करेंगे। आजकल तो मैं लम्बे पत्र लिखना पसन्द नहीं करता, क्योंकि पहले की अपेक्षा अब जल्दी थक जाता हूँ। परन्तु मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि मेरा उत्साह पहिले जैसा ही है और यदि ईश्वर ने चाहा तो आगे भी ऐसा ही रहेगा। कलकत्ते के समाचार पत्रों में मैंने अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कारपोरेशन में होने वाले वाद-विवाद का हाल पढ़ लिया है।

आशा है आप सकुशल होंगे।

आपका परम स्नेही
सुभाषचन्द्र वसु

माँडले जेल
७–२–२७

पूजनीया मँझली भाभी,

आपका १६ जनवरी का पत्र दिनांक २२ को मिला। साथ ही अशोक का पत्र भी मिला। बहुत दिन बाद आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। यहाँ अभी कुछ सर्दी है, सम्भव है इस मास के अन्त तक समाप्त हो जाए। मार्च के महीने में बसन्त समीर बहेगा और अप्रैल में नियमित रूप से गर्मी पड़ने लगेगी। गत वर्ष अप्रैल में ही सबसे अधिक गर्मी पड़ी थी।

हमारी फुलवारी में अनेक प्रकार के फूल खिले हैं परन्तु अधिकांश मौसमी फूल हैं। यह फूल बसन्त के अन्त में ग्रीष्म का ताप प्रारम्भ होने पर समाप्त हो जाएँगे। अब बाग की ओर देखने से हृदय प्रफुल्लित हो जाता है।

कल यहाँ हमने वीणावादिनी की पूजा की थी। यहाँ पर ही मूर्ति बनाई थी, वह अति सुन्दर बनी। इस देश में जो सरस्वती-पूजा करते हैं वे मूर्ति को गंगा में (अर्थात इरावती में) नहीं बहाते।

मेरी शारीरिक दशा के सम्बन्ध में सम्भवतः उस पत्र से ज्ञात हो गया होगा जो कि मैंने मँझले दादा को लिखा था। स्वास्थ्य पहले से गिरा है, भार कुछ घट गया है। अब मेरा भार कुल १३८ पौंड है। छोटे दादा आगामी बुधवार या बृहस्पतिवार को सम्भवतः यहाँ आ पहुँचेंगे।

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि नूतन मामा बाबू अब पहले से कुछ अच्छे हैं। अब वह कहाँ हैं? उनका पता लिखना।

सम्भवतः सरस्वती-पूजा की छुट्टी में पिता जी कलकत्ता आए होंगे।

हमारे कबूतरों की वंशवृद्धि खूब हो रही है। इसके साथ ही कबूतरों के काबुक भी बढ़ाने पड़ रहे हैं। मुर्गी-मुर्गों की संख्या भी बहुत बढ़ रही है। (इससे हिन्दुत्व तो नष्ट नहीं होगा!) दो-तीन विलायती मुर्गे-मुर्गियों से थोड़े ही दिनों में कैसे एक झुंड उत्तम जाति के मुर्गे-मुर्गी हो जाते हैं यह हमने अपनी आँखों से देख लिया। कबूतरों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है; परन्तु मोरपंखियों को हम बचा नहीं पाये।

*श्रीमती विभावती वसु के नाम।

वे सब एक-एक करके मर गये। तोता जीवित है, किन्तु किसी से अपने मन का सुख-दुःख कह नहीं सकता। अनेक प्रकार की ध्वनि करने पर एक सीटी बजाता है। उसने अभी बोलना नहीं सीखा। सम्भव है आगे सीख ले।

मुझे यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि अभय आश्रम की दुकान पर आपका सूत खो गया। आशा है कि इस घटना से आप निराश न होंगी। कुछ दिन में अशोक की लम्बी छुट्टियाँ होंगी, तब वह भी अवसर के अनुसार सूत कात सकेगा। अशोक के पत्र का उत्तर मैं बाद में दूँगा।

सरकार बहादुर ने हमें सूचित किया है कि जनवरी १९२५ को दो वर्ष बीत जाने पर भी आर्डिनेन्स लागू रहेगा।

आशा है कि आप सकुशल होंगे। मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिये और गुरुजनों को भी प्रणाम कहियेगा। इति।

सुभाष

पश्च-लेख :

छोटे दादा से मिलना। डाक्टरी परीक्षा यहाँ होगी या रंगून में, यह अभी निश्चित नहीं हुआ। यदि रंगून में हुई तो जाना पड़ेगा।

सुभाष

१०६*

सेवा में,

परमश्रेष्ठ राज्यपाल, बर्मा।

द्वारा, श्री अधीक्षक, रंगून जेल तथा श्री महानिरीक्षक जेल

महामान्य,

आपका ध्यान आज प्रात:काल की घटना की ओर आकर्षित कर रहा हूँ। इस घटना से मुझे बड़ा दु:ख पहुँचा है। मैंने श्री सोलोमन, मुख्य जेलर के पास, आज प्रात: निम्नलिखित नोट भेजा था :

श्री सोलोमन,

कृपया १४ और १५ मार्च का 'इंग्लिशमैन' मँगवा दीजिए और कृपया इस बात का ध्यान रखिये कि वह मेरे पास नाश्ते के लिए आपके जाने से पूर्व ही पहुँच जावे।

सुभाष

१६–३–२७

लगभग डेढ़ घण्टे के उपरान्त, मेरा भेजा हुआ कागज का पुर्जा ही मेरे पास वापस लोटा दिया गया। उस पुर्जे के नीचे अधीक्षक महोदय के हाथ से लिखी हुई एक टिप्पणी थी और हस्ताक्षर थे।

"श्री वसु से अनुरोध है कि वे मेरे मुख्य जेल अधिकारी को आज्ञा न दिया करें।"

ह० आर० ई० फ्लावरड्यू

१६–३–२७

(लघु-हस्ताक्षर स्पष्ट नहीं हैं, परन्तु मेरा अनुमान है कि मैंने उन्हें सही-सही समझ लिया है।)

मैं नहीं समझता कि मुख्य जेल अधिकारी श्री सोलोमन को मेरा भेजा हुआ कागज का पुर्जा किस रूप में अपमानजनक लगा।

* बर्मा के राज्यपाल के नाम दो पत्र।

मैं तो बंगाल सरकार के अध्यादेश के अन्तर्गत २।। वर्ष से बन्दी हूँ। मैंने बंगाल और बर्मा की बहुत-सी जेलें भी देखी हैं। मैंने तो सदा ही जेल अधिकारियों के पास अपने अधियाचनों को इसी रूप में भेजा है, जिस रूप में मैंने आज प्रातःकाल श्री सोलोमन को लिखा था। यहाँ तक कि रंगून जेल में, जहाँ मुझे लगभग डेढ़ महीने से ऊपर हो गया है, वहाँ भी प्रतिदिन लगभग इसी भाँति लिखता रहा हूँ, परन्तु आज तक मैंने किसी को यह कहते नहीं सुना है अथवा नहीं देखा है कि मैं अशिष्ट हूँ अथवा किसी को हुक्म देता हूँ, जैसा कि श्री फ्लावरड्यू की धारणा है।

मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूँ कि मेरा अंग्रेजी भाषा का ज्ञान बिल्कुल गया बीता नहीं है अन्यथा १९२० की आई० सी० एस० की खुली प्रतियोगिता में अंग्रेजी के निबन्ध में प्रथम स्थान न प्राप्त किया होता। मैं तो हिम्मत के साथ यह कह सकता हूँ और दावा करता हूँ, हालाँकि श्री फ्लावरड्यू एक ब्रिटिशर हैं—और मैं एक भारतीय हूँ—फिर भी अंग्रेजी भाषा और साहित्य का मेरा ज्ञान उनकी अपेक्षा कहीं अधिक गहन है।

मुझे समाज में अपनी हैसियत और भारत के जन-जीवन में अपने स्थान का भी बोध है, परन्तु उन वास्तविकताओं का स्मरण करके मुझे बड़ा दुःख होता है, क्योंकि यहाँ रंगून जेल की चार दीवारी के अन्दर तो मैं छोटे बड़े सभी जेल अधिकारियों की दया पर आश्रित हूँ, यद्यपि मुझे अपनी सभी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति कराने का अधिकार वैध रूप से है, जिसमें समाचार-पत्र भी सम्मिलित हैं और जेल अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि वे सरकारी आदेशानुसार हमें यह सब वस्तुएँ दें। मैं इस बात से भी अनभिज्ञ नहीं हूँ कि सरकार जेल अधिकारियों को इसी बात का वेतन देती है कि वे हम जैसे बन्दियों की सुख-सुविधा का ख्याल रक्खें। साथ ही मैं जेल अधिकारियों को आज्ञा देने की धृष्टता भी नहीं कर सकता। कलकत्ता कारपोरेशन के मुख्य अधिशासी अधिकारी की हैसियत से मेरा जो व्यवहार अपने आधीन कर्मचारी-वर्ग के प्रति रहा है, उसी अनुभव के आधार पर मैं यह विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। आप तो इस बात से परिचित ही होंगे कि एक अफसर होने की हैसियत से मेरे नीचे, उच्च शिक्षित एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कई यूरोपीयन अफसर रहे हैं। उनमें से कुछ तो मेजर फ्लावरड्यू से दुगना वेतन पाने वाले भी अफसर हैं। अतः मैं यह जानता हूँ कि मातहत कर्मचारियों को किस प्रकार आज्ञा दी जाती है, और उस अनुभव के आधार पर निःसंकोच रूप

से मैं यह कह सकता हूँ कि कोई भी न्याय-प्रिय व्यक्ति मेरे उस नोट का, जिसका कि मैंने ऊपर उल्लेख किया है, यह अर्थ कदापि नहीं निकाल सकता कि मैंने जेल अधिकारी श्री सोलोमन को कोई आदेश दिया है।

पत्र समाप्त करने से पूर्व संक्षेप में, मैं व्यक्तिगत रूप से एक निवेदन और करना चाहूँगा। सरकारी नियमों के अनुसार मैं कलकत्ता के 'इंग्लिशमैन' समाचार पत्र को पाने का अधिकारी हूँ और उस पत्र को मँगवाकर देना जेल अधिकारियों का कर्तव्य है। जब मैं माँडले जेल में था तब नियमित रूप से यह समाचार-पत्र मेरे पास पहुँचा करता था। इसे प्राप्त करने के लिए हर बार मुझे कहना नहीं पड़ता था। परन्तु रंगून के जेल अधिकारी लापरवाह हैं, तभी तो हर बार कलकत्ते की डाक यहाँ पहुँचने के समय, जेल अधिकारियों को इस समाचार-पत्र को भिजवाने के लिए याद दिलाना पड़ता है। अपने अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि जब कभी मैंने उनको याद नहीं दिलवाई तभी मुझे यह समाचार-पत्र प्राप्त नहीं हुआ। मुझे कई बार जेलरों से, समाचार-पत्र भेजने विषयक अनियमितताओं के लिए शिकायतें भी करनी पड़ीं और कम से कम एक बार तो इस सम्बन्ध में मैंने मेजर फ्लावरड्यू से स्वयं भी कहा था। इन्हीं दिक्कतों के कारण, जब-जब कलकत्ते की डाक यहाँ बटती थी, प्रतिदिन मुख्य जेलर महोदय के पास, एक ज्ञापक भेजने की मैंने एक आदत बना ली थी और मेरा ज्ञापक भेजने का वह क्रम आज प्रातःकाल तक ठीक प्रकार से चलता रहा था।

इस बात को सुपरिन्टैन्डैन्ट महोदय, डिप्टी सुपरिन्टैन्डैन्ट महोदय, मुख्य जेल अधिकारी तथा अन्य दूसरे अफसर जानते हैं कि इस जेल में मैं बिल्कुल अकेला हूँ और किसी प्रकार का कोई भी साथी मेरे पास नहीं है। इसीलिये समाचार-पत्र पढ़कर किसी न किसी प्रकार अपना समय बिता लेता हूँ। जेल अधिकारी यह भी जानते हैं कि मेरे पास पुस्तकों एवं पत्रिकाओं की संख्या भी बहुत थोडी है, क्योंकि माँडले जेल अधिकारी ने केवल उतनी ही पुस्तकें लाने की अनुमति दी, जो तीन दिन के लिए पर्याप्त थीं। अतः मुझे तो जेल अधिकारियों की कृपा से प्राप्त होने वाले समाचार-पत्रों के सहारे ही समय बिताना पड़ता है। जिस समय मैंने श्री सोलोमन के लिए ज्ञापक लिखा, उस समय मुझे अकेलापन खटक रहा था। इसीलिये मैंने प्रातःकाल ही उनके नाश्ते के लिए जाने से पूर्व (११–३० प्रातः से पूर्व ही) समाचार-पत्रों को अपने पास भेजने के लिए कहा था।

जितना भी थोड़ा बहुत व्यावहारिक ज्ञान मेरे पास है, उसी के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि यदि मेरा मन्तव्य मुख्य जेल अधिकारी को आज्ञा देने का होता तो एक ही वाक्य में मैंने दो स्थानों पर 'कृपया' शब्द का प्रयोग न किया होता। केवल इतना ही नहीं, यदि मेरा इरादा आदेश देने का हुआ होता तो मैंने 'श्री सोलोमन' न लिखकर 'मुख्य जेल अधिकारी' लिखा होता।

देश के कानून के अन्तर्गत मैं नज़रकैद हूँ और इस नाते मैं अपने पद एवं जीवन में स्थिति के अनुरूप व्यवहार प्राप्त करने का अधिकारी हूँ। इसीलिए मैं महसूस करता हूँ कि रंगून जेल के सुपरिन्टैन्डैन्ट मेजर फ्लावरड्यू ने अनाधिकार रूप से मेरी भावनाओं को चोट पहुँचाई है और अपने आधीनस्थ कर्मचारियों की दृष्टि में उन्होंने ऐसी टिप्पणी लिखकर मेरा अपमान किया है। उनकी लिखी हुई टिप्पणी प्रत्येक न्यायप्रिय एवं विवेकी व्यक्ति की दृष्टि में अशिष्ट एवं अपमानजनक ठहरेगी। इस समय मेरी बुद्धि यह निश्चय नहीं कर पा रही कि जेल अधिकारियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करूँ। अब तो मैं यही अच्छा समझता हूँ कि जेल अधिकारियों को कुछ न लिखूँ और अपनी आवश्यकताओं का परित्याग कर दूँ अन्यथा और अधिक बेइज़्ज़ती सहन करनी पड़ेगी।

मैं अनुचित रूप से भावुक नहीं हूँ। आपको यह बात इस तथ्य से स्पष्ट हो जावेगी कि पिछले २॥ वर्ष में केवल यह दूसरा ही अवसर है कि मुझको एक आई० एम० एस० अफसर के विरुद्ध अशिष्ट व्यवहार की शिकायत करनी पड़ी। मैं आपसे इतना निवेदन करके पत्र को समाप्त करता हूँ कि आप मेरे प्रति न्याय करें और मेजर फ्लावर ड्यू से अपने शब्द वापस लेने और पश्चात्ताप व्यक्त करने के लिए कहें।

मैं हूँ
आपका सर्वाधिक आज्ञाकारी सेवक
सुभाषचन्द्र वसु
बी० ए० (कैन्टैब)
मुख्य अधिशासी अधिकारी,
कलकत्ता कारपोशन एवं
सदस्य, बंगाल विधान-परिषद्।

रंगून जेल
१९ मार्च १९२७

११०

सेवा में,

परम श्रेष्ठ राज्यपाल, बर्मा।

द्वारा, श्री अधीक्षक, रंगून जेल तथा श्री महानिरीक्षक जेल

रंगून

दिनाङ्क २१ मार्च १९२७

महामान्य,

आपके पास, मैंने १९ मार्च १९२७ को मेजर फ्लावरड्यू, जेल अधीक्षक, रंगून के विरुद्ध एक विशेष परिवाद भेजा था। उस पत्र में मैंने जानबूझ कर अपनी अन्य शिकायतों का वर्णन नहीं किया था, क्योंकि मैं इस वाद पत्र को जटिल नहीं बनाना चाहता था। अब मैं अन्य तथ्यों को प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिससे आपको ज्ञात हो जावेगा कि इस अल्प अवधि में, जबसे मैं रंगून जेल में आया हूँ, मेरे साथ कैसा व्यवहार किया जा रहा है।

जब पिछले वर्ष में यहाँ दिसम्बर के महीने में आया था और मेजर फ्लावरड्यू से मेरी पहली मुलाकात हुई थी तभी मुझे सचेत किया गया था कि मैं बाहर के लोगों से कदापि पत्र-व्यवहार नहीं करूँगा। उस चेतावनी का स्वरूप, वह भाषा जिसमें वह व्यक्त की गई थी, और कहने का ज़ोरदार लहज़ा, ये सब बातें मेरे जैसे नज़रबन्द कैदी के लिये केवल उपेक्षापूर्ण ही नहीं थीं वरन् अपमानजनक भी थीं। मैं कितने ही आई० एम० एस० अफसरों से मिला हूँ। बंगाल और बर्मा की बहुत सी जेलों में भी रहा हूँ, परन्तु कभी भी इस चेतावनी के साथ मेरा स्वागत नहीं किया गया था। मैं इस बात को नहीं जानता था कि मेजर फ्लावर-ड्यू इतने मन्द-बुद्धि हैं कि वे यह भी नहीं समझते कि मेरे जैसे व्यक्ति को जो स्वयं एक उच्च अधिकारी भी है एवं समाज में अपना विशिष्ट स्थान भी रखता है, इस प्रकार की चेतावनी देना कहाँ तक उचित है। परन्तु मैंने उस समय बड़े संयम से काम लिया, मैं तनिक भी उत्तेजित नहीं हुआ। मैंने उस स्थिति को सँभालते हुए, मुस्कराहट के साथ यही उत्तर दिया, "मैं काफ़ी दिन जेल में रह चुका हूँ, और इन सब बातों को जानता हूँ।"

गत दिसम्बर में जब मैं रंगून जेल में आया तो मेजर फ्लावरड्यू ने मेरे रोग की परीक्षा एवं उसकी चिकित्सा की ओर भी कोई ध्यान

नहीं दिया। बल्कि उनकी दृष्टि में मेरा रोग कोई रोग ही नहीं है। मैंने उनसे कहा कि मुझे हरारत रहती है, मैंने उन्हें अपना ताप-चार्ट भी दिखलाया था। इस पर उन्होंने टीका करते हुए कहा था, "परन्तु ताप है कहाँ?" संभवतः उनका अभिप्राय इससे था कि जब तक तापमान १०१ अथवा १०२ अंश तक न पहुँच जावे तब तक इस ओर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भी यह मेरा सौभाग्य था कि रंगून सार्वजनिक अस्पताल के वरिष्ठ चिकित्सक कर्नल कैल्सल ने मेरी ओर समुचित ध्यान दिया। थोड़े समय के लिए मैंने भी मेजर फ्लावर-ड्यू की बात को भुला दिया।

पिछले वर्ष फरवरी के महीने में जब दोबारा रंगून जेल में आया तब मैं अधीक्षक के कार्यालय में अपनी उपस्थिति की सूचना देने गया। उस समय, जब मैं उनसे थोड़ी सी बातें कर रहा था, उन्होंने मुझे बैठने के लिये कुर्सी तक न दी। ऐसी स्थिति में वहाँ से शीघ्र खिसकना ही मैंने अच्छा समझा। मेरे २।। वर्ष के जेल जीवन में यह प्रथम अवसर था जबकि एक जेल अधीक्षक ने कुर्सी तक न देने की अभद्रता दिखलाई हो। मैं आप तक यह परिवाद भेजने का साहस इसलिये कर रहा हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि सरकार कभी भी इस बात का अनुमोदन नहीं करती कि अफसर लोग किसी के साथ अभद्र व्यवहार करें। साथ ही मैं यह भी जानता हूँ कि इस प्रकार के अभद्र व्यवहार का उदाहरण अपवाद रूप से कहीं-कहीं मिलता है।

इस बार मेजर फ्लावरड्यू ने मेरी ओर कितना ध्यान दिया है और मेरी बीमारी के दौरान में चिकित्सा संबंधी कितनी दिलचस्पी दिखलाई है वह केवल इतना पूछने से ज्ञात हो जावेगा कि पिछले ४० दिन में वे मुझे कितनी बार देखने आये? साधारणतः सप्ताह में एक बार, सोमवार के दिन वह बन्दियों को देखने आते हैं और कभी कभी तो उन्हें चक्कर लगाये एक पखवाड़ा तक बीत जाता है और उनके दर्शन तक नहीं होते। गत सोमवार १४ मार्च को वह निरीक्षण के लिए आये थे। उन्होंने मेरी कोठरी के दरवाजे से झाँक कर पूछा, "कहिये आपका स्वास्थ्य ठीक है न?" मेरी वर्तमान अवस्था को देखते हुए यह प्रश्न इतना अनुचित था कि मैंने केवल मुस्करा कर उत्तर दिया, "धन्यवाद!" या तो इस प्रश्न को यह कह कर उचित कहा जा सकता है कि वे जान-बूझ कर मेरे रोग को कुछ नहीं समझ रहे थे या इस आधार पर उचित कहा जा सकता है कि उनको इस बात का पता ही न था कि मुझे

रोज बुखार हो जाता है। मेरा भार भी कम हो रहा है, मुझे मंदाग्नि हो गई है और सारे शरीर में दर्द रहता है। यदि बाद वाली कल्पना को सही मान लिया जावे तो इससे उन्हें चोट पहुँचेगी, क्योंकि वास्तविक तथ्य तो यह है कि मेरे भार को सतर्कतापूर्वक रिकार्ड किया जाता है, हर चार घंटे बाद ताप नापा जाता है और समय समय पर सहायक डाक्टरों द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य बातों को भी रिकार्ड किया जाता है। स्पष्ट है, जहाँ ऐसा हृदय-हीन अधिकारी हों वहाँ किसी प्रकार की कोई सहानुभूति अथवा उचित चिकित्सा की बात सोचना ही व्यर्थ है। इसी लिये पिछले ४० दिनों में (आज प्रातःकाल तक) मेरी कोई चिकित्सा नहीं की गई।

अलहदगी की सीमा का अनुमान तो आप इस तथ्य से लगा सकते हैं कि वार्ड के अन्य बन्दियों को शारीरिक दण्ड का भय दिखलाकर मेरे साथ बातचीत करने से भी रोक दिया गया है। एक अवसर पर सहायक जेल अधीक्षक श्री सदरलैण्ड ने एक नये बन्दी की, जो यहाँ के नियमों से परिचित नहीं था, शिकायत इसलिये की कि वह बन्दी मेरे परिचारक से यह पूछ रहा था कि अमुक स्नानागार सर्व साधारण के प्रयोग के लिये है अथवा नहीं।

मैं इस व्यवहार के, जो मेरे साथ यहाँ किया जा रहा है, और उस व्यवहार के अन्तर को, जो दूसरे स्थानों पर अन्य आई० एम० एस० अफसरों ने मेरे साथ किया, खूब अच्छी तरह से जानता हूँ। रंगून सार्वजनिक अस्पताल के मेजर कौरमक ने, जिन्होंने मेरा एक्सरे लिया था, भी यहाँ के जेल अधीक्षक की अपेक्षा, मेरे प्रति अधिक दिलचस्पी दिखलाई थी और जब कभी भी वह मुझे बाहर मिले तो उन्होंने सदा ही मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में विस्तृत पूछताछ भी की।

आपकी जानकारी में मैं ऐसी छोटी-छोटी बातें लाना नहीं चाहता था, परन्तु हाल ही में घटित घटनाओं को सामने रखते हुए मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि यदि मैं इन घटनाओं को आपके सामने नहीं रखता हूँ तो अपने प्रति अन्याय करता हूँ। आप यहाँ के शासन के सर्वोच्च अधिकारी हैं। अतः आपको सूचित करना आवश्यक है कि जब से मैं रंगून जेल में हूँ तब से मुझे तनिक भी आराम नहीं मिला।

आपका सर्वाधिक आज्ञाकारी सेवक
सुभाषचन्द्र वसु
चीफ एक्जीक्यूटिव आफीसर, कलकत्ता कारपोरेशन
तथा सदस्य, बंगाल विधान-परिषद्।

१११*

रंगून सैन्ट्रल जेल
२२-३-२७

आदरणीय भाई साहब,

आजकल यहाँ के जेल अधीक्षक मेजर फ्लावरड्यू के साथ मेरी ठीक तरह से नहीं पट रही है, क्योंकि मेरे प्रति उनका व्यवहार अभद्रता-पूर्ण है। अतः मैंने जेलों के महानिरीक्षक से निवेदन किया है कि वह इनसीन अथवा माँडले जेल में तब तक के लिए मेरी बदली कर दें जब तक कि इस सम्बन्ध में उन्हें अंतिम आदेश प्राप्त हो। कल मैंने महानिरीक्षक के नाम एक तार भी दिया था। इस तार की प्रतिलिपि मैं आपके पास सीधी अथवा कलकत्ता सी० आई० डी० के द्वारा भेजना चाहता था।

१० मार्च के तार के उपरान्त आपकी कोई सूचना उपलब्ध नहीं हुई। बड़ी चिन्ता है। मैंने महानिरीक्षक से अन्तिम आदेश प्राप्त होने तक के लिए, इनसीन अथवा माँडले जेल में बदली करने के लिए निवेदन किया है। कारण है रंगून जेल के अधीक्षक का मेरे प्रति अभद्र व्यवहार। मेरा स्वास्थ्य पहले से अधिक खराब हो गया है। सबके स्वास्थ्य के विषय में तार द्वारा सूचित कीजिये।

कल बंगाल विधान परिषद् में, मुझे कारागार से मुक्त करने के सम्बन्ध में जो विवाद हुआ था और उस अवसर पर श्री मोबरले का जो भाषण हुआ था, उसका विस्तृत विवरण आज मैंने रंगून के समाचार पत्रों में पढ़ा। इस सम्बन्ध में मुझे कोई सरकारी सूचना प्राप्त नहीं हुई है और न आपका तार ही मिला है।

आशा है आप सब लोग सकुशल होंगे। माता जी, पिता जी का क्या हाल है?

मैंने छोटे दादा को अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अलग से लिखा है।

आपका परम स्नेही
सुभाष।

* श्री शरत्चन्द्र वसु के नाम।

११२*

रंगून सैन्ट्रल जेल
२३—३—२७
(द्वारा डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०,
१३, एलीसियम रो,
कलकत्ता)

सेवा में,
श्री जे० एम० सेनगुप्त,
बी० ए०, एल-एल० बी० (कैन्टैब), एम० एल० सी०,
मेअर, कलकत्ता कारपोरेशन,
१०/४, एलगिन रोड, कलकत्ता।

श्रीमान् जी,

मैंने आपके पते पर, सोमवार २१ मार्च को जेल महा-निरीक्षक रंगून के द्वारा निम्नलिखित तार भेजा था और उनसे निवेदन किया था कि वे चाहें तो इस तार को सीधा आपके पास भेज दें अथवा कलकत्ते के गुप्तचर विभाग द्वारा भिजवा दें। मुझे आशा है अब तक यह तार आपको प्राप्त हो गया होगा।

तार

श्री सेनगुप्त मेअर कलकत्ता

कृपया बंगाल सरकार से निवेदन कीजिए कि वह मुझे रंगून जेल से बदलकर अन्यत्र भेज दे। जेल अधीक्षक का व्यवहार अभद्र है। उसे रोका जावे। यदि आप आवश्यकता समझें तो दिल्ली भी खबर भेज दें।

वसु
चीफ एक्जीक्यूटिव आफीसर

इस सम्बन्ध में मैंने दो प्रतिवेदन बर्मा के राज्यपाल महोदय के पास भी भेज दिये हैं, जिनमें जेल अधीक्षक के व्यवहार की चर्चा की गई है, परन्तु आपके पास यह पत्र लिखने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि

* श्री० जे० एम० सेनगुप्त के नाम।

कहीं बर्मा सरकार, बंगाल सरकार की आज्ञा के बिना स्थानान्तरण न करे। उस स्थिति में आप श्री मोबरले से कहकर अथवा उनको लिखकर यह कार्य करा सकते हैं।

मैं अन्य किसी भी जेल में जाने के लिए सहमत हूँ—चाहे वह इनसीन जेल हो अथवा माँडले जेल—यहाँ तो मैं एक क्षण भी और अधिक ठहरना पसन्द नहीं करूँगा।

बंगाल विधान परिषद् की २१ मार्च की बैठक में श्री मोबरले ने मेरे मुक्त कराने के सम्बन्ध में जो जो शर्तें रक्खी थीं, वह वक्तव्य रंगून के समाचार-पत्रों में छपा है। उसे मैंने भी पढ़ा है।

मेरा मतभेद तो जेल अधिकारियों के साथ पिछले कुछ दिनों से चल ही रहा था, परन्तु १६ मार्च को बात पूरी तरह से बढ़ गई।

आपका सर्वाधिक आज्ञाकारी सेवक
एस० सी० वसु
चीफ एक्ज़ीक्यूटिव आफीसर

११३*

रंगून सैन्ट्रल जेल
२३–३–२७
(द्वारा डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०,
१३, एलीसियम रो, कलकत्ता।)

आदरणीय पंडित जी,

मैंने आपके पते पर २१ मार्च को जेल महानिरीक्षक रंगून के द्वारा निम्नलिखित तार भेजा था और उनसे निवेदन किया था कि चाहें तो वे इस तार को सीधा आपके पास भेज दें अथवा सी० आई० डी० कलकत्ता के द्वारा भिजवा दें। मुझे आशा है कि यह तार अब तक आपको प्राप्त हो गया होगा।

* पं० मोतीलाल नेहरू के नाम।

तार

पं० मोतीलाल नेहरू, दिल्ली

कृपया रंगून जेल से मेरा अन्य किसी जेल को शीघ्र ही स्थानान्तरण करने के लिए गृह-मन्त्री के समक्ष उपस्ताव रखिये। कारण जेल अधीक्षक का अभद्र व्यवहार।

सुभाष

झगड़ा तो पिछले कुछ दिनों से चल रहा था, परन्तु शनिवार १६ ता० को इसने उग्र रूप धारण कर लिया। मैं जानबूझकर इस विवरण को नहीं दे रहा हूँ अन्यथा उसी आधार पर यह पत्र रोक लिया जावेगा।

इस सम्बन्ध में अपने साथ जो-जो व्यवहार हुआ है उसकी चर्चा करते हुए, दो प्रतिवेदन बर्मा के राज्यपाल महोदय के पास भी भेज दिए हैं। आपके पास यह पत्र लिखने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि यदि बर्मा की सरकार कहे कि वह दिल्ली की आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं कर सकती तो उस स्थिति में आप सर एलैक्जैण्डर मूडीमैन के समक्ष सब बातें रखकर मेरी सहायता कर सकते हैं। मैं किसी भी जेल में जाने के लिए तैयार हूँ––चाहे इनसीन जेल हो, चाहे माँडले––परन्तु यहाँ ठहरना पसन्द नहीं करता।

आशा है अधिवेशन में बहुत व्यस्त होते हुए भी आप स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त होंगे।

पूर्ण श्रद्धा के साथ—

आपका परम स्नेही

सुभाष

पं० मोतीलाल नेहरू

दिल्ली

पश्च-लेख :

२१ मार्च को राजनैतिक बन्दियों के सम्बन्ध में सर एलैक्जैन्डर का वक्तव्य बंगाल विधान परिषद् के समक्ष प्रस्तुत हुआ। उसका विवरण रंगून के समाचार-पत्रों में छपा था। उसको भी मैंने पढ़ा है।

सुभाष

११४*

इनसीन सेन्ट्रल जेल
४ अप्रैल १६२७

परम पूजनीय मँझले दादा,

आप निश्चित ही यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि श्री मोबरले के प्रस्ताव के सम्बन्ध में मेरा क्या मत है? मैं समझता हूँ कि इस सम्बन्ध में मेरे मत प्रकट करने का समय भी आ गया है। कह नहीं सकता कि मेरा मत आपके मत से मिलेगा अथवा नहीं। मेरे मत का मूल्य कुछ भी क्यों न हो फिर भी मैं उसे व्यक्त कर रहा हूँ।

मैंने श्री मोबरले के मत को बार-बार ध्यान से पढ़ा है। उनके द्वारा कहे हुए प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक शब्द के सम्बन्ध में सोचा है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि उन्होंने अत्यन्त सावधानी के साथ अपने वक्तव्य का सृजन किया है। उनके प्रस्ताव के सभी पक्षों पर धैर्यपूर्वक विचार करने के उपरांत ही मैं अपना मत प्रकट कर रहा हूँ। मैंने क्षणिक आवेश में आकर कोई बात निश्चय नहीं की है। अब मैं आपको जो कुछ लिख रहा हूँ वह गम्भीर चिन्तन के पश्चात् ही किया हुआ निश्चय है, परन्तु फिर भी यदि मुझसे कोई त्रुटि हो गई हो, अर्थात् तर्क में कुछ जोड़ना भूल गया होऊँ तो मैं उसे स्वीकार करके पुर्नविचार करने को प्रस्तुत हूँ।

यह बात मैं पहले ही कहे देता हूँ कि मैं श्री मोबरले की स्पष्ट-वादिता का प्रशंसक हूँ। मेरा अनुमान है कि यदि मैं उनकी ही भाँति स्पष्ट रूप से सम्पूर्ण बातों पर प्रकाश न डाल सकूँ तो बहुत अनर्थ हो जावेगा। तब आप कहेंगे कि मैंने अपना कर्त्तव्य सुचारु रूप से पालन नहीं किया। स्पष्टवादिता में मैं विश्वास करता हूँ। मेरे विचार से सब बातें स्पष्ट कहने से अन्त में दोनों ही पक्षों को लाभ होता है।

'श्री मोबरले की कई बातों के लिए मैं उन्हें धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता। जहाँ वह कहते हैं कि मेरे अतीत की कहानी और भविष्य के कार्य-क्रम के सम्बन्ध में वह कोई स्वीकारोक्ति नहीं चाहते, वहाँ वह यह भी कहते हैं कि यदि मैं प्रतिज्ञाबद्ध होकर कहूँ तो वे मुझे मुक्त कर देंगे। अन्त में वह कहते हैं कि प्रारम्भ में यह प्रस्ताव

* श्री शरत्चन्द्र वसु के नाम।

मेरे सामने इस कारण नहीं रखा गया कि कहीं मैं यह न सोच लूँ कि प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए मुझे विवश किया जा रहा है। यह सब बातें पढ़कर मैंने समझ लिया है कि वे मुझे एक सम्मानित एवं भद्र पुरुष के रूप में मान्यता दे रहे हैं। उनके इस प्रस्ताव को निम्नलिखित कारणों से स्वीकार न करने पर भी मैं प्रस्ताव के सम्मानप्रद अंशों को स्वीकार करता हूँ। बंगाल विधान परिषद् के सदस्य के रूप में मैं माननीय मोबरले महोदय के इस प्रकार के व्यवहार की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। मेरे विचार में परिषद् के सदस्यों पर विश्वास रखकर उनके समक्ष इस प्रकार का प्रस्ताव रखने का यह प्रथम अवसर है।

मेरे विचार से श्री मोबरले को अपने प्रस्ताव के पक्ष में और कुछ कहना नहीं पड़ेगा।

सर्व प्रथम तो मैं आप लोगों के एक भ्रम का निराकरण करना चाहता हूँ। छोटे दादा (डॉ० सुनीलचन्द्र वसु) की रिपोर्ट के प्रकाशन से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझसे उन्होंने इस सम्बन्ध में कोई परामर्श नहीं किया कि रिपोर्ट लिखने के पूर्व और उपरांत वह क्या लिखेंगे। यदि मुझे पहले से ज्ञात होता तो मैं निश्चित रूप से स्विट्जरलैंड भेजे जाने के प्रस्ताव के विपक्ष में मत देता।

इस प्रकार का प्रस्ताव तैयार करके भेजने के उपरांत जब उन्होंने मुझे बताया तभी मुझे शंका हुई थी कि इसका परिणाम शुभ नहीं होगा और आगे चलकर मेरी आशंका सत्य सिद्ध हुई। छोटे दादा, डॉक्टर के रूप में मेरी परीक्षा करने अवश्य आए थे और मेरे विचार से एक सच्चे चिकित्सक और अभिज्ञ वैज्ञानिक के समान ही उन्होंने व्यवहार भी किया था। उनके प्रस्ताव की किसी प्रकार की राजनैतिक व्याख्या भी हो सकती है और सरकार उसका किस प्रकार राजनैतिक चाल चलने के लिए उपयोग करेगी, इन बातों पर विचार करना उनके लिए आवश्यक नहीं था। इस बात के लिए मैं भी उनके कार्य की निन्दा नहीं कर सकता। उनके कई रोगी स्विस आरोग्य निवास में रहकर रोगमुक्त हुए थे, यह देखकर ही उन्होंने मेरे सम्बन्ध में भी यह प्रस्ताव रक्खा था। संभवतः क्षय के किसी अन्य रोगी के लिए भी वह यही प्रस्ताव रखते। जो धनवान रोगी स्विट्-जरलैंड में निवास और सेवा का व्यय वहन कर सकते हैं उनके लिए यह प्रस्ताव ही उत्तम है। इस स्थिति में मैंने जो किसी भी रूप में अपने आपको किसी प्रस्ताव के पालन के लिए विवश नहीं किया, वह स्पष्ट रूप से समझ में आ जाएगा।

ऐसा लगता है कि सरकार ने छोटे दादा द्वारा प्रस्तुत किया हुआ रोग का निदान तो स्वीकार नहीं किया परन्तु स्वास्थ्य-लाभ की आवश्यकता अवश्य अनुभव की है। यह मिस्टर मोबरले के इन शब्दों से स्पष्ट है: "सुभाषचन्द्र गम्भीर रूप से बीमार नहीं है, न एकदम इतना कमजोर ही है और एकदम कर्मशक्तिरहित भी नहीं हुआ है।" मैं यह जानने को उत्सुक हूँ कि सरकार किस समय मुझे "गंभीर रूप से रोगी" या "एकदम कर्मशक्ति से हीन" मानेगी? क्या उस दिन मानेगी जब कि सब चिकित्सक यह घोषणा कर देंगे कि मेरा रोगमुक्त होना असम्भव है, और कुछ महीनों में ही मेरी मृत्यु हो जावेगी? इसके अतिरिक्त यदि वह छोटे दादा का रोग-विवरण स्वीकार नहीं करते तो जो बाहर भेजने की बात है उसको स्वीकार करने और उसका समर्थन करने में ही सरकार इतनी व्यस्त क्यों है? छोटे दादा ने इस बात का अनुमोदन नहीं किया कि मुझे घर नहीं जाने दिया जायेगा, अथवा विदेश जाने से पूर्व मैं अपने स्वजनों से भी नहीं मिल सकता। उन्होंने यह भी नहीं कहा कि जिस जहाज से मैं जाऊँगा वह किसी बन्दरगाह पर लंगर नहीं डाल सकता। उन्होंने यह भी नहीं कहा कि यदि मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया तो जितने दिन तक आर्डिनेन्स रहेगा उतने दिन तक मैं देश में नहीं रह सकूँगा। मुझे यह सब देखकर शंका होती है कि सरकार का वास्तविक अभिप्राय मेरे बिगड़े हुए स्वास्थ्य का सुधार करना नहीं है।

श्री मोबरले ने सत्य ही कहा था कि अब दो मार्ग शेष हैं—(१) जेल में बन्दी बने रहना, अथवा (२) विदेश में जाकर स्वास्थ्य-लाभ करने का प्रयास करना और अनिश्चित काल तक वहाँ रहना।

परन्तु क्या वास्तव में इन दोनों के मध्य का कोई और मार्ग नहीं हो सकता? मैं तो ऐसा नहीं समझता। सरकार की इच्छा यह है कि जब तक आर्डिनेन्स समाप्त नहीं होता, अर्थात् जनवरी १९३० तक, मैं बन्दी रहूँ। परन्तु यह कौन कह सकता है कि यह कानून १९३० के पश्चात् दुबारा नए सिरे से लागू नहीं होगा? गत अक्तूबर मास में सी० आई० डी० पुलिस के अधिकारी श्री लोम्यान से इस सम्बन्ध में मेरी जो बातें हुई थीं वह एकदम निराशाजनक थीं। यदि सन् १९२९ में इस आर्डिनेन्स को दीर्घकाल तक लागू रखने का प्रयास हुआ तो उससे मुझे आश्चर्य नहीं होगा। यदि ऐसा हुआ तो मुझे सदैव के लिए विदेश में रहना पड़ेगा और इस प्रकार के निर्वासन के लिए अपने आपको उत्तरदायी मानना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में यदि सरकार का उद्देश्य

स्पष्ट होता तो प्रस्ताव में यह भी लिखा होना चाहिए था कि मैं विदेश से कब वापस आ सकूँगा।

प्रवास में मुझे किस प्रकार की स्वतन्त्रता मिलेगी इस बात को भी स्पष्ट नहीं किया गया है। स्विट्जरलैंड में जो झुंड के झुंड गुप्तचर विचरते हैं, क्या उनके हाथों से भारत सरकार मेरी रक्षा कर सकेगी? इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मैं राजनैतिक संदेह का अभियुक्त हूँ, और जब तक अपना विचार बदलकर पुलिस का जासूस नहीं बन जाता तब तक सरकार मुझे संदेह की दृष्टि से ही देखेगी; और इस बात की सम्भावना अधिक है कहीं ये जासूस प्रति पग पर मेरा पीछा करते हुए मेरा जीवन ही असहनीय न कर दें।

स्विट्जरलैंड में केवल ब्रिटिश गुप्तचर ही नहीं हैं, वहाँ तो ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त स्विस, इतालवी, फ्रेन्च, जर्मन और भारतीय गुप्तचर भी हैं और इस बात का ही क्या प्रमाण है कि कोई उग्र उत्साही गुप्तचर मुझे सरकार के समक्ष कलंकित करने के लिए किसी मिथ्या घटना का विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं करेगा? मैंने गत वर्ष श्री लोम्यान से कहा था कि यदि गुप्तचर-विभाग चाहे तो किसी भी मनुष्य के विरुद्ध कई मिथ्या अभियोग बनाकर उसे किसी भी प्रकार आर्डिनेन्स के अन्तर्गत बन्दी बनाकर रखने की व्यवस्था कर सकता है। यूरोप में ऐसा करना तो और भी सरल है। यह सब जानते हैं कि विदेश में जिनको सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है उन्हें भारत लौटने में कितनी कठिनाई होती है। यदि विलायत की पार्लियामेंट और मंत्रीमंडल के कई विशिष्ट सदस्यों ने प्रयास न किया होता तो लाला लाजपतराय जैसे नेता भी स्वदेश नहीं लौट सकते थे। जब सरकार ने मुझे एक बार संदेह की दृष्टि से देखा है तब मेरी भविष्य में क्या स्थिति होगी इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

मैं जानता हूँ कि पुलिस के जासूस ऐसे विषयों में कुछ अधिक कार्य-तत्परता दिखाते हैं। मैं यूरोप में कितना भी शान्त और सतर्कता के साथ क्यों न रहूँ, वे भारत सरकार के पास मेरे विरुद्ध अन्यायपूर्ण रिपोर्ट अवश्य भेजेंगे। वे मेरे बहुत शान्त रहने और कुछ न करने पर भी मुझे भीषण षड्यंत्रकारी मानकर रिपोर्ट देंगे। और इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं हो सकेगा। इसी लिए इस सम्बन्ध में कभी भी वास्तविकता के प्रकट होने अथवा मेरे स्पष्टीकरण देने की सम्भावना नहीं रहेगी। इसी प्रकार यह अधिक सम्भव है कि सन् १९२९ से पूर्व

ही वे मुझे एक बड़ा बोल्शेविक नेता घोषित कर दें और उसके परिणाम स्वरूप मेरा भारत लौटने का मार्ग सदैव के लिए बन्द हो जाए, क्योंकि यूरोप के लोग आजकल बोल्शेविकों से डरते हैं। यही कारण है कि मैं अपनी जन्मभूमि से स्वेच्छा से निर्वासित होना नहीं चाहता। शासक वर्ग भी यदि एक बार मेरी इस बात को ध्यान में रखकर विचार करे तो मेरी स्थिति को समझ सकता है।

यदि मैं बोल्शेविक एजेन्ट बनना चाहता तो सरकार के कहने से पहले ही जहाज से यूरोप यात्रा करने के लिए तैयार हो गया होता। वहाँ दोबारा स्वास्थ्य-लाभ के उपरान्त बोल्शेविक दल में मिलकर समस्त संसार में एक विशाल विद्रोह की घोषणा करने के उद्देश्य से पेरिस से लेकर लेनिनग्राड तक भागदौड़ करता रहता। परन्तु मेरी इस प्रकार की कोई आकांक्षा नहीं है। जब मैंने सुना कि मुझे भारत, बर्मा और लंका में वापस नहीं आने दिया जाएगा तब मैंने बार-बार सोचा कि क्या मैं सचमुच भारत में ब्रिटिश शासन के लिए इतना खतरनाक हूँ कि बंगाल से निर्वासित करके भी सरकार संतुष्ट नहीं हो सकी, या यह सम्पूर्ण घटना एक कोरा धोखा है?

यदि पहली बात सत्य है तब तो नौकरशाही के लिए वैसे भय का कारण होना मेरे लिए बड़े गौरव की बात होगी। किन्तु जब मैं अपने जीवन और कार्यों के सम्बन्ध में सोचता हूँ तब समझ में आता है कि दलीय स्वार्थ से अन्धे लोग मुझे जिस दृष्टि से देख रहे हैं वास्तव में मैं वैसा नहीं हूँ। मैंने बंगाल से बाहर कोई राजनैतिक कार्य नहीं किया और न भविष्य में करने का विचार है। बंगाल को ही मैं अपना आदर्श कार्यक्षेत्र मानता हूँ। मैं नहीं समझता कि बंगाल सरकार के अतिरिक्त और किसी सरकार का मेरे विरुद्ध कोई अभियोग है। मैं पिछले ६ वर्षों में बंगाल से बाहर नहीं गया। यदि कभी गया हूँ तो या तो कांग्रेस में भाग लेने अथवा किसी घरेलू कार्य के कारण ही बंगाल से बाहर गया हूँ। फिर न जाने क्यों मेरे सम्पूर्ण भारत, बर्मा और लंका-प्रवेश में बाधा डाली जा रही है? लंका तो विशेष ब्रिटिश उपनिवेश है। मुझे इस बात का संदेह है कि वहाँ भारत सरकार की निषेधाज्ञा चलेगी भी या नहीं।

बंगाल सरकार अब मेरी गतिविधियों को नियंत्रित करना चाहती है। जब मैं स्वतन्त्र था तभी मेरी ऐसी क्या गतिविधियाँ थीं? १६२३ के अक्टूबर से १६२४ अक्टूबर तक एक वर्ष के भीतर मैं केवल दो बार

कलकत्ते से बाहर गया था। पहली बार खुलना जिला कान्फ्रेंस में योगदान करने और दूसरी बार नदिया जिले के कौंसिल निर्वाचन में एक सभ्य प्रत्याशी की ओर से भाषण देने के लिए। १९२४ के फरवरी माह से अक्टूबर के मध्य तक मैं एक बार भी कलकत्ते से बाहर नहीं गया। मुझे सिराजगंज कान्फ्रेंस से सम्बन्धित करने की भी चेष्टा की गई थी परन्तु उस समय मैं कलकत्ता कारपोरेशन के मुख्य अधिशासी अधिकारी की हैसियत से विशेष रूप से म्युनिसिपल कार्यों में व्यस्त था। उन दिनों कान्फ्रेंस चल रही थी। कलकत्ते में झाड़ू देने वालों की हड़ताल की सम्भावना थी। अतः मेरे लिए कलकत्ता एक मिनट के लिए भी छोड़ना सम्भव न था। १९२४ के मई माह से अक्टूबर तक मैंने जो कुछ किया उससे सब ही परिचित हैं। मेरी उस समय की सभी प्रकार की गतिविधियों को सरकार जानती है। यदि मुझे गिरफ्तार करने का कारण केवल मेरी गतिविधियों को ही नियंत्रित करना था, तब मैं कहूँगा कि मुझे गिरफ्तार करने की कोई आवश्यकता ही न थी।

श्री मोबरले ने एक बात में हृदयहीनता का विशेष परिचय दिया है। सरकार जानती है कि मैं लगभग अढ़ाई वर्ष से निर्वासित हूँ, और इस समय में मैं अपने किसी भी स्वजन, यहाँ तक कि अपने माता-पिता तक से भी नहीं मिल सका हूँ। सरकार ने प्रस्ताव किया है कि मुझे अढ़ाई या तीन वर्ष विदेश में और रहना पड़ेगा। उस समय भी उनसे मिलने का मुझे कोई अवसर नहीं मिलेगा। निस्संदेह यह मेरे लिए तो कष्टप्रद है ही परन्तु जो मुझे प्यार करते हैं उनके लिए और भी अधिक कष्टदायक है। पूरब के निवासी अपने लोगों और स्वजनों से कितने प्रगाढ़ स्नेह-बन्धन में बँधे रहते हैं, इसका अनुमान लगाना भी पश्चिम वालों के लिए सम्भव नहीं है। मेरे विचार से तो अल्पज्ञता के कारण ही सरकार ने इस प्रकार की हृदयहीनता का परिचय दिया है। पाश्चात्यों का विचार है कि मेरा विवाह नहीं हुआ अतएव मेरा परिवार नहीं होगा, और किसी के प्रति मुझे प्रेम भी नहीं होगा।

सम्भवतः सरकार इस बात को भूल गई है कि गत अढ़ाई वर्षों तक मुझे किस प्रकार का कष्ट भोगना पड़ा है। कष्ट मैंने उठाया है, उन्होंने नहीं। अकारण उन्होंने मुझे इतने दिन से अटका रखा है। मुझे बताया गया है कि अस्त्र-अस्त्र तथा विस्फोटक पदार्थ लाने और एक सरकारी

कर्मचारी की हत्या आदि के षड्यंत्र करने के अभियोग में मैं अपराधी हूँ। इस सम्बन्ध में मुझसे वक्तव्य प्रस्तुत करने को कहा गया था। मैंने उत्तर में कहा कि मैं निर्दोष हूँ। मेरा विश्वास है कि स्वर्गीय सर एडवर्ड मार्शल हल या सर जौन साइमन अपने पक्ष के समर्थन में इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते थे। दोबारा अभियोग लगाये जाने पर मैंने पूछा था कि इतने मनुष्यों के रहते हुए पुलिस ने मुझे ही क्यों पकड़ा ? इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर मेरे मन में है। मुझे गिरफ्तार करने के बाद बंगाल सरकार ने मुझ पर निर्भर लोगों के भरण-पोषण के लिए या मेरे गृह आदि की रक्षा के लिए किसी प्रकार का भत्ता देने की व्यवस्था नहीं की।

जब मैंने इस सम्बन्ध में बड़े लाट को प्रार्थनापत्र भेजा तो उसे बंगाल सरकार ने दबा लिया। फिर मुझे तीन वर्ष तक विदेश में रहने को कहा जा रहा है। यूरोप निर्वासन के समय मुझे अपने व्यय की व्यवस्था स्वयं करनी होगी। समझ में नहीं आता कि यह कसा युक्ति-संगत प्रस्ताव है। सन् १६२४ में जितना बढ़िया मेरा स्वास्थ्य था कम से कम वैसा बनाकर मुझे मुक्त करना न्याय संगत होगा। कारावास के कारण यदि मेरी स्वास्थ्य सम्बन्धी हानि हुई है तो क्या सरकार उसकी क्षतिपूर्ति नहीं करेगी ? यूरोप में रहकर जितने दिन में मैं बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य पुनः प्राप्त करूँ उतने दिन तक मेरा सम्पूर्ण व्यय सरकार को बहन करना चाहिये। कितने दिन तक सरकार इस प्रश्न को टालती रहेगी ? यदि यूरोप जाने से पूर्व सरकार मुझे घर जाने देती है, मेरा यूरोप का व्यय उठाती है, रोगमुक्ति के पश्चात् मुझे बिना प्रतिबन्ध के देश लौटने देती है तो इसे मैं उसकी सहृदयता का परिचायक समझूँगा।

श्री मोबरले ने कहा था—सरकार और सुभाषचन्द्र दोनों ही यह समझते हैं कि आर्डिनेन्स का समय समाप्त न होने तक सुभाषचन्द्र को अटका कर रखा जा सकता है। इस विषय में मैं श्री मोबरले से सहमत हूँ। मैं जानता हूँ कि सरकार इच्छानुसार जितने दिन तक चाहे मुझे अटका कर रख सकती है। आर्डिनेन्स की अवधि समाप्त होने पर वह मुझे धारा तीन से या किसी भी अन्य उपाय से पुनः रोक सकती है। विधान सभा के सदस्यों ने कितना ही शोर मचाया किन्तु मंत्री-परिषद् के सदस्यों का यात्रा-व्यय अस्वीकार क्यों नहीं किया गया ? मैं जानता हूँ कि सरकार इच्छानुसार मुझे जीवन भर बन्दी बना कर रख सकती

है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि सरकार मुझे दीर्घकाल तक बन्दी बना कर रखना चाहती है अथवा नहीं। स्वर्गवासी देशबन्धु महोदय मुझे युवक-वृद्ध कह कर पुकारते थे। उन्होंने मुझे निराशावादी कहा था। एक विषय में मैं वास्तव में निराशावादी हूँ, मैं सब विषयों में अशुभ पक्ष को ही अधिक देखता हूँ। इस घटना का सबसे बुरा परिणाम क्या हो सकता है यह भी मैंने सोच लिया है, परन्तु मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया है कि चिरकाल के लिए जन्मभूमि से निर्वासित होने की अपेक्षा जेल में रहकर मृत्यु को वरण करना कहीं श्रेष्ठ होगा। भविष्य के सम्बन्ध में इन अशुभ बातों को सोचकर मैं निरुत्साहित नहीं हुआ हूँ, क्योंकि कवि की इस उक्ति में मेरा विश्वास है—

गौरव का पथ, केवल हमको
ले जाता है मृत्यु ओर बस।

सरकार के प्रस्ताव के पक्ष और विपक्ष में मुझे जो कुछ कहना था वह मैंने कह दिया। मेरे कारामुक्त होने की सम्भावना बहुत दूर होने के कारण किसी को भी दुःखी नहीं होना चाहिए। माता जी और पिता जी को सबसे अधिक वेदना होगी। अतः उनको सान्त्वना दीजियेगा। कारा-मुक्ति होने से पूर्व हमें व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से बहुत कष्ट सहन करने पड़ेंगे। भगवान को धन्यवाद देता हूँ कि मैं यहाँ शान्ति से रह रहा हूँ और पूर्ण निर्विकार भाव से अपने को सभी अग्नि-परीक्षाओं में डालने के लिए प्रस्तुत हूँ। अपने सम्पूर्ण राष्ट्र के द्वारा किये गए पापों का मैं प्रायश्चित् कर रहा हूँ। इसी में मेरी तुष्टि है।

हमारे विचार या आदर्श अमर होंगे, हमारे भाव जाति की स्मृति से कभी नहीं मिटेंगे, भविष्य में हमारे वंशधर हमारी कल्पनाओं के उत्तराधिकारी बनेंगे, इस विश्वास के साथ मैं दीर्घकाल तक समस्त विपदाओं और अत्याचारों को हँसते हुए सहन कर सकूँगा।

कृपया इस पत्र का उत्तर शीघ्र दीजिएगा। इति।

११५*

इनसीन जेल
५ अप्रैल १९२७

परम प्रीतिभाजनेषु,

आपका ५ चैत्र का पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। बहुत प्रयत्न किया परन्तु समझ में नहीं आया कि क्या उत्तर दूँ? बहुत सी बातें लिखने का मन होता है परन्तु क्या वे सब लिखी जाती हैं?

स्वास्थ्य के सम्बन्ध में नया कहने को कुछ भी नहीं है, "यथा पूर्वम् तथा परम्"। परिणाम क्या होगा यह तो मुझे ज्ञात नहीं परन्तु अब स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सोचने को मन नहीं करता। गत कई महीनों से मेरा मन किसी न किसी ओर झुकता रहा है। मेरी यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि जीवन की सच्चाई को कायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि पूर्णाहुति के लिए निरन्तर तैयार रहा जाय। जीवन के प्रभात में हृदय में इस प्रार्थना को लेकर कर्मक्षेत्र में पदार्पण किया था—"हे प्रभो, जिसे जीवन में कोई उद्देश्य दो, उसे उसको पूरा करने की शक्ति भी दो।" भविष्य की बात मैं नहीं जानता परन्तु अभी तक भगवान उस प्रार्थना को निभाते आ रहे हैं। इसी कारण मैं बहुत सुखी हूँ। कभी कभी तो सोचता हूँ कि मेरे समान सुखी व्यक्ति इस जगत् में और कितने हैं? अब इस जेल की ऊँची दीवारों से बाहर जाने की आशा जिस परिमाण में दूर होती जा रही है उसी परिमाण में मेरा चित्त शान्त और उद्वेगशून्य होता जा रहा है। अपने में ही चेतना को केन्द्रित रखने और आत्मविश्वास के स्रोत में जीवन-नैया को बहाने में परम शान्ति है। अधिक समय तक विपरीत स्थिति में रहना हो तो शान्त मन ही एकमात्र अवलम्ब है। इस कारण लम्बे कारावास की सम्भावना में मैं एक अपूर्व शान्ति अनुभव कर रहा हूँ। एमर्सन ने कहा है—"हमें पूर्णतः अपनी अन्तर्शक्ति के सहारे रहना है।" यह बात पूर्णतः सत्य है और इसकी सत्यता को दिन प्रतिदिन अपने जीवन में अनुभव कर रहा हूँ।

जिनकी दशा मेरे समान है वह यदि बाहर की घटनाओं से जीवन की सार्थकता या विफलता का निश्चय करें तो—"मृत्युरेव न संशयः"। जिस मापदण्ड से हमारा (बन्दियों का) विचार होगा वह आन्तरिक है, बाह्य नहीं, क्योंकि बाह्य मापदण्ड से तो हो सकता है कि हमारे

* श्री गोपाल लाल सान्याल के नाम।

जीवन का मूल्य शून्य ही ठहरे। यदि यहाँ पर ही पटाक्षेप हो तो वास्तव में संसार पर हमारे जीवन की स्थायी छाप भी नहीं रह सकती। यदि जीवन में मैं और कोई काम नहीं कर सका, आदर्श को यदि वास्तविकता के रूप में प्रकट करने का अवसर प्राप्त नहीं कर सका, तब भी मेरा जीवन व्यर्थ नहीं जाएगा। महान् आदर्श को यदि हृदय में रखूँ, शरीर और मन को यदि उस महान् आदर्श स्वर में बाँधकर रहूँ, यदि आदर्श से मेरा अस्तित्व मिला रहे, तो मैं संतुष्ट हूँ। मेरा जीवन जगत् के समक्ष व्यर्थ होने पर भी मेरे निकट (और सम्भवतः विधाता के निकट भी) व्यर्थ नहीं है। जगत् में सब कुछ क्षणभंगुर है, केवल एक वस्तु नष्ट नहीं होती, और वह वस्तु है भाव या आदर्श। हमारे आदर्श ही हमारे समाज की आशा हैं। हमारी विचारधारा अनश्वर है। क्या कोई निजी भाव को दीवार से घेर कर रख सकता है?

आदर्श की प्राप्ति समर्पण की पूर्णता पर निर्भर है। त्याग और उपलब्धि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अब मेरा मन सम्पूर्ण रूप से पाने और देने के लिए आकुल है।

जो विचार मुझे इतनी दुर्बलता में भी शक्ति के उच्च शिखर तक ले आए क्या वे अब मेरे लिए शक्ति-स्रोत नहीं रहेंगे। उपनिषद् में लिखा है—"य मे वैष वृणुते तेन लभ्यः"।

बहुत दिन से योजनाबद्ध अध्ययन नहीं चल पा रहा है। विवश होकर ही छोड़ना पड़ा था। राष्ट्र की मूल समस्याओं का समाधान प्राप्त करने के लिए लिखाई-पढ़ाई और गवेषणा प्रारम्भ की थी। इस समय कार्य बन्द है। नहीं जानता कि पुनः कब आरम्भ कर सकूँगा। बाहर आने पर यह काम रुक जाएगा इस कारण यहाँ रहते हुए ही इस कार्य को समाप्त करने की इच्छा थी। सम्भवतः मेरा कार्य कारावास में समाप्त नहीं हुआ, इसी लिए मेरी मुक्ति में विलम्ब हो रहा है।

भगवान आप सबको सकुशल रखें, और आपके कार्यों पर सदैव उनके आशीर्वाद की वर्षा हो, यही मेरी प्रार्थना है। इति।

११६*

इनसीन सैन्ट्रल जेल
शुक्रवार, ८-४-१९२७

आदरणीय भाई साहब,

आपके २४ और ३१ मार्च के पत्र, मुझे ५ और ७ अप्रैल को प्राप्त हुए। मैं आशा करता हूँ कि आपको भी मेरे १४ मार्च, २२ मार्च, २८ मार्च तथा ४ अप्रैल के पत्र समय पर प्राप्त हो गए होंगे। पिछले दो पत्र तो मैंने इनसीन जेल से लिखे थे।

पिछले पत्र में तो मैंने माननीय श्री मोबरले के प्रस्ताव के विषय में बड़े विस्तार से लिखा है। जो कुछ मैंने उस पत्र में लिखा है, उसे यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं। उस सशर्त रिहाई के प्रस्ताव को स्वीकार करने की ही दिक्कत नहीं है बल्कि कुछ शर्तें भी असन्तोषजनक हैं। अत: जिस रूप में यह प्रस्ताव उपस्थित है, उस रूप में अमान्य है। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि इस सम्बन्ध में सरकार ने अपना अन्तिम निर्णय दे दिया है।

अभी मुझे बंगाल विधान परिषद् के प्रधान से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ है।

जब तक यह पत्र आपके पास पहुँचेगा, उस समय तक एल्डरमैन, मेअर और डिप्टी मेअर का चुनाव तो समाप्त हो चुकेगा। यदि आप थोड़ा समय निकाल सकते हैं तब आप एल्डरमैन के पद के लिए क्यों नहीं खड़े हुए ?

शनिवार, २ अप्रैल को जेल के महानिरीक्षक ने मुझे सरकारी प्रस्ताव के विषय में बतलाया था। यह प्रस्ताव हूबहू वही था, जो कि बंगाल विधान परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था। उसी दिन मैंने लगातार दो तार आपके पास भेजे थे। मैं अपनी स्मृति से उन तारों की विषय-सामग्री का उल्लेख कर रहा हूँ।

(१) आपका २४ मार्च का पत्र नहीं मिला। सरकारी प्रस्ताव आज प्रात:काल मिला। यह प्रस्ताव हूबहू वही था, जो कि बंगाल विधान परिषद् में प्रस्तुत किया गया था। सरकारी प्रस्ताव की कुछ बातें अस्पष्ट और असन्तोषजनक हैं। उस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक बातें करने के लिए आपसे साक्षात्कार की इच्छा है।

* श्री शरत्चन्द्र वसु के नाम।

(२) २४ मार्च का पत्र मिला। इसमें आगे की कोई सूचना नहीं है। यदि सरकारी प्रस्ताव में किसी सीमा तक अदल-बदल नहीं की जाती तो वह अमान्य है। अत: इसी के अनुरूप सरकार को उत्तर देने की इच्छा है। आपसे साक्षात्कार करना भी कदाचित् अनावश्यक रहेगा।

पिछले महीने की २९ तारीख से मैं मोटर में घूमने जाने लगा हूँ।

इनसीन भी लगभग रंगून जैसा ही है। हाँ, मैं समझता हूँ कि गर्मियों में उतना गरम नहीं है। यहाँ वर्षा खूब होती है। मई के अन्त तक वर्षा आरम्भ हो जाती है और अक्टूबर तक होती रहती है। मेरे अनुमान से यह माँडले जैसा तो गर्म नहीं है, पर उससे अधिक नम अवश्य है। मुझे ज्ञात नहीं कि यहाँ की जलवायु माँडले से बेहतर है—मेरा अनुमान है कि शायद अच्छी नहीं होगी, कम से कम मेरे लिए।

मेरे रंगून छोड़ने से पूर्व ही जेल महानिरीक्षक ने कहा था कि आपको माँडले वापस भेजने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। संभवत: अब तो आप बर्मा से प्रस्थान करने वाले हैं। उन्होंने मेरे सामने यह प्रस्ताव भी रक्खा कि आप रंगून और इनसीन में से किसी एक को चुन लीजिए। क्योंकि रंगून जेल में वह घटना घटित हुई थी, अत: मुझे इनसीन ही चुनना पड़ा। जो रुपया आपने रंगून भेजा था, उसे यहाँ भेज दिया गया है।

इस सोमवार को आपके पास फिर पत्र डालूँगा। आज तो अलग से एक पत्र छोटे दादा के पास भेज रहा हूँ। मैं आप के पास ५ तारीख के भेजे हुए तार के उत्तर की प्रतीक्षा बड़ी व्यग्रता के साथ कर रहा हूँ। यह वही तार है जिसका विवरण ऊपर आया है।

क्या छोटे दादा को मेरा २२ तारीख वाला पत्र मिल गया था ?

मेरा ज्वर पहिले की तरह ही बढ़ता जा रहा है और आमतौर पर मेरा तापमान १०० से ऊपर ही रहता है। आशा है आप सब लोग सकुशल होंगे।

आपका परम स्नेही
सुभाष

११७*

इनसीन सैन्ट्रल जेल
शुक्रवार, ८–४–२७

प्रिय छोटे दादा,

आपको विदित ही है कि २५ मार्च को मैं रंगून जेल से यहाँ आ गया था। आजकल इनसीन बड़ा शुष्क है और स्थलीय समीर खूब चलती है। परन्तु मई के अन्त से तो यहाँ वर्षा आरम्भ हो जावेगी। यह माँडले जैसा गर्म नहीं है। मुझे सरकारी तौर पर सूचित किया गया है कि यदि मैं सरकारी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता तो शीघ्र ही मुझे या तो अलमोड़ा जेल, या बंगलौर जेल या ऊटकमंड जेल में स्थानान्तरित कर दिया जावेगा। इस प्रकार मुझे यहाँ थोड़े ही दिन ठहरना है। मेरा ज्वर यहाँ पहिले ही की तरह बढ़ रहा है, उदाहरण स्वरूप २६ मार्च को १००·६°; २७ मार्च को ९९·२°; २८ मार्च को १००·४°; २९ मार्च को १००°; ३० मार्च को १००·४° और ३१ मार्च को १००·४° था।

कल मेजर फिन्डले ने बड़ी अच्छी तरह से मेरी जाँच की थी और उन्हें कुछ संदेहयुक्त चिह्न भी मिले थे—जैसे गले और कंधे की हड्डी के नीचे सीधी तरफ खटखट का शब्द भी सुनाई पड़ा था। इससे पूर्व वरिष्ठ एस० ए० एस० ने भी मेरी परीक्षा की थी और उन्होंने भी अपनी टिप्पणी में इन चिह्नों की ओर संकेत किया था।

रंगून छोड़ने से कुछ दिन पूर्व मुझे भूख बढ़ाने के लिए एक मिक्शचर दिया गया था, परन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ।

मेरे विचार से अब कोई दवा लेना आवश्यक नहीं है। इसीलिए मैं कोई दवा नहीं खा रहा। हाँ, २९ मार्च से मोटर में सैर करने अवश्य जाने लगा हूँ।

यहाँ रहने का स्थान माँडले जैसा अच्छा नहीं है, परन्तु मैंने मेजर फिन्डले से कह दिया है कि यदि मुझे यहाँ थोड़े दिन रहना है तो मैं इसकी चिन्ता नहीं करूँगा। यहाँ स्नानागार और रसोई घर मेरे रहने के स्थान से कुछ दूर, दूसरे कक्ष में हैं। आजकल मैं विचाराधीन बन्दी कक्ष के ऊपर के भाग में रह रहा हूँ। यह हवादार और अन्य कमरों से बड़ा है, यद्यपि दिन में गर्म रहता है। यहाँ कुछ संगी-साथी भी हैं, जिनका

* डा० सुनीलचन्द्र वसु के नाम।

कि रंगून जेल में अभाव था।

मैंने मेजदादा को पहिले ही श्री मोबरले के प्रस्ताव के सम्बन्ध में अपना मत बतला दिया है। मुझे आशा है आपको मेरा २२ मार्च वाला पत्र मिल गया होगा। यदि समय मिले तो पत्र अवश्य लिखें। आशा है सब सकुशल होंगे।

नूतन मामा बाबू के कैसे हाल-चाल हैं ?

आपका परम स्नेही
सुभाष

डा० एस० सी० वसु,
एम० बी०, एम० आर० सी० पी०, डी० टी० एम०,
३८/२, एलगिन रोड,
कलकत्ता।

११८

सेवा में,
जेल महानिरीक्षक, बर्मा,
रंगून।

इनसीन,
दिनांक ११ अप्रैल, १९२७

विषय : बंगाल सरकार का प्रस्ताव।

श्रीमान् जी,

(१) मैं सरकार के उस प्रस्ताव के लिए आभारी हूँ, जो उसने कृपा करके मेरे बारे में प्रस्तुत किया है और विशेष रूप से इसलिए आभारी हूँ कि सरकार ने मेरे सम्बन्ध में विचार करने के लिए बंगाल विधान-परिषद् का विश्वास भी प्राप्त किया है; मैं इसलिए भी उसका आभारी हूँ कि मेरे भूत और भविष्य काल के व्यवहारों को अलग रखते हुए सरकार ने मेरी भावनाओं की ओर ध्यान दिया है; परन्तु मुझे खेद है कि उसमें कुछ ऐसी शर्तें लगा दी गई हैं, जिनके कारण मैं उस प्रस्ताव को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ।

(२) यह बात तो मैं आरम्भ से ही कहता आ रहा हूँ कि मुझे बिना विचारण, अकारण एवं अवैधानिक रूप से बन्दी बनाया गया है। भारत

की जनता ने तो सदैव ही १९२४ के बंगाल अध्यादेश और उसी के परिणाम स्वरूप बनने वाले १९२५ के बंगाल अपराधी-कानून-संशोधन-अधिनियम को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। जनता तो इन दोनों अधिनियमों को अवैधानिक कानून ही कहती आई है क्योंकि इनको बनाने और लागू करने का उद्देश्य जनता के जन्मजात अधिकारों एवं स्वतन्त्र प्रवृत्ति का दमन करना रहा है। एक सभ्य राज्य में तो ऐसे कानून को २४ घंटे भी सहन नहीं किया जा सकता। मुझे बन्दी बनाकर अन्याय का जो उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, बंगाल विधान परिषद् का सदस्य निर्वाचित होने के पश्चात् उस अन्याय की मात्रा में और भी अधिक वृद्धि हो गई है। परिषद् का सदस्य होने के नाते मेरे कुछ संसदीय विशेषाधिकार भी हैं। ये अधिकार इतने पुराने एवं अविवादास्पद हैं कि विश्व का प्रत्येक विधायक इनका अधिकारी है। विधायक होते हुए भी इन अधिकारों से मुझे वंचित कर दिया गया है। सरकार ने लोगों को बिना विचारण किए अन्यायपूर्वक अनिश्चित काल के लिए बन्दी बनाकर अपराध-विधि के आधारभूत सिद्धान्तों की पूर्णरूप से अवहेलना की है। यह कहना कि भारत का विधायक-मंडल जन-प्रतिनिधित्व करता है, कोरा एक ढोंग है। बंगाल विधान-परिषद् द्वारा अस्वीकार किए जाने पर भी बंगाल अपराधी कानून संशोधन अधिनियम को सरकार द्वारा प्रमाणित करके पुनः लागू करने से ढोंग की कुछ वास्तविकता सामने आ गई है। संसदीय विशेषाधिकारों (जिनमें विधायक की गिरफ्तारी, नजरबन्दी एवं अपमान करने की मनाही भी सम्मिलित है) का अति-सर्पण करके सरकार ने विधान-मंडल को कार्यपालिका के आधीन कर दिया है और इस प्रकार राजनीतिक निकाय के दो मंडलों के बीच प्रचलित सम्बन्धों का प्रत्यावर्तन कर दिया है। इन परिस्थितियों में, मुझ मुक्त करने की माँग इसलिए भी उचित है कि उससे एक ऐसे अन्याय का निराकरण हो सकेगा जो अब तक मेरे साथ हुआ है और होता ही चला जा रहा है।

(३) मैंने सदा ही इस बात का प्रतिपादन किया है कि मुझे जो शारीरिक और मानसिक हानि हुई है और जो धन सम्बन्धी हानि सहन करनी पड़ी है उस सबकी पूर्ति होनी चाहिए। कोई भी व्यक्ति, मेरे इस अधिकार को, जब तक कि वह समस्त नीति-शास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्तों—धर्म, व्यवस्था एवं सच्चाई के नियमों का उल्लंघन न करे, अस्वीकार नहीं कर सकता। इस दृष्टिकोण से उस प्रस्ताव की सम्पूर्ण अपर्याप्तता

पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जावेगी।

(४) न तो सरकार ही और न मैं ही इतने बुद्धिहीन हैं कि सरकार के उस प्रस्ताव का वास्तविक और केवल एकमात्र उद्देश्य इतना ही समझें कि डा० सुनीलचन्द्र वसु की सिफारिश पर मुझे उपचार के लिए स्विस आरोग्य निवास भेज दिया जावेगा। निःसंदेह, चिकित्सा के दृष्टिकोण से यह सिफारिश बहुत ही ठोस है; परन्तु मैं तो इसका पालन उसी दशा में कर सकता हूँ जबकि मैं स्वतन्त्र नागरिक होकर अबाधित रूप से कार्य करूँ।

(५) सम्मान की मेरी अवधारणा, राजनीतिक पीड़ित के नाते मेरा कर्त्तव्य, और सामाजिक जीवन में मेरा स्थान, यह तीनों बातें मिलकर मुझ सरकार के उन प्रतिबन्धों को स्वीकार करने से रोकती हैं जिन्हें सरकार ने इस प्रस्ताव के साथ लगा दिया है। आज लगभग २।। वर्ष जेल में बीत जाने के बाद प्रतिबन्धों की बात करने का प्रश्न ही नहीं उठता। मेरे लिए सरकार द्वारा लगाई गई शर्तों को स्वीकार करने का अर्थ होगा अधिनियम की वैधता को स्वीकार करना। परन्तु मेरे लिए आज उस दृष्टिकोण का परित्याग करना, जिसका मैं समर्थन करता आया हूँ, असम्भव है। आज जब कि वैधानिक स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष चल रहा है—ऐसी स्थिति में हमारे राष्ट्र का सम्मान हमारी दृढ़ता में है, भला क्या हम ही विश्वासघात करेंगे? मेरे लिए मेरे जीवन का बहुत मूल्य है, परन्तु सम्मान मुझे उससे भी अधिक प्रिय है। अतः मैं अपने जीवन के लिए उन पवित्र और अलंघ्य अधिकारों को, जो भविष्य में भारत के राजनीति निकाय का आधार होंगे, का सौदा नहीं कर सकता। इस बात को तो मैं पहिले से ही जानता हूँ कि मेरा यह रवैया मेरे लिए अधिकाधिक कष्टों का सृजन करेगा, परन्तु इसके सम्बन्ध में मेरी यह धारणा है कि इस प्रकार के कष्ट तो एक दास जाति में जन्म के समय ही उत्तराधिकार में मिली संपत्ति का एक भाग मात्र होते हैं।

(६) मुझे इस बात का खेद है कि मैं सरकार के उन सदस्यों के दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूँ, जिन्होंने मुझे मुक्त करने के हेतु उदारतापूर्वक यह प्रस्ताव रक्खा। परन्तु, मानव प्रकृति में मुझे विश्वास है और इस बात में भी मुझे संदेह नहीं है कि जिस निष्कर्ष पर मैं पहुँचा हूँ, वह ऐसा है जिसका कि सरकारी सदस्य अपने घर पर केवल समर्थन ही नहीं करेंगे बल्कि प्रशंसा भी करेंगे।

(७) अन्त में मैं सरकार को उस प्रस्ताव के लिए धन्यवाद देता हूँ, जो उसने मुझे मुक्त करने के हेतु प्रस्तुत किया था। परन्तु सरकार से पुनः अनुरोध करूँगा कि वह उसमें से उन प्रतिबन्धों को हटा दे ताकि वह स्वीकृति के योग्य बन जावे।

मैं हूँ
आपका सर्वाधिक आज्ञाकारी सेवक
सुभाषचन्द्र वसु

११६*

इनसीन जेल
बुधवार, १३–४–२७

आदरणीय भाई साहब,

सोमवार ११ अप्रैल को मैंने सरकारी प्रस्ताव का जो उत्तर दिया था, उस उत्तर की प्रतिलिपि आपके पास प्रेषित कर रहा हूँ। मैंने सोमवार को दोपहर के बाद कलकत्ते के सी० आई० डी० के द्वारा निम्नलिखित तार आपके पास भेजा था :

"आपका ८ तारीख का तार मिला। आज सरकार को उत्तर दे दिया है कि प्रस्ताव अस्वीकार है। अतः इस सम्बन्ध में मिलना व्यर्थ है।"

मैं जल्दी में हूँ, डाक निकलने से पूर्व ही पहुँच जाना चाहता हूँ। इसी कारण कुछ अधिक नहीं लिख रहा।

आशा है आप सब लोग सकुशल होंगे।

आपका परम स्नेही
सुभाष

संलग्न पत्र :—सरकार के प्रस्ताव का उत्तर।

एस० सी० वसु महोदय,
३८/१, एलगिन रोड,
कलकत्ता।

* श्री शरत्चन्द्र वसु के नाम।

१२०*

इनसीन सैन्ट्रल जेल
बुधवार, १३–४–२७

पूज्य पिताजी,

आप के पास २१–२–२७ को मैंने रंगून जेल से पिछला पत्र डाला था। मैं रंगून से यहाँ २५ मार्च को आ गया था। इनसीन, रंगून से लगभग १० मील की दूरी पर स्थित है। यह एक छोटा सा कस्बा है, परन्तु इसका विकास शीघ्रता से हो रहा है। इनसीन और रंगून के बीच की सड़क बहुत बढ़िया है—और रेलगाड़ियाँ तो निरन्तर ही आती जाती रहती हैं। आजकल इनसीन शुष्क है। ठण्डी ठण्डी वायु चलती रहती है, कोई विशेष गर्मी नहीं है। निःसंदेह यह माँडले जैसा गर्म नहीं है, परन्तु मई में वर्षा आरम्भ हो जावेगी और अक्टूबर तक चलती रहेगी।

सम्भवतः अब तक आप को विदित हो गया होगा कि रंगून मैंने क्यों छोड़ा? पाँच अप्रैल को औपचारिक रूप से सरकार ने मेरे पास अपना प्रस्ताव भेजा था। उस पर विचार करने में मुझे कुछ समय लगा। ११ तारीख को मैंने उस प्रस्ताव का अस्वीकारात्मक उत्तर भेज दिया है। मैंने सरकार से इस प्रस्ताव में से शर्तों के हटा देने के लिए निवेदन किया था, ताकि वह स्वीकार करने योग्य हो जावे।

४ तारीख को मैंने मेज दादा के पास भी पत्र डाला था। इस पत्र में मैंने सरकारी प्रस्ताव को अस्वीकार करने के कारणों का विस्तार से वर्णन किया था।

२१ मार्च को बंगाल विधान परिषद् के सम्मुख जो प्रस्ताव रक्खा गया था वह भी हूबहू ऐसा ही था।

मुझे सरकारी तौर पर सूचित किया गया है कि यदि मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता हूँ तो मेरा स्थानान्तरण या तो अल्मोड़ा जेल को या ऊटी जेल को या बंगलौर जेल को कर दिया जावेगा।

इस समय मेरा स्वास्थ्य पहिले जैसा ही है। हाँ, यहाँ कुछ संगी-साथी मिल गए हैं, जिनका रंगून में अभाव था।

मुझे विश्वास है कि आप मेरे निर्णय का अनुमोदन करेंगे और आशा है कि आम जनता भी इसका समर्थन करेगी।

* श्री जानकीनाथ वसु के नाम।

ग्राप का क्या हाल है ? ग्राशा है कटक ग्रौर कलकत्ते में सब सकुशल होंगे । मैं विश्वास करता हूँ कि माता जी एलगिन रोड में ही हैं।

प्रणाम !

आपका परम स्नेही
सुभाष

श्री जे० एन० वसु
कटक ।

१२१*

इनसीन जेल
२६-४-२७

ग्रादरणीय भाई साहब,

बड़े दादा यहाँ ग्राए थे, परन्तु ग्रब लौटकर चले गए हैं। मेरा क्या दृष्टिकोण है इसके विषय में ग्रापको उनसे ज्ञात हो जावेगा। ग्रगले सप्ताह यदि लम्बा पत्र लिखने का मन हुग्रा तो सारी बातें विस्तार से लिखूँगा। इस समय लम्बा पत्र लिखने को मन नहीं कर रहा।

पिछले कुछ दिनों से ज्वर बढ़ रहा है। ग्रब तो मेरा वजन भी गिर कर कुल १२८ पाउण्ड ही रह गया है। ग्राजकल बिस्तर पर ही लेटा रहता हूँ। लेटे लेटे बहुत थक जाता हूँ, पर करूँ क्या ग्रब तो धैर्य रखने से ही काम चलेगा।

जब तक कि मेरी सामान्य स्थिति ग्रौर वातावरण नहीं बदलते, तब तक रोग शमन करने वाले उपायों से मेरी दशा में सुधार होना संदिग्ध है। सत्य तो यह है कि दिन प्रतिदिन मेरी दशा बिगड़ती चली जा रही है। मैं योग के माध्यम से रोग शमन करने की बात पर गम्भीरता से विचार कर रहा हूँ। परन्तु योग साधन से कभी कभी हानियाँ भी होती हैं, इसी कारण मैं झिझक रहा हूँ। परन्तु ग्रब मेरे पास ग्रन्य कोई उपाय नहीं रहा। मेरे विचार से योग ही केवल एक ऐसा सम्भव साधन है, जिसकी सहायता से मैं ग्रपनी प्राण-रक्षा कर सकूँगा। इस तथ्य की ग्रोर ग्राँखें मूँद लेने से काम नहीं चलेगा कि

* श्री शरत्चन्द्र वसु के नाम तीन पत्र।

राजयक्ष्मा एक असाध्य रोग है। हाँ, एक बार जब यह रोग घर कर लेता है, तब यह प्राण ही लेकर छोड़ता है। प्रयत्न करने से केवल इतना ही सम्भव हो सकता है कि मृत्यु कुछ दिन के लिए और टाल दी जावे।

आशा है आप सब सकुशल होंगे।

आपका परम स्नेही
सुभाष

श्री एस० सी० वसु
३८/१, एलगिन रोड, कलकत्ता।

पश्च-लेख :

कृपया मेरे सम्बन्ध में कदापि चिन्ता न कीजिए, क्योंकि मैं तो प्रत्येक अनिष्ट के लिए प्रस्तुत हूँ।

सुभाष

१२२

इनसीन जेल
६ मई १९२७

आदरणीय भाई साहब,

लम्बा पत्र लिखने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है; आवश्यक शक्ति संग्रह होने तक मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। सरकार के प्रस्ताव के सम्बन्ध में बड़े दादा से मेरी बहुत बातें हो चुकी हैं। इस वार्तालाप का सुअवसर मिलने से मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। माननीय गृह-सचिव महोदय ने जो सौजन्यता दिखाई है, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। मेरे साथ अब तक जो व्यवहार हो रहा था यह व्यवहार उससे भिन्न था।

बड़े दादा ने मेरे पास सरकार का उत्तर २७ अप्रैल को भेजा था। इस उत्तर से ही यह विषय दोनों पक्षों को स्पष्ट हुआ। ११ अप्रैल को सरकार की शर्तों के सम्बन्ध में मैंने जो उत्तर दिया था उसको मैं अब भी उचित समझता हूँ।

मेरा सिद्धान्त सहज विचार का है। भली भाँति सोचकर देखने

से यह सिद्धान्त और भी दृढ़ होता जा रहा है। सरलता से जीवन के सम्बन्ध में चिन्तन करके मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ। भली भाँति विचार करने से यह सिद्धान्त और भी दृढ़ हुआ है। कारागृह में मेरे जितने दिन व्यतीत हो रहे हैं उतनी ही यह धारणा मेरे हृदय में पक्की होती जा रही है कि जीवन-संग्राम के मूल में सत्य और मिथ्या विचारों का संघर्ष ही है। कोई-कोई व्यक्ति इसे सत्य के भिन्न-भिन्न स्तर मानते हैं। मनुष्य के विचार ही मनुष्य को गति देते हैं। यह सब विचार निष्क्रिय नहीं हैं, क्रियाशील और संघर्षात्मक हैं।

हेगल के 'निरंकुश विचार', हैपमैन और शापेनहावर की 'अन्धी कामना' और हैनरी बर्गसन की 'सूक्ष्म चेतना' के समान यह धारणा भी क्रियाशील है। यह सब विचार अपना मार्ग स्वयं बना लेंगे। हम तो मिट्टी के पुतलों के समान हैं। हम भगवान के प्रकाशपुंज के कुछ स्फुलिंग मात्र हैं। हमें इन विचारों के समक्ष आत्म-समर्पण करना पड़ेगा। देह के सुख-दुःखों का परित्याग करके जो इस प्रकार आत्म-निवेदन कर सकते हैं, जीवन में उनकी सफलता अवश्यम्भावी है। मेरा आदर्श एक दिन विजयी होगा, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। इसी कारण अपने स्वास्थ्य और भविष्य के सम्बन्ध में मैं कोई चिन्ता नहीं करता।

सरकार की रिहा करने की शर्तों के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ लिखा था उसमें अपना मत स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दिया था। किसी-किसी समा-लोचक ने मत प्रकट किया है कि मैं इससे बेहतर शर्तों के लिए सौदेबाजी की चाल चल रहा हूँ। उनकी इस संकुचित मनोवृत्ति को जानकर मुझे दुःख हुआ। मैं दूकानदार नहीं हूँ, और न ही भाव बढ़ाने के लिए खींचातानी करता हूँ। कूटनीति के फिसलन भरे मार्ग से मुझे घृणा है। मैं तो एक आदर्श को पकड़ कर खड़ा हूँ। मुझे जीवन इतना प्रिय नहीं है कि उसके लिए चालाकी का सहारा लूँ। मूल्य के सम्बन्ध में मेरी धारणा बाजारू विचारों से भिन्न है। मेरा यह विचार है कि शारीरिक सुख या व्यक्तिगत सफलता की कसौटी पर जीवन की सफलता या असफलता का निर्णय नहीं किया जा सकता। हमारे संघर्ष का उद्देश्य भौतिक शक्ति प्राप्त करना नहीं है। विषय लाभ करना हमारे जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता, सन्त पाल ने कहा है—"हमारा मोर्चा भौतिकता एवं अन्याय के विरुद्ध है।" स्वतन्त्रता और सत्य ही हमारे आदर्श हैं। जिस प्रकार रात्रि के पश्चात् दिन निकलता है उसी प्रकार हमारे प्रयत्न भी सत्य हैं, और सत्य को निश्चित रूप से सफलता मिलेगी। हमारा शरीर नष्ट हो

सकता है। अटल विश्वास और अजेय संकल्प के कारण हमारी विजय अवश्य होगी। यह तो केवल ईश्वर ही जानता है कि हमारे प्रयासों के सफल परिणाम को देखने का सौभाग्य किसे प्राप्त होगा। अपने सम्बन्ध में तो मैं यही कह सकता हूँ कि अपना कार्य करता जाऊँगा परिणाम जो होगा देखा जायगा।

एक बात और कहकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करूँगा। मैं स्विट्जरलैंड भी जाऊँगा या नहीं अभी इस बात का निश्चय नहीं कर सका हूँ। इस समय की अपनी शारीरिक दशा को देखते हुए तो मैं स्विट्जरलैंड जाने में असमर्थ हूँ। सर्व प्रथम तो मुझे भारत के किसी आरोग्य-सदन में रहकर स्वास्थ्य-लाभ करना पड़ेगा। यह बात निश्चित नहीं है कि मैं कितने दिन में स्विट्जरलैंड जाने योग्य हो जाऊँगा। चिकित्सकों का मत है कि कुछ और स्वस्थ होने से पूर्व मेरे स्विट्जरलैंड जाने की बात ही नहीं उठती। यदि मैं भारत के किसी आरोग्य-सदन में रहकर आशा के अनुरूप स्वास्थ्य-लाभ कर सकूँ तो स्वेच्छापूर्वक निर्वासन का वरण करके स्विट्जरलैंड जाने की आवश्यकता ही क्या है?

फिर स्विट्जरलैंड जाने का निश्चय करने से पूर्व मुझे उसके आर्थिक पहलू पर भी विचार करना पड़ेगा। परिवार के सदस्यों, विशेषत: माताजी एवं पिताजी के साथ विचार करना पड़ेगा। कुछ महीनों के भीतर ही बंगाल की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन भी हो सकता है। किसी भी प्रकार का निश्चय करने से पूर्व इन सब विषयों का भली भाँति विवेचन करना पड़ेगा। जैसा भी हो, इस विषय में मैं किसी प्रकार विवश होकर नहीं अपितु स्वतन्त्रतापूर्वक किसी निश्चय पर पहुँचना चाहता हूँ। यदि सरकार बलपूर्वक मुझे स्विट्जरलैंड भेजने की बात मनवाना चाहती है तो आप इधर-उधर की बातें न करके इस सम्बन्ध में बातचीत करना ही बन्द कर दें।

ईश्वर महान है, कम से कम अपने सृजन किए हुए जीवों की अपेक्षा महान है। जब हमें उसमें विश्वास है तो दु:खी होने का कोई कारण नहीं है।

मेरे प्रति स्नेह और सहानुभूति रखने वाले बहुत से व्यक्तियों की मानसिक व्यथा का कारण मैं हूँ, यह मैं जानता हूँ और इससे दुखी भी होता हूँ। परन्तु यह सोचकर मुझे शान्ति मिलती है कि जो लोग एक ही मातृभूमि के प्रति आस्था रखते हैं वह परस्पर के सुख-दु:ख को भी

समान रूप से सहन करने को तत्पर रहते हैं। आशा है कि आप सब सकुशल होंगे। इति।

१२३

इनसीन जेल
६–५–२७

आदरणीय भाई साहब,

मैंने पिछला पत्र आपके पास ६ मई को प्रेषित किया था। उसी दिन एक पत्र छोटे दादा के पास भी डाला था। जैसी कि इस समय की व्यवस्था है, उसके अनुसार या तो कल अथवा आगामी बृहस्पतिवार को कलकत्ते होता हुआ मैं अलमोड़ा जाऊँगा। स्थानान्तरण की आज्ञा तो मुझे प्राप्त हो चुकी है। यदि मौसम विशेष रूप से प्रतिकूल न रहा तो मैं कल चल दूंगा। ६ तारीख को मेजर फिण्डले ने मुझे आपका तार दिया और सलाह दी कि योग अभ्यास अभी आरम्भ न करूँ। अगले दिन अर्थात् ७ मई को गुप्तचर विभाग द्वारा मैंने निम्नलिखित तार आपके पास भेजा था :

"आपका ६ तारीख का तार मिला। मैं श्रीमती दास के पत्र की प्रतीक्षा में हूँ। स्थानान्तरित होकर आगामी मंगलवार को अलमोड़ा जा रहा हूँ।"

कल मुझे एक बड़ा विचित्र अनुभव हुआ। मेरी छाती में दोनों तरफ दर्द था। यह दर्द लगभग घन्टे भर रहा। इस दर्द की सनसनी बिल्कुल ऐंठन जैसी थी और जब तक यह दर्द रहा मेरा बुरा हाल था। पहले जो दर्द हुआ था वह साधारण था और किसी भी रूप में ऐसा नहीं था।

कुछ भी हो, इस पत्र के पहुँचने से पूर्व ही मैं आप से मिलूँगा।

जब तक मुझे अन्य कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती तब तक तो मैं यही समझूँगा कि मैं अलमोड़ा जेल ही जा रहा हूँ।

आशा है आप सब लोग सकुशल होंगे।

आपका परम स्नेही
सुभाष

श्री एस० सी० वसु,
३८/१, एलगिन रोड,
कलकत्ता।

१२४*

केलसल लाज
शिलांग
१४–६–२७

श्रीचरणेषु—

माँ, मैं परसों यहाँ ग्रा गया था, मार्ग में विशेष ग्रसुविधा नहीं हुई। यहाँ ग्राने पर भी वैसा ही हूँ, परन्तु गर्मी ग्रधिक न होने के कारण वैसी क्लान्ति ग्रनुभव नहीं होती। रुक रुक कर वर्षा हो रही है। वर्षा के समय उदास हो जाता हूँ, वर्षा न हो तो बहुत ग्रच्छा लगता है। यहाँ के दृश्य ग्रत्यन्त रमणीय हैं परन्तु दार्जिलिंग की हिम-श्रेणियों का सा सौन्दर्य यहाँ नहीं है। ठण्ड के कारण जो लाभ होने की बात है वह तो होगा ही परन्तु पाचन-शक्ति को लाभ पहुँचेगा या नहीं, ग्रभी यह बात समझ में नहीं ग्राई।

भास्कर बाबू स्टेशन ग्राए थे, ग्रौर बारकपुर तक वह ग्रौर मैं एक ही ट्रेन में ग्राए। जस्टिस दास कैसे हैं? उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में विस्तृत समाचार जानने की इच्छा है। ग्रपना ग्रौर वहाँ के दूसरे ग्रन्य सब लोगों का स्वास्थ्य समाचार भेजना। यहाँ सब कुशलपूर्वक हैं। इति।

ग्रापका सेवक
सुभाष

१२५

केलसल लाज
शिलांग
१७–७–२७

परमपूजनीया,

माँ, ग्रापका १० जुलाई का पत्र मुझे १३ जुलाई को प्राप्त हुग्रा। ग्रपने कथनानुसार मैंने पत्र नहीं लिखा, इसमें मेरा ही दोष है, ग्रतः क्षमाप्रार्थी हूँ। मनुष्य कोई सम्बन्ध मान ले तो उसके साथ साथ कई कर्त्तव्य भी उसके सिर पर ग्रा जाते हैं। ग्रौर उनको पूर्ण न

* श्रीमती वासन्ती देवी के नाम दो पत्र।

करने से अन्याय होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुझसे त्रुटि हुई है।

प्राय: आप जो यह कहती रहती हैं, और लिखती भी रहती हैं—"इस संसार में मेरा साहचर्य और किसी को आनन्द नहीं दे सकता", यह बात सत्य नहीं है। क्या आप नहीं जानती हैं कि बंगाल के युवक (और सबकी बात तो तर्क के कारण छोड़ देता हूँ) आपको आज भी किस दृष्टि से देखते हैं? यदि आप उनको एकदम पराया समझें तो क्या यह उनके प्रति अन्याय न होगा? क्या उन्होंने अपने हृदय के श्रेष्ठ अर्घ्य का उपहार आपके चरणों में अर्पित नहीं किया? उन्हें कितनी आशा थी कि जब देशबन्धु नहीं रहे तो आप आगे बढ़कर उनका कार्य सम्भालेंगी। किन्तु जब उनकी आशा पूर्ण न हुई तो उनके हृदय में असीम व्यथा और निराशा के अतिरिक्त और क्या रहा? देशबन्धु जी अपने जीवन में कहा करते थे कि उनके जीवित रहते समय जनहित के कार्यों में सम्मिलित न होने पर भी आप उनकी अनुपस्थिति में उनके रिक्त स्थान की पूर्ति करेंगी।

सम्भवत: आप कहेंगी कि हिन्दू महिला का स्थान परिवार के भीतर, पर्दे के पीछे है, जन-मंच पर नहीं है। मैं माँ को कर्त्तव्य के सम्बन्ध में उपदेश देने की धृष्टता नहीं करता। परन्तु आज हमारा देश और समाज सामान्य स्थिति में नहीं है। आज हमारे घर-घर में आग फैल रही है। जब घर में आग लगती है तब तो पर्दे में रहने वालों को भी साहस के साथ मार्ग में आकर खड़ा होना पड़ता है। सन्तान को बचाने तथा बहुमूल्य सामान की आग से रक्षा करने के लिए उनको भी पुरुष पराक्रम के साथ परिश्रम करना पड़ता है। क्या इससे उनकी मर्यादा या सम्मान की हानि होती है?

बंगाल की साधना प्रमुख रूप से मातृभूमि में ही प्रकट हुई है। क्या भगवान, क्या स्वदेश, हमारे आराध्य, जो कुछ हैं हमने उनकी कल्पना मातृभूमि के रूप में ही की है। परन्तु हाय! बंगाल के पुरुष निर्वीर्य और कापुरुष हो गए हैं। बंगाल के प्रत्येक जिले में स्त्रियों के ऊपर होने वाले अत्याचारों का प्रतिरोध करने में भी वे अशक्त हैं। उस दिन (कई महीने हुए) 'संजीवनी' में लिखा था—"हे जननी, तुम अपनी मान-रक्षा के लिए स्वयं कृपाण धारण करती हो।" इन शब्दों से मुझे मार्मिक अनुभूति हुई। आज वास्तव में देश की स्थिति इसी प्रकार की हो रही है। केवल यही नहीं, सम्भवत: सन्तान की मान-रक्षा करने के लिए जननी को भी अग्रसर होना पड़े। देश ऐसा ही

श्रीहीन और हतवीर्य हो गया है।

कभी कभी मैं सोचता हूँ कि यदि आप अनेक प्रकार के जनहित के कार्यों में मन लगा सकतीं तो अन्तर्मन की जलन कुछ कम हो जाती। पारिवारिक जीवन के सुख-दुःखों के द्वारा अपने जीवन को नियंत्रित करना कहाँ तक उचित है? आप राजराजेश्वरी थीं, आज आप लौकिक दृष्टि से रिक्तहस्त हैं। जो कोई यह बात सोचता है उसी के हृदय में तीव्र वेदना होती है। हमारे लिए संतोष की बात यही है कि भारत के लोग अनादिकाल से राज ऐश्वर्य की अपेक्षा संन्यास के गौरव को श्रेयस्कर और पूज्य मानते आ रहे हैं। सम्भवतः आपको यह ज्ञात नहीं है कि संन्यास के गौरवमय प्रभाव के कारण आपके देशवासियों के हृदय में आपका स्थान कितना ऊँचा हो गया है। ज्ञात नहीं कि यह बातें कहना मेरे लिए उपयुक्त है या नहीं किन्तु मेरा कहना तो केवल यह है कि जो तीव्र वेदना आपको निरन्तर दग्ध कर रही है वह अत्यन्त सामान्य रूप से मुझे भी समय समय पर पीड़ित करती है। और सम्भवतः यह कहना अत्युक्ति न होगा कि बंगाल के असंख्य युवकों को भी पीड़ित करती है।

पहिले पत्र में आपने लिखा था—"अभिशप्त जीवन के सम्पूर्ण कार्य समाप्त हो चुके हैं। अब केवल शेष की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहने के अतिरिक्त कुछ खोजने पर भी नहीं मिलता। यह ज्ञात नहीं कि कितने युग-युगान्तरों में मेरा अभीष्ट मिलेगा।"

मैं सोचता हूँ कि आप अत्यधिक बेचैनी के कारण कभी कभी यह भूल जाती हैं कि हमारे और देश के हृदय में आपका आसन कहाँ है? यदि आप इस तथ्य को विस्मृत न करतीं तो अचानक पारिवारिक दुर्घटना होने पर भी अपने जीवन को अभिशप्त नहीं बता सकती थीं। जो भगवान को प्रिय हैं उन पर ही निरन्तर दुःख की वर्षा होती है, क्या यह बात एकदम असत्य है? क्या यह बात भी एकदम झूठ है कि मनुष्य का हृदय जितना बड़ा होता है उसका दुःख भी उतना ही बड़ा होता है? आप हमारी आशा पूर्ण कीजिए, आपका आसन सदैव देश के हृदय में अक्षुण्ण रहेगा। जितनी श्रद्धा-भक्ति और प्रेम देशवासी आपके चरणों में अर्पित कर रहे हैं और आगे भी करेंगे क्या उसका दशांश भी किसी तथाकथित भाग्यवान को प्राप्त हो सकता है? कितनी आशा और आकांक्षाओं को हृदय में लेकर देशबन्धु हमें छोड़कर चले गए हैं। उनके वह स्वप्न ही उनकी सर्वश्रेष्ठ वसीयत

थे। वही वसीयत हमारे साथ-साथ आपको भी प्राप्त हुई है। क्या आप वास्तव में हृदय से कह सकती हैं कि आपका कार्य समाप्त हो गया और आपके जाने का समय हो चुका है? यह कहना धृष्टता होगी फिर भी कहने को मन कर रहा है कि आपके जो इष्ट थे वह कभी भी आपकी बात का समर्थन नहीं करेंगे, अपितु मेरी ही बात का समर्थन करेंगे।

आपने लिखा है—"जड़ प्रकृति से मेरी अन्तःप्रकृति की समानता है। यह घनघोर अन्धकार मुझे अच्छा लगता है।" सम्भव है कि आजकल हर समय आपको अन्धकार प्रिय लगता हो, परन्तु सभी को कभी कभी तो अन्धकार प्रिय लगता ही है। अन्धकार प्रिय लगने पर भी क्या उसे अपने हृदय में छिपे हुए आलोक को प्यार नहीं करना चाहिए? क्या इस प्रकार का विचार एक अपराध है? ईश्वर तो सभी को सुखी बनाना चाहता है, आलोक और आनन्द देना चाहता है।

सम्भव है आप किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार करना न चाहती हों, वह बन्धन कार्य का या मनुष्य का ही क्यों न हो। परन्तु हमें तो बचने का कोई उपाय दिखाई नहीं देता। जब से 'माँ' कह चके तभी से बन्धन स्वीकार कर लिया है। इस जीवन में तो यह सम्बन्ध नहीं टूटेगा। संसार की दीवार है, बाधाएँ हैं, लोकाचार हैं, परन्तु इन सब के होते हुए भी हृदय के सम्बन्ध तो झूठे नहीं हो सकते।

मनुष्य जीवन में एक स्थान ऐसा चाहता है जहाँ तर्क, विचार और विवेचना न रहे, रहे केवल श्रद्धा। सम्भवतः इसी कारण माँ का सृजन हुआ होगा। भगवान करें मैं चिरकाल तक इसी भाव से मातृपूजा कर सकूँ।

मेरा स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा अच्छा है, कुछ शक्ति अर्जित की है, नींद अच्छी आ रही है (सम्भवतः कुछ अधिक ही आ रही है), पाचन शक्ति की गड़बड़ भी कम है। वजन भी शायद बढ़ गया होगा, परन्तु वजन लिया नहीं जा रहा इस कारण इस सम्बन्ध में ठीक नहीं बता सकता। पाचन शक्ति कुछ और ठीक होने पर शीघ्र ही स्वस्थ हो जाऊँगा। वर्षा अच्छी हो रही है। हर समय वर्षा भली नहीं लगती। संसार में निरन्तर रुदन सत्य है, परन्तु हँसना भी सम्भवतः सत्य ही है, इसी कारण ऐसा नहीं है कि मुझे चाँदनी से सुख न मिलता हो।

इस विश्वास से बहुत कुछ लिख बैठा कि आप मुझे क्षमा तो

कर ही देंगी। वहाँ के कुशल समाचार जानने की कामना है। मेरा सादर प्रणाम स्वीकार करें। इति।

आपका सेवक
सुभाष

पश्च-लेख :

सेवा सदन के दानियों की सूची मेरे साथ चली आई है। मैं दो एक दिन में रजिस्ट्री द्वारा भेज दूँगा।

सुभाष

१२६*

कलसल लाज
शिलांग
१८–७–२७

प्रिय सन्तोष बाबू,

कृपया संलग्न पत्र को पढ़ लीजिए, साथ ही अन्य कागजों को भी। इन अन्य कागजों का सम्बन्ध श्री अनिलचन्द्र बिस्वास के साथ है। वे दक्षिण-कलकत्ता सेवक समिति के सहायक मन्त्री हैं और हमारे सबसे अच्छे कार्यकर्ता हैं। सम्भवतः आपको याद हो कि इन्होंने दिवाकर मुकर्जी नाम के एक व्यक्ति को, जो उत्तेजना फैलाता फिरता था, एक बार बन्द करके उसकी मरम्मत कर दी थी। इसी आरोप के कारण यह दिक्कतों में फँस गए थे। यद्यपि यह अलीपुर जेल में सरकार बहादुर के मेहमान थे, फिर भी यह वहाँ से बच भागे और इस घटना के परिणामस्वरूप सात वर्ष पुरानी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। सही अर्थों में यह एक राजनीतिक पीड़ित व्यक्ति हैं।

कई कारणों से मैं अनिल बाबू में दिलचस्पी रखता हूँ। पहला कारण तो यह है कि ये सामाजिक सेवा के कार्य-क्षेत्र में पिछले पाँच-छः वर्ष में मेरा दायाँ हाथ रहे हैं। इनके बिना सेवक-समिति का वह रूप कदापि न होता, जो आज है। दूसरा कारण यह है कि परिवार में कई दुर्घटनाएँ एवं मौतें हो जाने के कारण ये बहुत बड़े आर्थिक संकट में फँस गए हैं। तीसरा कारण यह है कि खतरे में पड़कर भी इन्होंने

* श्री सन्तोष कुमार वसु के नाम।

पुलिस का मुकाबिला किया, जिसके फलस्वरूप इनकी नौकरी जाती रही। इन सब कारणों से, प्रत्येक सम्भव रूप में, मैं उनकी सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

मुझे सन्देह है कि शायद ही श्री सेनगुप्त इनकी सहायता करें। अतः इस विषय में मैं उनसे कुछ नहीं कहना चाहता। अतः आपको ही अन्तिम साधन मान कर यह पत्र लिख रहा हूँ।

मैं स्वीकार करता हूँ कि क्षितीश के रवैये से मुझे बड़ी निराशा हुई है, फिर भी मुझे उम्मीद है यदि किसी कोने से कोई सहायता मिल गई तो हम लोग अनिल बाबू को दुबारा उनकी नौकरी वापस दिलाने में सफल हो सकेंगे, चाहे क्षितीश बाबू कितना ही विरोध क्यों न करें।

मुझे आशा है, यदि आप किसी प्रकार भी अनिल बाबू के मामले में दिलचस्पी लेने लगें तो सब बिगड़ा हुआ काम बन जावेगा; क्योंकि आपका साहस अदम्य है, और कार्यक्षमता महान।

मैं समझता हूँ कि इससे अधिक मुझे और कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। आप इस मामले में अपनी तरफ से कोई कसर न उठा रक्खें। बस इतने से ही मुझे पूर्ण संतुष्टि हो जावेगी।

मेरी शारीरिक दशा में शनैः शनैः सुधार हो रहा है। आशा है आप सब सकुशल होंगे।

सप्रेम,

आपका अपना
सुभाष

पश्च-लेख :

कारपोरेशन ने वैद्य-शास्त्र पीठ को अनुदान रूप में भूमि का एक प्लाट दे रक्खा है। यदि उस अनुदान को वापस लेने के प्रश्न को फिर से उठाया जाता है तो मैं आशा करता हूँ कि आप उस प्रयत्न को विफल करने में अपनी पूर्ण शक्ति लगा देंगे।

सुभाष

१२७*

केलसल लाज
शिलांग
३०–७–२७

परम पूजनीया माँ,

श्रीचरणेषु,

अपने पिछले पत्र में मैंने आपको कर्त्तव्य के सम्बन्ध में समझाने की जो धृष्टता की थी उसे आपने स्नेह के कारण क्षमा कर दिया। यदि धृष्ट न बनूँ तो असाध्य साधन जुटाने की शक्ति मुझे कहाँ से मिलेगी ? हम तो लक्ष्मीहीन लोगों के वर्ग में हैं।

हम आत्म-विश्वास के अभाव के कारण माँ का मुँह नहीं जोह रहे हैं। आत्म-विश्वास हममें यथेष्ट है, सम्भवतः कुछ अधिक ही होगा, फिर भी हम माँ को क्यों चाहते हैं ? इसका कारण यह है कि माँ के अतिरिक्त अन्य किसी की भी पूजा नहीं होती। हमारा सामाजिक इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है कि जब भी देश पर विपत्ति आई है तभी हमने माँ का आह्वान किया है। "वन्दे मातरम्" गान से हमारा राष्ट्रीय अभियान प्रारम्भ हुआ था ? इसी कारण आज माँ को इस भाँति पुकार रहे हैं। क्या अब भी पाषाणी का हृदय नहीं पिघलेगा ?

जब मैं अपना परिचय, आपकी सन्तान कहकर दे रहा हूँ तो आप यही आशीर्वाद दीजिए कि मेरे द्वारा आपका नाम कलंकित न हो। मैं आपका योग्य पुत्र साबित होऊँ इससे अधिक मेरी कोई आकांक्षा नहीं है।

मैं, जिस कंटकाकीर्ण मार्ग पर चल रहा हूँ, उस पर भविष्य में भी जीवन भर इसी प्रकार चल सकूँ, बस यही आशीर्वाद दीजिए। संन्यास के एकाकीपन में जीवन सूख न जाए, इस शून्यता में जो अमृत छिपा है, उसके स्पर्श से जीवन मंगलमय हो उठे, बस मैं तो आपसे यही आशीर्वाद चाहता हूँ। क्या यह भी मुझे बताना पड़ेगा कि मेरे लिए आपके आशीर्वाद का कितना मूल्य है ?

असीम धृष्टता और अत्यधिक अयोग्यता की चिन्ता मुझे निरन्तर दग्ध करती रहती है। यह संघर्ष काल्पनिक नहीं है, बल्कि पूर्णरूपेण वास्तविक है। मैं भगवान से सदैव प्रार्थना किया करता हूँ—"अपनी

* श्रीमती वासन्ती देवी के नाम।

पताका जिसके हाथों में दी है उसे उसी के अनुसार शक्ति भी दो।" फिर भी कभी-कभी शंका होती है, भय होता है कि देश जो चाहता है वह मैं नहीं दे पाऊँगा। मेरा प्रयत्न सम्भवतः उस बौने के समान है जो चन्द्रमा को स्पर्श करने की चेष्टा करे। माँ, क्या तुम मुझे अभयदान नहीं दोगी ?

एक बात और बताऊँगा, बहुत दिन से बताऊँ-बताऊँ कर रहा हू परन्तु बता नहीं पाया। जहाँ सन्तान के कुछ कर्त्तव्य हैं, वहाँ उसके अधिकार भी हैं। क्या मैं सेवा करने के अधिकार से वंचित रहूँगा ? क्या चिरकाल तक पराया बना रहूँगा ? क्या इस असीम विश्व में मनुष्य द्वारा निर्मित उसकी छोटी-सी दुनिया ही सबसे बड़ा सत्य है ?

आप अभी बहुत कुछ दे सकती हैं। देश उसके लिए प्रतीक्षा कर रहा है। यह मेरी मन-गढ़न्त बात नहीं है अपितु देश की आवाज है। आप देश को जो कुछ दे सकती हैं वह देंगी अथवा नहीं, इसका निर्णय तो आप स्वयं करेंगी। इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है कि यदि देश ने आपसे इच्छित वस्तु नहीं प्राप्त की तो यह उसका दुर्भाग्य होगा।

आपने लिखा है—"नये लोगों की और बुद्धिमान लोगों की कार्यप्रणाली और विचारधारा समान नहीं होती," यह बात सत्य है, परन्तु तथाकथित नये लोगों के मध्य बहुत-से वृद्ध भी मिल जाते हैं और तथाकथित वृद्धों में बहुत से तरुण भी मिल जाते हैं। यदि तरुण आपको अपना ही एक साथी मान लें, और अपने नेतृत्व का बोझ आपके ऊपर डाल दें, तो इसमें आपको क्या आपत्ति है ?

मैंने कलकत्ते में आपसे जो प्रश्न किया था, उसका निर्णय हो चका है। निर्णय यह है कि यदि आप इस समय हमारा नेतृत्व नहीं करतीं तो सारे बंगाल में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसका नेतृत्व हम हृदय से स्वीकार करें जिस भाँति किसी सभा में, किसी व्यक्ति को सभापति चुनकर नेता के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, बंगाल में उस प्रकार के नेता तो असंख्य हैं, परन्तु आज वास्तविक नेता, जिसके आगे हृदय सहज ही भक्ति-भाव से झुक जाए, बिरले ही हैं। यदि हम आपके नेतृत्व को प्राप्त न कर सके तो हम भाग्यहीन लोगों को आत्म-प्रतिष्ठा के मार्ग पर चलना पड़ेगा। आपका आशीर्वाद ही हमारे लिए अमूल्य सम्पदा है, इसमें संदेह नहीं, किन्तु हम तो आपसे कुछ उससे भी अधिक चाहते हैं।

हम यहाँ कुशलपूर्वक हैं। बहिन का स्वास्थ्य पहले से अच्छा है ;

माँ भी स्वस्थ हैं। मेरा स्वास्थ्य भी शनैः शनैः सुधर रहा है, परन्तु अभी वजन उस अनुपात में नहीं बढ़ रहा है। मैं तो वजन बढ़ाना नहीं चाहता, परन्तु इस ओर डाक्टरों का ध्यान अधिक है। प्रतिदिन सन्ध्या समय घूमने जाता हूँ, और पैदल भी काफी चलता हूँ।

श्रीमती अपर्णा देवी का स्वास्थ्य बहुत खराब था, अब उनका क्या हाल है? क्या मिनु आदि सकुशल हैं? और सबका कुशल-समाचार लिखना। जस्टिस दास कैसे हैं?

मेरा सादर प्रणाम स्वीकार हो। इति।

आपका सेवक
सुभाष

पश्च-लेख :

उस दिन माँ से सुना था कि मेरी बीमारी के सम्बन्ध में आपको स्वप्न में कोई औषधि मिली थी? फिर भी आपने औषधि मुझे नहीं दी और न उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ बतलाया ही। यह सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। क्या चिरकाल तक मुझे पराया मानती रहेंगी? आप तो जानती ही हैं कि आपके द्वारा दी गई औषधि को मैं आग्रह और भक्ति के साथ ग्रहण करता।

१२८*

श्री श्री दुर्गा सहाय

केलसल लाज
शिलांग
३–८–२७

पूजनीया मँझली भाभी,

आपका २८ जुलाई का पत्र यथा समय प्राप्त हो गया था। यहाँ कई दिन से निरन्तर वर्षा हो रही है, परन्तु आज आकाश को कुछ निर्मल देखकर हम सब लोग घूमने गए थे। आजकल आपका तथा मँझले दादा का स्वास्थ्य कैसा है? उनसे कहना कि यह सुभाष का अनुरोध है कि वे रात में अधिक देर से भोजन करना बन्द कर दें।

* श्रीमती विभावती वसु के नाम तीन पत्र।

जिन दिनों मैं कई दिन तक कलकत्ता में रहा उस समय मुझे भोजन के सम्बन्ध में बहुत अनियमितता दिखाई दी। सम्भवतः मैं कभी भी इतना अनियमित नहीं रहा। मेरा उनसे एक और भी अनुरोध है कि वे सितम्बर माह में पूर्ण विश्राम करें। यद्यपि रुपया बहुत महत्व रखता है फिर भी स्वास्थ्य का महत्व रुपये से अधिक है। उनके जैसी स्थिति वालों के लिए अंग्रेजी की एक कहावत है : बीमारी का भार वहन करना उनकी सामर्थ्य से बाहर है। वे मेरे जैसे आवारा तो हैं नहीं। मेरा क्या ? मैं बचूँ या मरूँ, इससे किसी का कुछ नहीं बनता बिगड़ता।

पौलि शनैः शनैः स्वस्थ हो रही है, धीरे-धीरे उसे लाभ हो रहा है। मिस हार्मेन ने उसे बहुत दिन बाद देखकर कहा था कि उसे पहले की अपेक्षा बहुत लाभ हुआ है। जब हम घूमने जाते हैं तो वह भी हमारे साथ लगभग एक मील चल लेती है। वह आजकल उदास भी नहीं रहती, दिन भर बालक को पढ़ाने में व्यस्त रहती है। पौलि के प्रति आपकी सहानुभूति देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

माँ के हाथ की उँगली में बहुत पीड़ा है, औषधिमिश्रित गर्म जल से धोने पर भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। आशंका है कि कहीं सारी उँगली न पक जाए।

वीर आजकल अधिक शैतानी नहीं करता। ड्राइवर भी ठीक काम कर रहा है। गाड़ी में कुछ छोटी-मोटी मरम्मत करवानी पड़ी थी, जिसका जून, जुलाई का बिल तीस रुपये बैठा था। अब गाड़ी ठीक चल रही है।

हमें फलों का पार्सल मिल गया है, अधिकतर फल ठीक ही हैं। ललित (ननी के पति) ने फलों का एक और पार्सल अपने एक मित्र के द्वारा भेजा था, वह भी हमें कल ही मिला है।

कलकत्ता जाना आपने अपना कर्त्तव्य समझा, यह सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई। मैं तो पहले से ही सोचता था कि आपका यहाँ रहना ठीक नहीं है। इसी कारण आपसे बार-बार कहा था, और मँझले दादा को भी लिखा था, जिससे आप किसी प्रकार का संकोच अनुभव न करें। मेरी सुविधा के कारण, यदि आप कर्त्तव्य की अवहेलना करके या स्वयं कष्ट उठाकर यहाँ रहतीं तो उससे भी मुझे दुःख ही होता। मैं जिस मार्ग पर चल रहा हूँ, उसमें अपनी सुविधा या सुख के लिए किसी को भी कष्ट में डालना महापाप समझता हूँ। यह मैं जानता हूँ कि आदर्श के अनुसार कार्य करना बहुत कठिन होता है। मेरे

कारण दूसरों को जो असुविधायें होती हैं, या कष्ट होते हैं उन्हें मैं हर समय रोकने में असमर्थ हूँ। फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार आदर्श का पालन करना ही उचित समझता हूँ।

रुपयों के सम्बन्ध में आपने जो लिखा है वह उचित ही है, परन्तु जो कुछ मैंने लिखा था वह बात भी ठीक है। जो रुपया उपार्जन करे उसे यह भाव हृदय में रखना चाहिए—"रुपया मिट्टी; मिट्टी रुपया।" यह भाव हृदय में रखने से मनुष्य स्वार्थी अथवा कंजूस नहीं बन सकेगा। परन्तु मुझे ऐसा कहना शोभा नहीं देता, क्योंकि मेरे लिए प्रत्येक रुपये का मूल्य बहुत अधिक है। जो रुपये मैं अपने ऊपर व्यय करता हूँ उनके सम्बन्ध में मैं हर क्षण सोचता हूँ कि यदि इन्हें मैं दूसरों के लिए व्यय कर पाता तो मैं कितना सौभाग्यशाली होता। यह भाव मन से दूर नहीं हटता, और सम्भवतः हटना भी नहीं चाहिए (यहाँ ये सब बातें मैं अपनी ओर से कह रहा हूँ आपकी ओर से नहीं)। जब मैंने अपना यह आदर्श बना लिया है कि मैं अपना धन जनहित के लिए बाँट दूँगा, तब यदि मैं किसी स्वार्थ को हृदय में स्थान दूँ तो निश्चय ही मेरा पतन हो जावेगा। यह सब बातें कहने और लिखने के उपरान्त भी मैं पर्याप्त मात्रा में स्वार्थी हूँ, और अपने लिए मैं बहुत कुछ करता हूँ। इसका कारण यह है कि एक दिन में तो आदर्श प्राप्त किया नहीं जा सकता, और स्वार्थपरता से मुक्त होने के लिए तो बहुत दिन तक साधना करने की आवश्यकता पड़ती है।

यदि नवौ दीदी कष्ट उठाकर अथवा नदादा के लिए असुविधा उत्पन्न करके हमारे कारण यहाँ आतीं तो उससे मुझे तनिक भी प्रसन्नता न होती। परन्तु छाया या राधु के लिए अथवा स्वयं आबोहवा बदलने के विचार से आतीं तो उससे मुझे अवश्य सुख प्राप्त होता। इस समय इतना ही कहना पर्याप्त है। मुझे तो अपने आपको सदैव प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार रखना पड़ेगा, और इसके लिए दीर्घ-कालीन अभ्यास की आवश्यकता है। यदि ऐसा न हुआ तो जब किसी दिन अचानक विपत्ति आ धमकेगी तो उस समय मन को स्थिर रखना कठिन होगा। मैं अति अधम, अति दुर्बल था; परन्तु गत सोलह-सत्रह वर्ष से अपने मन से संघर्ष करते-करते कुछ शक्ति प्राप्त की है। सम्भवतः अभी इस संग्राम का अन्त नहीं हुआ क्योंकि मन की उन्नति की भी कोई सीमा नहीं होती, मनुष्य जितनी ऊँचाई पर पहुँचता है, उससे और अधिक ऊँचे पहुँचने की इच्छा बनी रहती है। परिणाम यह होता है कि संघर्ष

बराबर चलता ही रहता है।

जाने दीजिए इन व्यर्थ की बातों को। इनकी ओर कुछ ध्यान मत दीजिएगा। मैं पागल नहीं हूँ परन्तु यदि आप मानती हैं तो इसमें भी मुझे कोई ऐतराज नहीं है। यदि मनुष्य में पागलपन का तनिक भी अंश न हो तो भला कैसे काम चल सकता है? क्या पूर्णतः स्थिर मस्तिष्क होना उचित है? मेरे लिए चिन्ता मत करना, मैं सकुशल हूँ। सम्भवतः पौलि कुछ अकेलापन अनुभव कर रही होगी। यहाँ उसकी उम्र का भी तो कोई नहीं है।

रांगा मामा बाबू के आने के सम्बन्ध में कुछ निश्चित हो तो मुझे सूचित करना, और अशोक से कहना कि पुस्तकें भेज दे। वजन लेने की मशीन का टूटा हुआ पुर्जा मरम्मत होकर आ गया है, परन्तु मशीन में पूर्ववत् सही विवरण नहीं आता। दो-चार पौण्ड इधर-उधर हो जाता है। मेजदादा से कहना कि इस समय का वजन १४४—१४६ पौण्ड है, और कलकत्ता से चलते समय मेरा वजन १३४ पौंड था।

'माँ' नामक पुस्तक को एक बार फिर पढ़ने की इच्छा है। यदि किसी व्यक्ति के हाथ भेज सको तो भेज देना, उस पुस्तक की समीक्षा लिखना चाहता हूँ।

जिस प्रश्न पर मैंने बहुत विचार किया था उसकी मीमांसा कर चुका हूँ।

आप लोग जब कलकत्ता जा रहे थे उस समय क्या शान्ताहार स्टेशन पर साहा महाशय पिताजी के लिए दूध लाये थे? इस सम्बन्ध में तो आप लोगों ने लिखा ही नहीं। उनको एक पत्र द्वारा धन्यवाद देना आवश्यक है। यहाँ रहने के सम्बन्ध में मेरा यह विचार है:

(१) यदि आवश्यकता हुई तो कौंसिल के कार्य से इस महीने की बीस-बाईस तारीख तक कलकत्ता जाऊँगा। कौंसिल समाप्त होने के उपरान्त ही कलकत्ता से कहीं बाहर जाऊँगा।

(२) आप सब यदि सितम्बर के महीने में आएँ तो मैं शिलांग वापस जाऊँगा। बाद में सितम्बर के अन्त में (अथवा सुविधा हो तो अक्टूबर के बीच में) हम सब एक साथ कलकत्ता जा सकते हैं।

(३) आप और लड़कों के न आने पर सम्भवतः मेजदादा अकेले यहाँ नहीं आयेंगे। वह कहेंगे कि मेरे लिए जलवायु-परिवर्तन करना आवश्यक नहीं है। आजकल मेरा स्वास्थ्य भी ठीक है, अतएव कलकत्ता में रहकर ही कार्य करूँगा। यदि आप कहें कि लड़के-लड़कियों के स्वास्थ्य

के लिए जलवायु का परिवर्तन किया जाना आवश्यक है तब वे आपकी बात को सरलता से नहीं टाल सकेंगे। यदि अवकाश के समय में कोई व्यवसाय करना विशेष रूप से आवश्यक हुआ तो वे सितम्बर यहाँ बिताकर, अक्टूबर में कलकत्ता लौट सकते हैं। परन्तु उनको कम से कम एक माह अवश्य विश्राम करना चाहिए।

(४) आप लोगों के यहाँ आने पर तो बड़े दादा और भाभी आदि भी आ सकते हैं। आपका घर तो खाली पड़ा है, आप यहाँ आकर इस पर अपना अधिकार कर सकते हैं। बड़े दादा और भाभी मेरे कमरे में रहेंगे। मैं बड़े लड़कों (जैसे अशोक) के साथ कुटीर में रह सकता हूँ। इस प्रकार मुझे कुटीर पर अधिकार करने का अवसर भी मिल जायेगा।

(५) यदि कलकत्ता से सितम्बर मास तक यहाँ कोई नहीं आता तो कौंसिल के उपरान्त मेरी इच्छा यहाँ लौटने की नहीं है। तब मैं कटक, पुरी की ओर जाऊँगा।

(६) यदि कौंसिल में मेरा जाना नहीं हुआ और सितम्बर माह तक यहाँ कोई नहीं आया तो हम सब (अब जो यहाँ हैं) इस मास के अन्त तक यहाँ से जा सकते हैं।

अनेक बातें लिख दीं। मेरा स्वास्थ्य शनैः शनैः सुधर रहा है। पेट की दशा भी पहले से कुछ अच्छी है। रात को यहाँ अल्प आहार करता हूँ, जैसे टोस्ट आदि।

आशा है कि वहाँ सब सकुशल होंगे। मेरा प्रणाम स्वीकार हो। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१२६

श्री श्री दुर्गा सहाय

शिलांग
११-८-२७

परम पूजनीया मँझली भाभी,

आपका दिनांक ५ का पत्र दिनांक ८ को मिला। लिफाफे पर एक बजे मध्याह्न की मोहर है, फिर भी ऐसा जान पड़ता है कि यह पत्र उस दिन की डाक से नहीं निकल पाया। आप किसी के

द्वारा यह बात मालूम करना कि आसाम मेल पकड़ने के लिए, एलगिन रोड के डाकखाने में, किस समय पत्र डालना चाहिए। जी० पी० ओ० में तो दो बजे तक पत्र डालने से उस दिन की मेल पकड़ सकता है।

यहाँ इस महीने में तो बहुत वर्षा हुई, बीच-बीच में तो हमारा घूमना भी रुक गया था। फिर भी घर में पड़े रहना, जिस प्रकार पहले बुरा लगता था, वैसा अब नहीं लगता।

ऐसा प्रतीत होता है कि आपने अपने सम्बन्ध में अभी तक कुछ निश्चित नहीं किया। मेरे विचार से आपकी कलकत्ता छोड़ने की प्रबल इच्छा नहीं है। परन्तु मैं कहता हूँ कि घर तो कहीं भागा जा नहीं रहा, जब एक बार बन गया है तो अब वहीं खड़ा रहेगा। मकान को सजाने का भी बहुत समय मिलेगा, इसके लिए अभी से इतनी चिन्ता क्यों ?

माँ की उँगली अभी तक ठीक नहीं हुई। वे कह रही थीं कि जब तक पौलि रहेगी, सम्भवतः उन्हें भी उतने ही दिन तक रहना पड़ेगा।

बैन्जर्स फूड खाने से मेरे पेट की दशा में कुछ सुधार है। वजन लेने की मशीन ठीक हो गई है, परन्तु अब भी पहले की भाँति पूर्णतः सही नहीं हुई है। यहाँ आने के पश्चात् मेरा वजन कुछ बढ़ गया है। आजकल पौलि का स्वास्थ्य भी पहले की अपेक्षा कुछ अच्छा दिखलाई पड़ता है और उसके मुख पर हँसी भी झलकती है, विश्व भी ठीक-ठाक है।

आप भी सबका कुशल समाचार भेजिए। यहाँ हम सकुशल हैं। मेरा प्रणाम स्वीकार हो। इति।

सेवक
सुभाष

१३०

श्री श्री दुर्गा सहाय

शिलांग
१९२७

यहाँ रहने पर लड़कों के स्वास्थ्य में सम्भवतः कुछ और सुधार होता, परन्तु उनका जाना ही उचित रहा, क्योंकि अब पढ़ाई-लिखाई की हानि तो न होगी। मैं सोचता हूँ कि यहाँ जो इतना धन व्यय हो

रहा है यदि उसका और कुछ सदुपयोग होता तो मुझे सुख मिलता। मेरे लिए इतना खर्च होता है, यह बात मुझे काँटों के समान चुभती है। सम्भव है यह मेरी दुर्बलता हो, परन्तु स्वभाव को तो सरलता से नहीं बदला जा सकता।

साराभाई (अम्बालाल साराभाई) दिनांक १७ को जहाज से रवाना हुए थे। सम्भवतः २५ तक पहुँचेंगे। यदि उनको एक बार चाय पर निमंत्रित कर सको तो अच्छा रहेगा। सम्भवतः वह दो तीन दिन से अधिक नहीं रुकेंगे। मैंने विश्वनाथ बाबू से कहा है कि वे उन्हें एक बार सेवा सदन दिखा दें।

सब लड़कों को काशीराम दास द्वारा सम्पादित महाभारत और कृतिवास की रामायण पढ़ने के लिए देना। योगीन बाबू का संस्करण सम्भवतः सबसे अच्छा है। उन्होंने आधुनिक बंगाली भाषा में काशीराम दास और कृतिवास की प्राचीन भाषा का अनुवाद किया है। ये ग्रन्थ कविता में लिखे गए हैं, अतः लड़कों को पढ़ने में सुविधा होगी। महाभारत और रामायण हमारी सभ्यता का मूल आधार हैं, यह बात उम्र के साथ-साथ मेरी समझ में आती जा रही है। मुझे इस बात का दुःख है कि मैं महाभारत और रामायण को आरम्भ से अन्त तक भली भाँति नहीं पढ़ पाया।

अशोक से कह देना कि वह मेरे काम की कुछ पुस्तकें छाँटकर रख ले। और यह भी कहना कि किसी व्यक्ति के हाथों यदि भेजने का अवसर मिले तो अवश्य भेज दे। उन पुस्तकों में 'बंगला अभिधान' (जो मैं रंगून से लाया था) और 'शेक्सपीयर के वर्क्स' भी रख दे। छोटे टाइप की एक पुस्तक में शेक्सपीयर का सारा साहित्य है, मुझे उस पुस्तक की आवश्यकता है। सम्भवतः वह पुस्तक बड़े मकान में है।

क्या आपने 'माँ' पढ़ ली ? कैसी लगी ?

आप सबके चले जाने से मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गया था। खाली मकान देखकर मन में विचित्र भावनाएँ उठने लगती हैं। थोड़ी देर के लिए तो ऐसा जान पड़ता है मानों दैनिक जीवन-सूत्र ही लुप्त हो गया। यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि इसमें थोड़ा कष्ट भी हुआ है। मैं सोचता था कि मैं माया ममता से मुक्त हूँ। इसी कारण कुछ आघात देकर प्रकृति ने मुझे समझा दिया कि मैं अभी एक दम माया-ममता के बन्धनों से मुक्त नहीं हो पाया हूँ। इस बात का विचार अभी नहीं करूँगा कि यह सुख का विषय है अथवा दुःख का।

प्रथम आघात के पश्चात् मैंने सोचा कि मेरे मन की ऐसी दशा क्यों हुई ? इस सम्बन्ध में अभी तक सोच रहा हूँ। जिनकी स्थिति मेरे समान है वे यदि ममता रहित नहीं हो सकते तो उन्हें कष्ट ही अधिक मिलेगा। तीन वर्ष पूर्व जब कारागृह से बुलावा आया था और मैं बिस्तर छोड़कर अलीपुर जेल की ओर चल दिया था तब तो मुझे एक बार भी बुरा अनुभव नहीं हुआ था। मैं पूर्ण निर्विकार भाव से जेल चला गया था और वहाँ अढ़ाई वर्ष पूर्ण निर्विकार भाव से बिता दिये। उस समय तो एक प्रकार से जीवन के प्रति ममता छोड़ ही दी थी। किन्तु अब मेरी ऐसी दशा क्यों हुई ? क्या यह मन की दुर्बलता है, या आयु का प्रभाव है, अथवा बहुत दिन तक घर से दूर रहने का परिणाम है ?

अब तो मेरा मन बैठा जाता है। निश्चित ही साथियों का अभाव अनुभव करता हूँ। परन्तु उससे मुझे विशेष असुविधा नहीं होती। नीला आकाश, हरियाली से भरा मैदान, चारों ओर पर्वत श्रेणियाँ, वन में आलोक और छाया की आँख-मिचौनी, झरने की अविराम कल-कल ध्वनि, इन सबके साथ मैं अच्छा अनुभव करता हूँ। इससे शरीर और मन बहुत प्रफुल्लित होता है। जब आकाश कुछ साफ होता है तब मैं बाहर घूमता हूँ और प्रकृति की नीरव भाषा मुझे हृदय में सुनाई पड़ती है। मुझे उस कवि की यह पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं :—

जन कोलाहल से दूर
हमारा यह जीवन
नीरवता की शान्त गोद में
पाता है वृक्षों में वाणी
झरनों की गति में विश्व-ज्ञान
पाषाणों के कण-कण में
है छिपी सीख अनुपम महान्
हर वस्तु में है छिपा हुआ
जगती के जीवों का कल्याण।

सम्भव है कि बहुत से मनुष्यों के बीच घिरा रहने पर यह अनुभूति न होती। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ अपने हृदय को एकाकार करना, मन को संयत करके, प्रकृति की भाषा समझने का प्रयास करना, कष्टसाध्य अवश्य है ; परन्तु सामान्य रूप में यदि कोई यह कर सके तो उसका हृदय आनन्द से ओत-प्रोत हो जायेगा।

मेरी इस व्यर्थ की बकवास के लिए आप बुरा नहीं मानेंगी।

अंग्रेजों से झगड़ा करके संसार से मुँह छिपाने वाला मुझ जैसा व्यक्ति भी वाचाल हो गया है ?

मैंने अभी यह निश्चित नहीं किया है कि कौंसिल की बैठक के समय मेरा क्या कार्य-क्रम रहेगा। जब आपकी पूजा की छुट्टियों का कार्य-क्रम निश्चित हो जावे तब मुझे सूचित करना। आजकल आपका स्वास्थ्य कैसा है ? रात को नींद आती है या पूर्ववत् जागते ही बीतती है ? दर्द दूर हुआ अथवा अभी नहीं ?

और अधिक क्या लिखूँ। आप लोगों को सादर प्रणाम। बच्चों को प्यार। इति।

सेवक
सुभाष

पत्र (लिफाफा नहीं) सूत से बाँधकर मोहर लगा रहा हूँ। जिस दशा में मोहर मिले मुझे सूचित करना।

सुभाष

१३१*

केलसल लाज
शिलांग
१२-९-२७

परमपूजनीया माँ,

श्री चरणेषु—

आपका दिनांक २ का पत्र यथा समय प्राप्त हुआ। यहाँ आने के उपरान्त मैंने आपको पत्र लिखा था, आशा है आपको यथा समय मिल गया होगा। मेरे यहाँ आने के पश्चात् एक सप्ताह तक निरन्तर वर्षा होती रही। कल से धूप निकल रही है। अभी तक आकाश में बादल घिरे हुए हैं। इस महीने भी सम्भव है थोड़ी बहुत वर्षा हो। अभी तक मेरा हाजमा खराब ही चल रहा है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य ठीक है।

* श्रीमती वासन्ती देवी के नाम पाँच पत्र।

सितम्बर माह में यहाँ ही रहूँगा। यदि एक महीने के लिए मकान मिल गया तो अक्टूबर में भी रह सकता हूँ। न मिला तो अक्टूबर के आरम्भ में कलकत्ता लौटूँगा। इसके पश्चात् पुरुलिया या सिजुया जाने की इच्छा है। आप पुरुलिया कब जावेंगी और कितने दिन तक ठहरेंगी, मुझे इस सम्बन्ध में अवश्य लिखें। आपके साथ पुरुलिया और कौन जाएगा? सुधीर बाबू आदि ने कहाँ जाना निश्चित किया है?

आपका स्वास्थ्य कैसा है? क्या आजकल भी हृदय में पीड़ा होती है? आशा है अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में विस्तार से लिखेंगी। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१३२

केलसल लाज
शिलांग
१–१०–२७

परमपूजनीया माँ,

श्री चरणेषु—

आपका २४ सितम्बर का पत्र यथा समय प्राप्त हुआ। यहाँ आने के पश्चात् मैंने कुल तीन पत्र भेजे हैं, शेष दो पत्र नं० २ बेलतला रोड के पते पर भेजे थे। आशा है आपको सभी पत्र यथा समय मिल गए होंगे।

मेरा स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। यहाँ पर अधिक वर्षा होते हुए भी बच्चों में से दो एक की तबीयत खराब हो गई थी, परन्तु अधिक चिन्ता की बात नहीं है। मेजदादा यहाँ वापस आ गए हैं। डा० राय भी आए हुए हैं, गोस्वामी के आने की बात थी, परन्तु वे नहीं आए। डा० राय से सुना था कि आपने गोस्वामी को बनारस के मकान के सम्बन्ध में लिखा था। दो-तीन दिन हुए हाल्दार साहब भी यहाँ सपरिवार आ गए हैं।

अक्टूबर के मध्य में हम यहाँ से चले जाएँगे। मैं इसके उपरान्त

कहाँ रहूँगा यह अभी निश्चित नहीं कर पाया। सम्भवतः कुछ महीने तक कलकत्ता रहूँ। आपके पास जाने की इच्छा है, परन्तु भीड़ के कारण हिम्मत नहीं पड़ती। भीड़ के कारण ही आपसे यहाँ आने का अनुरोध नहीं किया। जैसा भी हो, कलकत्ता पहुँच कर निश्चित किया जाएगा। बिहार की खादी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा वह सत्य है, परन्तु केवल आलोचना करने से ही काम नहीं चलेगा, कर्मक्षेत्र में उतरे बिना कुछ भी नहीं होगा।

मुझे अब आगे क्या करना है इस सम्बन्ध में विचार कर लीजिएगा, मिलते ही पहला प्रश्न इस सम्बन्ध में ही करूँगा। सम्भवतः आप यह जानती होंगी कि आपके परामर्श का मेरे लिए बहुत मूल्य है। आपका विचार जाने बिना अब मैं किसी काम में हाथ डालना पसन्द नहीं करता।

आशा है वहाँ सब सकुशल होंगे। मेरा सादर प्रणाम स्वीकार कीजिए। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१३३

केलसल लाज
शिलांग
१५-१०-२७

परमपूजनीया माँ,

श्री चरणेषु—

आपका दिनांक ६ का पत्र दिनांक ६ को प्राप्त हुआ। मैं इससे पूर्व नं० २ बेलतला के पते पर दो तीन पत्र लिख चुका हूँ, आशा है वे आपको मिल गए होंगे।

मेरा विजया का सादर प्रणाम स्वीकार करना।

आपने लिखा है—"किसी भी विषय में तुम मेरी सहायता का भरोसा मत करना।" यह बात पढ़कर मुझे दुःख हुआ। अपने लिए दुखी नहीं हुआ, अपितु देश की बात सोचकर दुखी हुआ। आजकल बंगाल के दुर्दिन हैं, जिसके कारण इस समय कार्य करने वाले व्यक्तियों का अभाव है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि मि० सेनगुप्त

ने कांग्रेस का काम छोड़ दिया है। किरण बाबू ने मुझे नोटिस दे दिया है कि अक्टूबर से वह मेरे ऊपर बोझ लाद कर अवकाश लेंगे। तुलसी बाबू का देश के कार्यों में अधिक उत्साह नहीं दिखाई देता। पाँच बड़ों को तो आप जानती ही हैं, तुलसी बाबू के अतिरिक्त वे सब पेशेवर लोग हैं, अतएव कांग्रेस के कार्यों के लिए वे अधिक समय नहीं दे सकते। इस समय केवल विधान बाबू ही बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के कार्यों में रुचि लेते हैं। परन्तु उनके पास भी समय का अभाव है। कांग्रेस का भण्डार एकदम रिक्त है। देशबन्धु के आत्मीय स्वजनों में से एक भी व्यक्ति देश का काम नहीं कर रहा। हमें तो एक आपका ही भरोसा था, परन्तु आप भी कोई उत्तरदायित्व नहीं लेना चाहतीं। यह सब देखकर मैं कई दिन से सोच रहा हूँ कि मुझे ही इतना सिरदर्द क्यों है? मैं क्यों भूत का सा यह बोझ ढोता फिरूँ? राजनीति का क्षेत्र मेरे लिए उपयुक्त कर्मक्षेत्र नहीं है, मैं तो घटनाचक्र के कारण राजनीति के भँवर में आ फँसा हूँ। इस स्थिति में मैं भी अपने उपयुक्त कर्मक्षेत्र में लौट सकता हूँ। संसार में मेरी आसक्ति नहीं है इस कारण मैंने गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश ही नहीं किया। क्या मैं देश की वर्तमान दशा में शान्ति का मार्ग छोड़ कर नए सिरे से संसार-जाल में लिप्त होऊँ? कुछ समझ में नहीं आता।

आपको देश चाहता है, राजबन्दी चाहते हैं; सबने मिलकर बार-बार मुझसे कहा था कि मैं आपसे उनकी बात कहूँ; गर्व के साथ मैंने भी सोचा था कि यदि मैं उनकी बात आप से कहूँगा तो आप टालेंगी नहीं। भगवान ने मेरा वह अहंकार चूर्ण कर दिया। बहुत विश्वास लेकर मैं जेल से निकला था किन्तु अब देखता हूँ कि मेरी वह आशा निर्मूल थी। जिन पर बहुत भरोसा था उनमें से अधिकांश, देश के लिए कार्य करना तो दूर रहा, देश की समस्याओं के सम्बन्ध में सोचना भी नहीं चाहते। कांग्रेस की वर्तमान स्थिति को देखकर आँखों में आँसू आ जाते हैं। कांग्रेस का जो स्वरूप हमारे समक्ष है, क्या इसी स्वरूप के लिए देशबन्धु ने अपना अमूल्य जीवन उत्सर्ग किया था? देशबन्धु के आत्मीय स्वजन, बन्धु बान्धव, सहयोगी और अनुचर, जिन्हें उनको भली भाँति पहचानने और समझने का अवसर मिला था, उन्हीं की देश के कार्यों में अधिक अनास्था है, इसका क्या कारण है?

देशबन्धु के देहान्त के पश्चात् जिन लोगों ने कर्त्तव्य की अवहेलना की है उनमें आपका पहला नम्बर है, क्योंकि उनके स्वर्गवासी होने के पश्चात् भी आपमें उनकी आत्मा, उनकी अतृप्त आशा-आकांक्षायें

स्थित हैं। उस आत्मा का प्रतीक होते हुए भी, और आपका इतना प्रभाव होते हुए भी आप कुछ करना नहीं चाहतीं। बहुत दुखी होकर ही मैं ऐसा लिख रहा हूँ। इस धृष्टता के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। मैं अन्तिम बार अपना दुखड़ा आपको लिख रहा हूँ, आपको और अधिक परेशान नहीं करूँगा।

मैं सोचता था कि इस महीने के अन्त में अथवा नवम्बर के प्रारम्भ में आपके पास एक बार जाऊँगा, परन्तु अब देखता हूँ कि आने से कोई लाभ नहीं होगा। अपना मार्ग स्वयं ही खोजना पड़ेगा। जो अपनी शक्ति के बाहर है उसके लिए प्रयास करने से कोई लाभ नहीं। बंगाल का दुर्भाग्य न होता तो थोड़े से समय में ही कांग्रेस की यह दुर्दशा न हुई होती।

एक बात और कहकर मैं पत्र समाप्त करता हूँ। मैंने जीवन में कभी किसी की खुशामद नहीं की। दूसरों को अच्छी लगने वाली बातें करना मुझे नहीं आता। अपने नेता के जीवन-काल में जब सब लोग उनको सन्तुष्ट करने के लिए उनकी मनचाही बातें किया करते थे तब भी मैं अप्रिय सत्य कहकर उनसे लड़ता रहता था। आपको सन्तुष्ट करने के लिए मैंने न तो कोई बात कही है और न कभी कहूँगा ही। देशवासी आपको चाहते हैं, आपके ऊपर उनकी अपार श्रद्धा है। सब दल आपकी बात मानेंगे, आपका स्वागत करेंगे। मैंने ये सब बातें सत्य समझकर और विश्वास करके आपको बता दी हैं। सन्तुष्ट करने या आपकी खुशामद करने के लिए ये बातें नहीं कही गईं और न ही कभी कहूँगा। आप यह समझ लें कि देशवासियों के हृदय में आपका क्या स्थान है, देश में आपकी क्या स्थिति है, इसी लिये आपको ये सब बातें लिखी हैं।

मैं नहीं चाहता कि देश में कोई दल आपकी स्थिति का नाजायज लाभ उठाये। यदि ऐसी आशंका होती कि कोई भी दल ऐसा करके अपना प्रभाव जमाना चाहता है तो उसके सम्बन्ध में भी मैं आपको बता देता। आपको कोई दल विशेष ही नहीं अपितु सम्पूर्ण देश चाहता है। आप देश की अमूल्य सम्पत्ति हैं, अतएव हम आपको सदैव दलबन्दी से मुक्त रखना चाहते हैं। देश आपका अनुसरण करने के लिए ही आपका नेतृत्व चाहता है।

आपका भी एक व्यक्तित्व है, देशबन्धु के जीवन काल में भी आपका अपना व्यक्तित्व था, इसी कारण आपकी शक्ति पर जनसाधारण

को इतना विश्वास है। देश का विचारवान वर्ग आपका नेतृत्व अकारण ही नहीं चाहता। वे आपके प्रति अन्याय भी करना नहीं चाहते। वे नहीं चाहते कि आपको प्रत्येक रास्ते और पड़ाव पर भाषण करते हुए घूमना पड़े। वे तो देश के कार्यों में आपकी आस्था और उत्साह चाहते हैं, आपका उपदेश और परामर्श चाहते हैं। वे तो संसार में यह घोषणा करना चाहते हैं कि देशबन्धु के आरम्भ किए हुए कार्य को आपने व्रत के रूप में ग्रहण कर लिया है। वे तो केवल यह देखना चाहते हैं कि देशबन्धु की आशाएँ और आकांक्षाएँ आपके जीवन-काल में ही पूर्ण हो जाएँ।

जिन लोगों ने सुख-दु:ख में देशबन्धु का अनुसरण किया है, वे आज भी उसी त्याग के साथ, आपका अनुसरण करने को तत्पर हैं। यदि आपको मेरे कथन का विश्वास न होता हो तो एक बार परीक्षा करके देख लीजिए। आपके संकेत पर बंगाल चलता है अथवा नहीं, इस बात की परीक्षा आप जब चाहें तब कर सकती हैं।

जाने दीजिए, मैंने बहुत सी बातें लिख दीं, कुछ मर्यादा के विरुद्ध भी कह गया हूँ, उसके लिए क्षमा कीजिएगा। मैं किराए का सैनिक नहीं हूँ। सहज में ही कहीं आत्म-समर्पण नहीं करता परन्तु जहाँ करता हूँ वहाँ से सरलता से लौटता भी नहीं। मेरे त्याग और मेरी उदारता पर आपका सदैव अधिकार रहेगा। आप उसका उपयोग करें या न करें यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। इस समय मुझे अपना मार्ग स्वयं ही निश्चित करना पड़ेगा। वह मार्ग मुझे कहाँ ले जाएगा यह मैं अभी तक निश्चित नहीं कर पाया हूँ।

सम्भवत: यहाँ अधिक दिन तक नहीं रहूँगा, अतएव पत्र यदि लिखें तो कलकत्ते के पते पर ही लिखिएगा। नवम्बर का कार्यक्रम अभी निश्चित नहीं किया, कलकत्ता से बाहर (करस्योंग या पश्चिम में) रह सकता हूँ। आपकी कुशलता का समाचार प्राप्त करके मुझे प्रसन्नता होगी। इति।

आपका सेवक
सुभाष

पश्च-लेख :

समाचार पत्र में पढ़ा था कि मादाम जगलुल ने अपने स्वर्गवासी पति श्री जगलुल पाशा का कार्यभार सम्भाल लिया है। मादाम सन यात-सेन तो बहुत समय से अपने दिवंगत पति का कार्य करती आ रही हैं।

सम्पूर्ण मिस्री जाति ने मादाम जगलुल को माँ कहना स्वीकार किया है। उनके श्रद्धा, भक्ति और विश्वास के सम्बन्ध में उन्होंने शंका नहीं की ; किन्तु भारतवर्ष तो अभागा देश है।

सुभाष

१३४

३८/१, एलगिन रोड
कलकत्ता
बृहस्पतिवार, २०–१०–२७

परमपूजनीया माँ,

श्री चरणेषु—

शिलांग से चलते समय परसों आपका पत्र मिला था। मैं कल यहाँ आ पहुँचा हूँ। मँझले दादा, भाभी आदि अभी तक नहीं आए। आगामी रविवार अथवा सोमवार को यहाँ आ जाएँगे। नेरू को बुखार होने के कारण वह रुक गए हैं। मैं और मीरा साथ आए हैं। माँ और पिताजी यहाँ पर हैं, सम्भवत: १ नवम्बर तक कटक जाएँगे।

विधान बाबू आगामी रविवार या सोमवार तक यहाँ आएँगे। आप वहाँ और कब तक रहेंगी? यहाँ के और शिलांग के समाचार एक प्रकार से ठीक ही हैं। जिस दिन शिलांग से रवाना हुए उससे पहले ही नेरू का ज्वर उतर गया था। मेरा सादर प्रणाम स्वीकार करना। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१३५

३८/१, एलगिन रोड
कलकत्ता
२४–१०–२७

परमपूजनीया माँ,

श्री चरणेषु—

आज प्रातःकाल मैं यहाँ सकुशल पहुँच गया हूँ। यहाँ भी सब ठीक ठाक हैं। मेजदादा, मेजभाभी और लड़के लड़कियाँ भी आज यहाँ आ गए हैं। नेरू को फिर ज्वर नहीं आया। वह भी सकुशल है, परन्तु बहुत दुर्बल हो गया है। डा० राय भी आ गए हैं। श्रीयुत श्रीनिवास आयंगर कल आएँगे। सन्ध्या समय सत्येन बाबू किरण बाबू आदि से साक्षात्कार होगा। आशा है आप सब कुशल पूर्वक होंगे। मेरा सादर प्रणाम स्वीकार हो। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१३६*

१, वुडबर्न पार्क
कलकत्ता
१८–७–१९२८

आदरणीय पण्डितजी,

मैंने कल प्रातःकाल कांग्रेस-सभापति पद के सम्बन्ध में आपके पास एक तार भेजा था। रात्रि को मुझे उसका उत्तर भी प्राप्त हो गया।

यदि किसी कारण से कांग्रेस के सभापति पद के लिए आपने खड़ा होने से मना कर दिया तो न जाने सारे बंगाल में कितनी निराशा फैल जावेगी। आपके न खड़े होने पर, इस प्रान्त में निराशा फैलने के बहुत से कारणों में से एक कारण यह भी है कि स्वराज्य पार्टी के कार्यों और उसकी नीति के साथ आपका गहरा सम्बन्ध रहा है। इसी लिए यहाँ का बच्चा बच्चा आपका समर्थन करता है। मैं यहाँ दूसरे

* पं० मोतीलाल नेहरू के नाम।

प्रान्तों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता, परन्तु मुझे बहुत कुछ विश्वास है कि जब अन्तिम नामांकन होगा, उस समय समस्त भारत एक स्वर से आपके नाम का समर्थन करेगा।

आज देश की स्थिति ऐसी है और सन् १६२६ का वर्ष हमारे देश के इतिहास में इतना महत्त्वपूर्ण होगा कि ऐसी स्थिति में आपके अतिरिक्त शायद ही अन्य कोई व्यक्ति इस भार को सम्भालने योग्य सिद्ध हो। हमने कुछ अन्य वैकल्पिक नामों के विषय में भी सुना है। अन्य परिस्थितियों में तो उन नामों पर भी विचार किया जा सकता था, परन्तु जब विभिन्न दलों में मिलकर एक सर्वसम्मत विधान बनाने का पूरा प्रयत्न चल रहा है, तब ऐसी दशा में वैकल्पिक नाम के सुझाव को स्वीकार नहीं किया जा सकता। मैं इस बात को बढ़ा चढ़ा कर नहीं कह रहा हूँ। यदि आप किसी कारण से कांग्रेस के सभापतित्व को अस्वीकार कर देते हैं, तो इस प्रान्त में इसका प्रभाव इतना गम्भीर होगा कि कांग्रेस अधिवेशन की सफलता को भारी आघात पहुँचेगा। ऐसे समय में, जब हम इतनी गम्भीर परिस्थिति में से गुजर रहे हैं क्या आप राष्ट्र के आह्वान को ठुकरावेंगे ?

सादर,

विनीत
सुभाषचन्द्र वसु

पश्च-लेख :

जिला बोर्डों के मतदाताओं की संख्या के सम्बन्ध में आपका तार प्राप्त हुआ। मैं उस जानकारी के प्राप्त करने का प्रयत्न तो कर रहा हूँ, परन्तु सफलता सन्दिग्ध है। भिन्न-भिन्न जिलों से मतदाता सूची प्राप्त करने के उपरान्त मतदाताओं की संख्या एकत्र करने में पर्याप्त समय लगेगा।

सुभाष

१३७*

द्वारा, श्री एस० के० वसु
ई० रोड
जमशेदपुर
३-१०-२८

श्री चरणेषु,

माँ, मैं कल यहाँ आ गया था। वैसे सकुशल हूँ। आज रात को नागपुर जा रहा हूँ। ६ तारीख को लौटूँगा। सम्भवतः १२ तारीख तक कलकत्ता पहुँचूँ। आप सब कैसे हैं? मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ?

मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए। इति।

सेवक
सुभाष

१३८

द्वारा, श्री एस० के० वसु
ई० रोड
जमशेदपुर
सोमवार, १५-१०-२८

श्री चरणेषु—

माँ, मैंने सुना है कि यह बात समाचार-पत्र में प्रकाशित हुई है कि मैं १६ तारीख को पुरुलिया जा रहा हूँ। न जाने यह समाचार किस आधार पर प्रकाशित हुआ है। मैंने जाने का निश्चय तो अभी तक किया नहीं। इस सप्ताह में कलकत्ता जाने की इच्छा है। हो सका तो शायद पुरुलिया भी चला जाऊँ। परन्तु वहाँ अधिक दिन रहना सम्भव नहीं होगा, क्योंकि कलकत्ते से पत्र आया है; इस कारण शीघ्र ही वहाँ जाना आवश्यक है। पुरुलिया जाने पर शायद वहाँ रुकना पड़े। इससे अधिक विलम्ब हो जाएगा। इसलिए सोचता हूँ कि सीधा कलकत्ता ही क्यों न चला जाऊँ। यदि पुरुलिया जाना निश्चित हुआ तो तार से सूचना दे दूँगा।

* श्रीमती वासन्ती देवी के नाम चार पत्र।

आशा है वहाँ सब सकुशल होंगे। मैं कुशलपूर्वक हूँ। मेरा सादर प्रणाम स्वीकार कीजिए। इति।

सेवक
सुभाष

१३९

१, वुडबर्न पार्क
७–११–२८

श्री चरणकमलेषु,

माँ, मैं आज दिल्ली से लौटा हूँ। ठीक-ठाक हूँ। रात को ही जमशेदपुर जा रहा हूँ। वहाँ मैं एक सप्ताह रुकूँगा। आपके क्या समाचार हैं? सुधीर बाबू से साक्षात्कार हुआ था, उनका स्वास्थ्य अच्छा है। मेरा पता २७, ई० रोड, जमशेदपुर है। आप वहाँ कब तक रहेंगी?

मेरा सादर प्रणाम स्वीकार कीजिए। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१४०

द्वारा, डा० विधान सी० राय
शिलांग
१६–६–२९

माँ, आज मैं शिलाँग में हूँ। यहाँ आकर शरीर को तो कुछ आराम मिला है परन्तु चिन्तन का अवसर नहीं मिला। चिन्तन के लिए समय निकालना बहुत आवश्यक है। मैं आँधी के वेग के समान चल रहा हूँ। कहाँ जा रहा हूँ, शुभ के पीछे चल रहा हूँ या अशुभ के, यह जान लेना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त आत्म-निरीक्षण भी आवश्यक है और समयाभाव में वह भी नहीं होता।

माँ, आज तुम मुझे मुक्त हृदय से आशीर्वाद दो। मैं जानता हूँ कि तुम्हारा आशीर्वाद मुझे बिना माँगे ही मिलता रहता है, फिर भी मैं कहता हूँ कि आज के दिन आशीर्वाद अवश्य देना। इस शुभ

आशीर्वाद का एक विशेष अर्थ है।

माँ, मैं आपकी नितान्त अयोग्य सन्तान हूँ। तुम्हारी ममता मुझे मानवता की ओर खींच रही है। माँ, आशीर्वाद दो कि जन्म-जन्मान्तर तक मैं तुम्हारे जैसी माँ प्राप्त करके पुनः अपने जीवन को सार्थक बना सकूँ।

मेरे सामाजिक जीवन का एकमात्र आधार मेरे बन्धु, सखा और गुरु, आज नहीं रहे। आज तो मैं एकदम अकिंचन हूँ। इस अकिंचन का एकमात्र आश्रय तुम्हीं हो। प्रतिकूल परिस्थितियों में, अनेक प्रकार के घात-प्रतिघातों में, सर्वस्व खो देने पर भी, कभी तुम्हारे स्नेह से वंचित न रहूँ बस यही कामना है।

विचार करके बताना कि मैं किस मार्ग का पथिक बनूँ। इति।

नितान्त अपदार्थ
किन्तु अशेष स्नेह का पात्र
सेवक
सुभाष

१४१*

१, वुडबर्न पार्क
कलकत्ता
(कलकत्ता जाते हुए)
२६–१०–२६

भगिनी समानासु,

बहुत दिन पहिले आपका पत्र आया था, पढ़ कर प्रसन्नता और दुःख दोनों ही एक साथ हुए। इससे पूर्व उत्तर दे देना चाहिए था, परन्तु आज लगभग १० दिन से चक्र के समान घूम रहा हूँ। आज दिल्ली से कलकत्ता जाते समय, रास्ते में, उत्तर लिखने का प्रयास कर रहा हूँ, क्योंकि यह नहीं कह सकता कि कलकत्ते में उतरने पर क्या स्थिति हो। अधिक सम्भावना तो इस बात की है कि मुझे पत्र लिखने का अवसर सरलता से नहीं मिलेगा। जब आपने मुझे पत्र लिखा था, तब माँ पुरुलिया में थीं—क्या आपको यह समाचार नहीं मिला था?

* श्रीमती कल्याणी देवी के नाम।

मैं बाल्यकाल से ही बहुत सुकुमार प्रकृति का रहा हूँ। सभा-समितियों में भाषण देने के पश्चात् भी मुझमें कोई अन्तर नहीं आया। लोगों की धारणा है कि मैं अहंकारी हूँ। मैं चाहे कुछ भी क्यों न होऊँ परन्तु अहंकारी नहीं हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि अहंकार करने योग्य मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं जहाँ बँध जाता हूँ वहाँ अच्छी तरह से बँध जाता हूँ। क्या आप जानती हैं कि मैं आप सब को किस दृष्टि से देखता हूँ ?

इस बार पंजाब के लोगों ने सर्वत्र ही मेरे प्रति यथेष्ट प्रेम, कृपा और सम्मान प्रदर्शित किया। यतीनदास के आत्म-बलिदान को ही इसका श्रेय है। वास्तव में अब पंजाब का वातावरण एकदम बदला हुआ सा लगता है।

मेरा कार्य-क्रम आजकल इतना अनिश्चित है कि मुझ तो यह ज्ञात ही नहीं कि पुरुलिया जाना सम्भव भी होगा अथवा नहीं ? आशा तो बहुत ही कम है।

मेरा स्नेह स्वीकार करना। भास्कर बाबू से भी प्रणाम कहना। अपने श्वसुर महाशय तथा सास ठकुरानी से मेरा सादर प्रणाम कहना। बच्चों को प्यार। इति।

आपका अपना
सुभाष

पश्च-लेख :

कलकत्ता लौट आया हूँ। मजिस्ट्रेट के जमानत स्वीकार कर लेने के कारण गिरफ्तार नहीं किया गया।

सुभाष
२७–१०–२९

१४२*

बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी

तार का पता
"बीपीसीसी"

फोन नं० २६५२ **बड़ा बाजार**

नं०.........

कलकत्ता...१६...
५-११-२६

श्री चरणकमलेषु—

माँ, मैं कल दिल्ली से लौटा हूँ। निश्चित ही आपने वहाँ के समाचार अखबार में पढ़ लिए होंगे। जान पड़ता है कि इस बार तो महात्माजी के प्रभाव में आकर जवाहरलाल ने स्वतन्त्र रूप से विचार करना ही छोड़ दिया है।

आप सब कैसे हैं ? आजकल वहाँ कौन कौन हैं ?

इधर भी संघर्ष का जोर शोर के साथ आयोजन हो रहा है। १६ और १७ नवम्बर को निर्वाचन होगा। सेनगुप्त महोदय और उनका दल तो हमें बी० पी० सी० सी० से खदेड़ने के लिए प्राणपण से प्रयास कर रहे हैं। देखिए क्या होता है ? सम्भवतः हम पराजित नहीं होंगे। एक प्रकार से सब ठीक ही है। मेरा सादर प्रणाम स्वीकार हो। सबको मेरा स्नेह। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१४३

१, वुडबर्न पार्क
कलकत्ता
६-१२-२६

श्री चरणकमलेषु—

माँ, अत्यधिक झंझटों में फँसे रहने के कारण बहुत दिन से आपको पत्र नहीं लिख सका। कारामुक्त होने के उपरान्त

* श्रीमती वासन्ती देवी के नाम छः पत्र।

इतने झंझट शायद पहली ही बार सामने आए हैं। आपका स्नेहाशीर्वाद सदैव मेरे साथ है। यही अनुभूति मेरे लिए असीम सान्त्वना और शक्ति का आधार है। मुझे ज्ञात नहीं कि यदि आप मेरी इस विपत्ति के समय न होतीं तो क्या होता ? परन्तु आपकी उपस्थिति सदैव अनुभव होने पर भी आपके निकट पहुँचने की प्रबल इच्छा होती है। कह नहीं सकता कि आपसे कब मिलना होगा।

इस बार मध्य प्रदेश में जाकर युवकों में पर्याप्त प्रचार किया। मेरी अनुपस्थिति में ही मुझे ट्रेड यूनियन कांग्रेस का सभापति बना दिया गया था।

सेनगुप्त का दल मुझे अपदस्थ और ध्वस्त करने का बार-बार प्रयास कर रहा है, किन्तु वह अभी तक सफल नहीं हो सका है। हमारा झगड़ा पण्डित मोतीलालजी को सौंप दिया गया है। हमने चुनाव में कुछ अन्याय नहीं किया, फिर भी न जाने क्यों, पण्डितजी सेनगुप्त का समर्थन करते प्रतीत होते हैं ? वे सिलहट के बी० पी० सी० सी० के और ए० आई० सी० सी० के चुनावों को मान्यता नहीं दे रहे हैं।

सोच रहा हूँ कि न जाने कब जेल जाना पड़े, बड़े दिन से पहले अथवा बाद में ? अनुमान है कि इस बार तो सजा हो ही जाएगी। सरकार की नीति में ही कोई आकस्मिक परिवर्तन हो जाय तो दूसरी बात है। सामान्य राजप्रदत्त क्षमा की मुझे विशेष आशा नहीं है।

जाने दीजिए, राजनीति की और अधिक बातें लिखकर क्या होगा ? आपसे मिलना सम्भव होता तो बहुत अच्छा था। बहुत सी बातें कहनी थीं। परन्तु अभी तो मिलना सम्भव दिखाई नहीं देता।

आपका स्नेहाशीर्वाद मुझे मनुष्य बना दे, बस यही मेरी कामना है। सम्भवतः मानवीय गुणों का अर्जन और अधिक नहीं हो सकेगा।

हमारी इस विपत्ति में डा० राय से आशानुरूप सहायता नहीं मिल रही है ; परन्तु निर्मल बाबू बहुत सहायता कर रहे हैं।

आपका स्वास्थ्य कैसा है ? वहाँ और सब का क्या हाल है ? इति।

आपका सेवक

सुभाष

१४४

लाहौर जाते हुए
२४–१२–२६

श्री चरणेषु—

हे माँ, जब से आपने कलकत्ता छोड़ा है मैं न जाने कितने संघर्षों और कितनी अशान्ति में फँस गया हूँ। बार-बार इच्छा होती है कि आपके पास जाऊँ और आपका स्नेहाशीर्वाद प्राप्त करूँ, परन्तु क्या ऐसा होना सम्भव होगा? कर्म के बन्धन तोड़ना कितना कठिन है। आपका स्नेहाशीर्वाद मेरे साथ है, इस अनुभूति के बल पर ही मैं जीवित हूँ। जब हृदय बहुत क्लांत हो जाता है, तब आपका स्नेहाशीर्वाद मुझको पुनः स्वस्थ कर देता है। सच समझिये मेरे पास कोई सम्पदा अथवा आश्रय नहीं है। मुझे कुछ भी नहीं मालूम कि जो कुछ अभी मैं करता हूँ वह ठीक करता हूँ अथवा गलत। हे माँ, मुझे मार्ग सुझाकर सत्य के मार्ग पर दृढ़ रखना, जिससे अपने सैंकड़ों दोष और त्रुटियों पर आपके आशीर्वाद से विजय प्राप्त कर सकूँ। और क्या लिखूँ—लाहौर जा रहा हूँ। नहीं जानता वहाँ क्या होगा?

मुझे पराजित करने के लिए शत्रु बार-बार अपने दलों को संगठित कर रहे हैं। किसी अदृश्य शक्ति के बल से ही मैं उन्हें बार-बार पछाड़ता आया हूँ। निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि अन्त में क्या होगा? परन्तु स्मरण रहे कि सन्तान की विजय का अर्थ माँ की विजय है; सन्तान की पराजय का तात्पर्य है माता की पराजय।

आपकी अयोग्य सन्तान
सुभाष

१४५

१, वुडबर्न पार्क
कलकत्ता
६–१–३०

श्री चरणेषु—

माँ, मैं आज सवेरे यहाँ लौट आया हूँ। आज ही मुकदमा फिर शुरू हुआ है।

बहुत दिन से आपका तथा अन्य लोगों का कोई समाचार नहीं मिला। आप सब कैसे हैं?

मैं सकुशल हूँ। क्या यहाँ आपके आने की कोई सम्भावना है? इति।

आपका सेवक
सुभाष

१४६

अलीपुर कोर्ट
२३-१-३०

श्री चरणेषु—

माँ, आपके भेजे हुए सब पत्र मुझे मिल गए हैं। अनेक झंझटों में फँसे रहने के कारण समय पर उत्तर नहीं दे पाया। आज मुझे एक वर्ष का कारावास दण्ड मिला है। हम सब सकुशल हैं। मैं पूर्ण प्रसन्नता के साथ राजमन्दिर की ओर विजय यात्रा करूँगा। मुझे विश्वास है कि आपका स्नेहाशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहेगा। आपकी अस्वस्थता का समाचार सुनकर मुझे चिन्ता हुई। आप अविलम्ब कलकत्ता आकर डा० राय से चिकित्सा करवाइये। यह मेरा अनुरोध है। आशा है आप इसे स्वीकार करेंगी। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१४७

१, वुडबर्न पार्क
कलकत्ता
७-११-३०

श्री चरणकमलेषु—

माँ, आपके द्वारा प्रेषित पत्र मुझे मिल चुके हैं परन्तु मैं उत्तर नहीं दे सका। सम्भवतः इस बात से आप कुपित हुई हों; परन्तु मैं क्षमा-याचना नहीं करूँगा, क्योंकि आप तो मेरा स्वभाव जानती ही हैं। शीघ्रता से मैं हर समय उत्तर नहीं दे सकता।

आप सब कैसे हैं? मैं यद्यपि क्षण भर भी विश्राम नहीं कर सकता

किन्तु फिर भी मैं एक प्रकार से अच्छा ही हूँ। इच्छा होते हुए भी कलकत्ता से बाहर जा नहीं पाया। आप कब आयेंगी। इति।

आपका सेवक
सुभाष

१४८*

सेन्सर के बाद अनुमति प्राप्त पत्र।
डी० आई जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०,

द्वारा, डी० आई० जी आई० बी०,
सी० आई० डी० (बंगाल)
१३, लार्ड सिन्हा रो,
कलकत्ता।

जबलपुर सेन्ट्रल जेल
५–७–३२

प्रिय संतोष बाबू,

आपका ६–४–३२ का कृपा-पत्र समय पर प्राप्त हुआ; परन्तु मैं उस समय उत्तर न दे सका। आपने नीबू के रस का टोटका बतलाया है। यह पेट के लिए तो अच्छा है, परन्तु कूल्हे के दर्द (साइटिका) पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं होता। नीबू के रस का प्रयोग तो मैं पिछले कुछ दिनों से कर रहा हूँ। नीबू के रस पर तो मेरी माता जी का भी बड़ा विश्वास है; परन्तु वे इसको पेट की गड़बड़ के लिए उपयोगी मानती हैं, कूल्हे के दर्द के लिए नहीं। मुझे तो कूल्हे का दर्द, गुर्दे के दर्द के बाद पैदा हुआ है। जब तक यह दर्द नहीं जावेगा कूल्हे का दर्द भी नहीं जावेगा। पिछले वर्ष अप्रैल में, छिंदवाड़ा के सिविल-सर्जन ने परोक्ष रूप से मेरे इस दृष्टिकोण की पुष्टि की थी।

आप सब लोगों के कैसे हाल-चाल हैं। सुस्थिर बाबू और उनके परिवार का क्या हाल है? मेरा अनुमान है कि वह नौरोजी के स्थान पर स्थानापन्न कल्याण अधिकारी के रूप में काम कर रहे होंगे।

अमृत बाबू ने मुझे पत्र द्वारा सूचित किया है कि यदि उनको पर्याप्त समर्थन प्राप्त हो जावे तो इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट ट्रिब्यूनल के लिए खड़े

* श्री संतोषकुमार वसु के नाम दो पत्र।

होने के इच्छुक हैं। यदि वे खड़े होते हैं तो मैं उनकी उम्मीदवारी का हृदय से समर्थन करता हूँ। मैं उन्हें बहुत दिनों से जानता हूँ और मैं उनकी स्पष्टवादिता एवं सच्चरित्रता का समुचित आदर करता हूँ। ट्रिब्यूनल के वास्ते तो हमें बहुत ही उच्च चरित्र एवं पूर्ण ईमानदार व्यक्ति की आवश्यकता है। कोरे पाण्डित्य से काम नहीं चलेगा। हो सकता है कि वयोवृद्ध लोग अमृत बाबू के मुकाबले में प्रतिरोध करें, परन्तु आयु का अधिक होना ज्ञान, पाण्डित्य, अनुभव अथवा चरित्र आदि का द्योतक नहीं है और न युवा होना कोई जुर्म है। पिछले चुनाव में अधिकतर लोग यह अनुभव कर रहे थे कि किसी एक पद पर किसी एक का एकाधिकार नहीं होना चाहिए। मेरे विचार से आज भी यह तर्क संगत है। आपको इस कार्य के लिए हाई कोर्ट के प्रथम श्रेणी के वकील तो मिलेंगे नहीं। तब जो व्यक्ति इस स्थान के लिए खड़े होंगे, मेरे विचार से उनमें न कोई अनुभवी होगा और न विशिष्ट कानूनी जानकारी वाला ही। इसके अतिरिक्त मेरे विचार से इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट ट्रिब्यूनल के लिए बहुत अच्छे कानूनी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। इस काम के लिए तो हमें दृढ़ एवं सत्यनिष्ठ व्यक्ति की आवश्यकता है, जो ट्रस्ट के सम्मुख, जिन व्यक्तियों के मुकदमे आवें वह उनके साथ न्याय कर सके। अमृत बाबू इन समस्त शर्तों को अच्छी तरह से पूरा कर सकेंगे। अतः मैं आशा करता हूँ कि आप उनकी उम्मीदवारी का समर्थन करेंगे। मैं इस सम्बन्ध में अमृत बाबू के पास भी एक पत्र डाले दे रहा हूँ ताकि वह आपसे भी मिल लें।

जल-निकास-विस्तार विशेष समिति के कामों में कुछ प्रगति हुई ?

अब से कुछ दिन पूर्व मैंने कारपोरेशन के दो कर्मचारियों के सम्बन्ध में लिखा था। कृपया जब कभी अवसर आवे उनके तरक्की सम्बन्धी प्रार्थना-पत्र पर अनुकूल विचार कीजिए। उनमें से जितेन बनर्जी ने इस सम्बन्ध में मुझे पुनः लिखा है। यदि आप उसकी कोई सहायता कर सकते हैं तो अवश्य कीजिए। आशा है आप सब सकुशल होंगे। कृपया श्री याकूब से भी यह कह दीजिए कि पिछले दिनों उनका पत्र पढ़कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।

मेरी तबीयत कतई ठीक नहीं चल रही, जैसा कि तुम्हें विदित ही है। दुर्भाग्य से स्वास्थ्य बिगड़ता ही जा रहा है।

हम दोनों की ओर से सादर प्रणाम।

आपका परम स्नेही
सुभाष

पश्च-लेख :

आपके लड़कों का क्या हाल है ? पिछले दिनों आप सुस्थिर बाबू से कब मिले थे ?

१४६

सेन्सर के बाद अनुमति प्राप्त पत्र ।
डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०,
बंगाल

द्वारा, डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी० (बंगाल)
१३, लार्ड सिन्हा रो,
कलकत्ता ।

दि पैनीटैंशियरी, मद्रास
१६–८–३२

प्रिय संतोष बाबू,

आशा है आपको मेरा १५ अगस्त वाला पत्र मिल गया होगा ।

मुझे खेद है कि मैं फिर नगर प्रशासन के सम्बन्ध में लिख रहा हूँ । दुर्भाग्य से लोग यह समझते हैं कि नगर प्रशासन के कार्यों में मेरा बड़ा प्रभाव है । जहाँ तक मेरा अपना सम्बन्ध है, इस विषय में मुझे कोई भ्रान्ति नहीं है, परन्तु यह बात मैं औरों को कैसे समझाऊँ, विशेष रूप से जबकि मैं इतनी दूर हूँ । साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि कोई व्यक्ति यह अनुभव करे कि मैं उसकी सहायता कर तो सकता था, परन्तु मैंने उसकी सहायता की नहीं । इसीलिए यह पत्र भेज रहा हूँ ।

श्रीयुत सावित्री प्रसन्न चटर्जी ने टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल में बंगाली भाषा के प्राध्यापक पद के लिए आवेदन-पत्र दिया है । वे कलकत्ता विश्व-विद्यालय के स्नातक हैं—उन्होंने अब तक एम० ए० की डिग्री भी ले ली होती, परन्तु असहयोग आन्दोलन के कारण न ले पाये । जब तक कलकत्ता विद्यापीठ रही वे उसमें बंगाली भाषा के प्राध्यापक रहे । वे एक सफल प्राध्यापक थे और विद्यार्थियों में भी वे बड़े प्रिय थे । देशबन्धु जी उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानते थे और चाहते भी थे ।

बंगला लेखकों की नई पीढ़ी में उन्होंने अपना एक स्थान बना लिया है । वे एक सफल कवि भी हैं, यद्यपि इस पद के लिए आपको

कवि को आवश्यकता नहीं है। स्वभावतः वह काव्य के एक अच्छे समालोचक भी हैं। उनका सम्पर्क साहित्यिक पत्रकारिता के साथ बहुत पुराना है, जिससे उनकी साहित्य समालोचना की शक्ति बहुत तीव्र हो गई है। अपने व्यक्तिगत जीवन में वे एक भद्र पुरुष हैं और दयालु प्रकृति के व्यक्ति हैं। मैं कोई भी ऐसी बात नहीं जानता जो उनके विपरीत जाती हो।

यह तो मुझे ज्ञात नहीं कि आपको कैसे व्यक्ति की आवश्यकता है अथवा आपको कैसा आदमी मिलेगा, परन्तु मेरे विचार से सावित्री बाबू इस कार्य के लिए एक उपयुक्त व्यक्ति रहेंगे। यदि आप उनकी नियुक्ति कर देंगे तो उससे वास्तव में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि उनको इतना वेतन मिल जाता है, जिससे वे सांसारिक झंझटों एवं चिन्ताओं से मुक्ति प्राप्त कर सकें तो ऐसी स्थिति में उनकी साहित्य-साधना भी चल सकती है। यदि आप उनके नाम का प्रस्ताव कर सकें तो कर दीजिए और अन्य मित्रों से भी इस सम्बन्ध में कह दीजिए।

अपने स्वास्थ्य के विषय में मुझे अधिक कुछ नहीं लिखना। आपने इस सम्बन्ध में डा० राय से सब कुछ सुन ही लिया होगा। जब से वे यहाँ से गये हैं, तब से कुछ शिकायतें बढ़ गई हैं और वजन भी कुछ गिर गया है। मैं समझता हूँ कि अब कोई चारा नहीं है। जो कुछ मुसीबतें भविष्य में आयेंगी, उन्हें तो सहन करना ही होगा। आशा है वहाँ सब ठीक-ठाक होगा। सब मित्रों से नमस्कार कहिये।

आपका परम स्नेही
सुभाष

पश्च-लेख :

मैं आशा करता हूँ कि सुस्थिर बाबू तक आपने मेरा प्रणाम पहुँचा दिया होगा। आशा है उनके परिवार में सभी सकुशल हैं। क्या वे लोग वापस चले गये अथवा कलकत्ते में ही हैं ?

सुभाष

१५०*

श्री श्री दुर्गा सहाय

द्वारा, डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०,
१३, लार्ड सिन्हा रो, कलकत्ता

दि पैनिटैंशियरी, मद्रास
सोमवार, २६ अगस्त १६३२

पूजनीया मँझली भाभी,

आपका पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। आपका पत्र तो दिनांक ११ को ही मिल गया था, परन्तु उत्तर देने में विलम्ब हुआ। क्षमा करेंगी। साथ की और सब चिट्ठियाँ भी मिल गई थीं, परन्तु अमि के पत्र के अनेक अंश कटे हुए थे। अन्य पत्रों का कोई भी अंश कटा हुआ नहीं था।

यहाँ से नीलरतन बाबू और विधान बाबू परीक्षा करके लौट गए हैं। उनसे आपको विस्तृत समाचार मिल जायेंगे। अस्पताल में परीक्षा हुई थी। उनके साथ दो सरकारी डाक्टर और भी थे—डा० स्किनर और केशवपाई। सबने एकमत होकर रिपोर्ट दी है। संक्षेप में उनका मत यह है :—

(१) यक्ष्मा के लक्षण पाये गए हैं।

(२) पेट में गड़बड़ होने के कारण एपेंडिसाइटिस हो सकता है।

(३) अविलम्ब स्वास्थ्यप्रद स्थान पर भेजना चाहिए।

(४) स्विट्जरलैंड, अथवा भारतवर्ष में भुवाली के आरोग्य निवास में रखकर चिकित्सा की व्यवस्था करना उचित है। जेल में रहने से तो रोग बढ़ेगा ही, कुछ कम होने से तो रहा।

विस्तृत रूप में तो डाक्टरों से ही ज्ञात हो सकेगा परन्तु मैंने सारांश दे दिया है। अब फिर सरकार बहादुर के आदेश की प्रतीक्षा है।

यहाँ अभी तक गर्मी पड़ रही है। खाने-पीने की व्यवस्था पूर्ववत् है। जब तक पेट ठीक न हो भूख कैसे बढ़े ? यहाँ का जल तो बिल्कुल ही अच्छा नहीं है।

* श्रीमती विभावती वसु के नाम।

पिताजी का पुरीधाम से प्रेषित १२ ता० का पत्र मिल गया है। मैंने भी दिनांक १६ को उनके पास पत्र डाला था, आशा है वह यथा समय पहुँच गया होगा।

अमि का दिनांक २२ का पत्र संभवत: कहीं सी० आई० डी० आफिस में अटक गया होगा परन्तु साथ में जो गीता का पत्र था वह तो मिल गया है। अमि के पहले पत्र यानि ३ तारीख वाले पत्र के अंश कटे हुए निकले।

प्रिय अमि, मीरा, नेरू और गीता, तुम सबके पत्र मुझे प्राप्त हो गए हैं। सम्भवत: मीरा और नेरू एक पत्र लिखने के बाद ही थक गए होंगे।

यहाँ की जेल जबलपुर की जेल से छोटी है, किन्तु इसकी बिल्डिंग उससे बेहतर है। मैं दूसरी मंजिल पर रहता हूँ, स्थान बहुत छोटा है, एक व्यक्ति के रहने योग्य—अंग्रेजी में इसे 'सैल' कहते हैं। मैं यहाँ सारे दिन बरामदे में पड़ा रहता हूँ। छोटे पालतू जानवरों को तो यहाँ ला नहीं सका, स्थानाभाव के कारण मंगवाने का प्रबन्ध भी नहीं किया। जबलपुर जैसा एकदम पृथक् आँगन यहाँ नहीं है, इसी से स्थानाभाव लगता है। यहाँ रसोई का हंगामा नहीं है, क्योंकि मैं जो खाता हूँ उसके लिए रसोईघर की आवश्यकता नहीं है। स्टोव पर ही खाना बन जाता है। यहाँ अधिकांश समय लिखने-पढ़ने में व्यतीत होता है। इसके लिए कुछ पुस्तकें भी खरीद ली हैं।

यहाँ आने के उपरान्त मेजदादा को पत्र लिखा था, बहुत दिन पश्चात् उसका उत्तर मिला। मैंने कई दिन बाद उसका उत्तर भी दे दिया था।

एक स्थान पर अधिक दिन रहते-रहते मन ऊब जाता है, तब दूसरे स्थान पर जाने से प्रारम्भ में कुछ अच्छा लगता है। बाद में वहाँ भी मन ऊबने लगता है। जेल में समय काटने का सुगम उपाय निरन्तर पढ़ते-लिखते रहना ही है।

गीता के बहुत से प्रश्नों का उत्तर देने के कारण पत्र लिखने में विलम्ब हो गया। देखता हूँ कि भाई का क्या नाम रखा जाए, इस पर सब बच्चे एकमत नहीं हैं। जब सब एकमत नहीं हों, तब एक काम करना उचित रहेगा कि कई नाम रखे जायें। वह बड़ा होकर अपने लिए एक नाम स्वयं पसन्द कर लेगा।

आशा है आप सब सकुशल होंगे। अक्षय ने लिखा है कि वह मिलने

के लिए यहाँ आना चाहता है। उसे आने को मना कर देना। व्यर्थ में इतनी दूर आने की क्या आवश्यकता है ?

पिताजी का स्वास्थ्य कैसा है ? मालूम नहीं यहाँ और कितने दिन तक रहना पड़ेगा। यदि कभी-कभी कोई जबलपुर जा सके तो अच्छा रहे। मेजदादा वहाँ अकेलापन अनुभव करेंगे। यहाँ आने की अपेक्षा अक्षय अकेला जबलपुर जाए तो बेहतर होगा। इति।

सुभाष

१५१*

सेन्सर के बाद अनुमति प्राप्त पत्र
ह० अस्पष्ट
१३।६
वास्ते डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी०, बंगाल

द्वारा, डी० आई० जी० आई० बी०,
सी० आई० डी० (बंगाल),
१३, लार्ड सिन्हा रो,
कलकत्ता।

दि पैनीटैंशियरी, मद्रास
१०–६–३२

प्रिय दिलीप,

मुझे तुम्हारा १५ अगस्त वाला स्नेहसिक्त पत्र २६ अगस्त को प्राप्त हुआ। मेरे पास पहुँचने वाले सभी पत्र पहले कलकत्ता जाते हैं, फिर वहाँ सेन्सर होते हैं। विलम्ब से पत्र पहुँचने का यही कारण है। भविष्य में जितने भी पत्र भेजो, सीधे कलकत्ते के पते पर भेज सकते हो।

जो कुछ भी तुमने मेरे लिए किया है, वह एक सच्चे मित्र के नाते किया है, इससे अधिक मेरे लिए कोई क्या करता ? मुझे यह ज्ञात नहीं है कि मैं योग की शक्ति के आह्वान के योग्य भी हूँ ? सम्भवतः मैं उसके योग्य नहीं हूँ। तब भी मेरे विचार से जो अतिमानस स्थिति के अस्तित्व को नहीं मानते, वे भी इच्छा-शक्ति के अस्तित्व

* श्री दिलीप कुमार राय के नाम।

को स्वीकार करते हैं और यह शक्ति—चाहे आप इसे किसी भी नाम से पुकारें—बराबर अपना काम करती है चाहे इस शक्ति का आह्वान करने वाला उसे ग्रहण करने की पूरी क्षमता न रखता हो। मैं इसके लिए श्री अरविन्द का आभारी हूँ।

ठीक है, मद्रास पाण्डिचेरी के निकट ही है—परन्तु बीच में दीवारें जो हैं। मुझे ऐसा नहीं जान पड़ता कि मैं यहाँ अधिक समय तक रहूँगा। समाचार-पत्रों में तो ऐसी चर्चा है कि मेरा स्थानान्तरण भुवाली आरोग्य-निवास को होगा।

मेरे लिए यह आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि तुमको अपने स्वास्थ्य का विस्तृत विवरण देकर चिन्तित करूँ, क्योंकि तुम कोई चिकित्सक तो हो नहीं। मानसिक रूप से मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ—मेरी अस्वस्थता तो केवल शारीरिक है। यही कारण है कि मेरा उत्साह कम नहीं है। मैं पढ़ता तो थोड़ा हूँ परन्तु मनन अधिक करता हूँ। कभी-कभी तो मुझे ऐसा भान होता है कि मैं अन्धेरे में कुछ टटोल रहा हूँ, परन्तु जब तक मैं सच्चाई और ईमानदारी को नहीं छोड़ता तब तक मैं गलत मार्ग पर जा ही नहीं सकता। यह सम्भव है कि सत्य की ओर मेरी प्रगति सीधी न होकर टेढ़ी-मेढ़ी हो। आखिर जीवन का प्रयाण सीधे थोड़े ही होता है। पूरा सीधापन तो केवल एक सीधी रेखा में ही हो सकता है।

यदि कर्म की व्याख्या विस्तृत दृष्टिकोण से करें तो क्या परमात्मा ने हमें कार्य करने के लिए अलग-अलग क्षेत्र नियत नहीं किए हैं, और क्या यह क्षेत्र हमारे पूर्व-जन्म के संस्कारों, हमारी वर्तमान इच्छाओं और हमारे वातावरण के अनुसार हमें नहीं मिला है? फिर भी हमारे लिए अपने कार्य-क्षेत्र को पहिचानना अथवा उसकी अनुभूति करना कितना कठिन कार्य है। यह कार्य-क्षेत्र हमारे धर्म का बाह्य रूप है। कहना तो बड़ा सरल है कि "स्वधर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करो", परन्तु यह जान लेना बहुत ही कठिन है कि हमारा 'धर्म' क्या है? यहीं पर आकर 'गुरु' की आवश्यकता पड़ती है, अपितु मैं तो यह कहूँगा कि उसके बिना काम ही नहीं चल सकता।

मैं जानता हूँ कि तुम अवश्य ही मेरे सम्बन्ध में सोचोगे और मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसा करना व्यर्थ नहीं जाएगा। चाहे मैं कहीं भी बन्दी होऊँ, मुझे इस विचार से बहुत सान्त्वना मिलती है। श्री अरविन्द के कार्य की मेरे मन में बहुत कद्र है। इस सम्बन्ध में मुझे

उपयुक्त शब्द नहीं मिल पा रहे। अतः मैं इस विषय पर आगे कुछ नहीं कहूँगा।

सप्रेम,

तुम्हारा परम स्नेही
सुभाष

श्री दिलीप कुमार राय
श्री अरविन्द आश्रम
पाण्डिचेरी।

१५२*

लखनऊ

प्रिय सन्तोष बाबू,

मैं आशा कर रहा था कि विदेश जाने से पूर्व मैं सब मित्रों एवं सम्बन्धियों से मिल सकूँगा, परन्तु ऐसा हो न पाएगा। इन परिस्थितियों में, मैं विदेश जाने की बात का स्वागत नहीं करता। मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मैं बलात् अपने प्रियजनों से बिछुड़ रहा हूँ। परन्तु स्वास्थ्य-सुधार का कोई अवसर है तो एक यही अवसर है। डाक्टर भी कहते हैं, और मैं भी उनके विचार से सहमत हूँ कि यदि देर की जावेगी तो रोग असाध्य हो जावेगा और सुधार का कोई अवसर न रहेगा।

डा० डे मुख्य अभियन्ता नियुक्त हो गए हैं, समाचार-पत्रों में यह खबर पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरी ओर से आपको और डा० डे को बधाई।

मैं यह जानना चाहूँगा कि प्रस्ताव को छिन्न-भिन्न करने के लिए किस प्रकार के उपस्तावों का जाल रचा गया था ?

क्या कारपोरेशन मेरे पास विदाई सन्देश नहीं भेजेगा—'तुम्हारी यात्रा सुखद हो' का सन्देश ? ऐसे सन्देश को पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

सबको मेरा प्यार।

आपका परम स्नेही
सुभाषचन्द्र वसु

* श्री सन्तोष कुमार वसु के नाम।

पश्च-लेख :

मेरा जाना अनिश्चित है, इसलिए यदि मेरे पत्र का उत्तर दो तो डी० आई० जी० आई० बी०, सी० आई० डी०, १३, लार्ड सिन्हा रो, कलकत्ता के द्वारा देना। मैं आगामी २३ ता० को जहाज पर सवार हो जाऊँगा।

सुभाष

१५३*

श्री श्री दुर्गा सहाय

मद्रास
१ अक्टूबर १९३२
शनिवार

परमपूजनीया मँझली भाभी,

आपका दो सितम्बर का पत्र मुझे दिनांक १० को मिल गया था और २४ सितम्बर का पत्र मुझे दिनांक ३० को अर्थात् कल मिला।

मुझसे मिलने कोई आएगा यह जानकर मेरा हृदय कितना व्यग्र हो उठता है यह मैं ही जानता हूँ। वास्तविकता यह है कि मुझे किसी का यहाँ आना पसन्द नहीं। इसी कारण जब अक्षय ने लिखा था कि वह आना चाहता है, तब भी मैंने मना लिख दिया था। बीच में पुलिस के लोगों की अनुमति न मिलने के कारण सब बात स्पष्ट हो गई। उस दिन जब समाचार मिला कि बड़े दादा आना चाहते हैं तब भी मैंने मना किया, क्योंकि मालूम नहीं मैं यहाँ कब तक हूँ और सम्भव है शीघ्र ही स्थानान्तरण हो जावे। अतएव व्यर्थ में इतनी दूर आने में कोई लाभ दिखाई नहीं देता। मैंने लिख दिया था कि मेरे रहने की स्थायी व्यवस्था होने पर ही आना उचित रहेगा।

यहाँ किसी भी प्रकार की चिकित्सा प्रारम्भ नहीं की गई और वह हो भी नहीं सकती। भोजन की व्यवस्था पहले जैसी ही है। जब कभी कुछ थोड़ा अधिक भोजन कर लेता हूँ तभी कष्ट होने लगता है। वजन शनैः शनैः और भी घटता जा रहा है।

सुपरिन्टैन्डैन्ट साहब एक प्रकार से निरुपाय हैं। मेरे सम्बन्ध में

* श्रीमती विभावती वसु के नाम।

शीघ्र ही कोई व्यवस्था हो जाए वे स्वयं ही इस बात का प्रयास कर रहे हैं, परन्तु अभी तक परिणाम कुछ नहीं निकला। कुछ समय पूर्व समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ था कि सरकार मुझे भुवाली भेजेगी, परन्तु आज तक कोई सरकारी आदेश नहीं आया।

यहाँ आने के उपरान्त दीदी को कोई पत्र नहीं लिख सका, न दीदी का ही कोई पत्र आया। माँ ने लिखा था कि सम्भवत: दीदी कटक जायेंगी परन्तु सोचता हूँ कि यदि वे इस समय गोरखपुर ही रहें तो ठीक है।

गत सोमवार को माँ को कटक के पते पर एक पत्र डाला था। गत दिनांक ८ को पिताजी को भी पत्र डाला था। पिताजी का पत्र १७ तारीख को मिला। मेजदादा का २ तारीख का पत्र पिताजी ने अपने पत्र के साथ भेज दिया था।

नूतन मामा बाबू को सूचना देना कि उन्होंने जो औषधि भेजी थी वह आज मुझे मिल गई है। बड़े दादा का १७ सितम्बर का पत्र भी कल मिला था।

ज्वर पूर्ववत् चल रहा है। यहाँ अभी तक बहुत गर्मी है, वर्षा आरम्भ नहीं हुई है।

मैंने आपके जबलपुर जाने का विवरण यहाँ समाचार-पत्र में पढ़ा था। बाद में आपका वक्तव्य भी यहाँ के समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ था। प्रतिमास कोई जबलपुर मिलने जाये ऐसी व्यवस्था करना।

गोपाली ने कितने दिन की छुट्टी ली है? प्रिय मीरा, नेरू और गीता के पत्र मिले। नेरू का दूसरा पत्र मिला, परन्तु इस बार नेरू के अतिरिक्त और किसी ने पत्र क्यों नहीं लिखा? गीता जानना चाहती है यहाँ की जेल कितनी मंजिल की हैं? क्या वह यहाँ आकर रहना चाहती है? यहाँ के मकान दो मंजिल के हैं और इस जेल में स्त्रियों के लिए पृथक् व्यवस्था भी है। यहाँ की जेल में स्थान बहुत थोड़ा है, घूमने के लिए उस प्रकार की सुविधा नहीं है। कमरे छोटे होने पर भी हवादार हैं और मेरा बरामदा लम्बा है। मैं अधिकांश समय बरामदे में ही रहता हूँ। नेरू का परीक्षाफल सुनकर प्रसन्नता हुई परन्तु उसको प्रथम स्थान प्राप्त करना चाहिए।

मेजभाभी आदि कैसी हैं? आशा है छोटे दादा आदि सकुशल होंगे। नदादा का समाचार बहुत दिन से नहीं मिला।

आशा है वहाँ सब कुशलपूर्वक होंगे। मेरा सादर प्रणाम स्वीकार कीजिये। छोटों को प्यार। इति।

सुभाष

सन्दर्भ-सूची

अमृत	श्री अमृतलाल चटर्जी, सदस्य कलकत्ता निगम
अमि (अमीय)	श्री शरत् चन्द्र वसु के द्वितीय पुत्र
अपर्णा	देशबन्धु चितरंजनदास जी की ज्येष्ठ पुत्री
अरुणा	भानजी (बहिन की पुत्री)
अशोक	श्री शरत् चन्द्र वसु के ज्येष्ठ पुत्र
'इंग्लिशमैन'	कलकत्ते से निकलने वाला अंग्रेजी दैनिक
कनक	सबसे छोटी बहिन
किरण बाबू	श्री किरण शंकर राय
कोट्स	कलकत्ता निगम के मुख्य अभियन्ता (१६२४)
कोजेजी	प्रेजीडेन्सी कालिज के अंग्रेजी-विभाग के अध्यक्ष
कंचिमामा	एक मामा
गिरिजा प्रसन्न	श्री गिरिजा प्रसन्न सान्याल
गिरीश, गिरीशदा	श्री गिरीश बनर्जी
गीता	श्री शरत् चन्द्र वसु की द्वितीय पुत्री
गोपाली	सातवें भाई श्री शैलेश चन्द्र वसु
गोरा	भानजी (बहिन की पुत्री)
गोस्वामी, तुलसी बाबू	श्री तुलसी चन्द्र गोस्वामी
चटर्जी, सावित्री प्रसन्न	सुप्रसिद्ध साहित्यकार
चारु	श्री चारुचन्द्र गांगुली, सहपाठी और मित्र
छाया	श्री सुधीरचन्द्र वसु की पुत्री
छोटे दादा	पाँचवें भाई, डा० सुनीलचन्द्र वसु
जस्टिस दास	श्री प्रफुल्ल रंजन दास
जुगलदा	डा० जुगल किशोर अध्या
डे (डा०)	डा० बी० एन० डे, मुख्य अभियन्ता, कलकत्ता निगम
तारापोरवाला (डा०)	कलकत्ता विश्वविद्यालय में तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के अध्यक्ष
दत्तगुप्त	श्री हेमचन्द्र दत्तगुप्त

दास (श्रीमती)	श्रीमती वासन्ती देवी, (देशबन्धु चितरंजनदास की पत्नी)
धीरेन	श्री धीरेन्द्रनाथ धर, केम्ब्रिज के साथी
नदादा	चौथे भाई श्री सुधीरचन्द्र वसु
नगेन ठाकुर	पुरोहित
नतुन मामा बाबू	पाँचवें मामा
नाबोदी	श्री सुधीरचन्द्र वसु की धर्म-पत्नी
नारा, नेरू, नेड़ू	श्री शरत् चन्द्र वसु के तृतीय पुत्र
निर्मल बाबू	श्री निर्मल चन्द्र चन्दर
नीलरतन बाबू	डा० नील रत्न सरकार
नीलमणि	श्री नीलमणि सेनापति (आई० सी० एस०), केम्ब्रिज के साथी
पाँच बड़े	श्री शरत् चन्द्र वसु, श्री निर्मल चन्द्र चन्दर, श्री तुलसी चन्द्र गोस्वामी, श्री विधान चन्द्र राय, श्री नलिनी रंजन सरकार
पारिजा, पी०	एक समकालीन, बाद में रेवेन्शा कालिज कटक के वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर
पौलि	पाँचवीं बहन
प्रफुल्लदा	एक समकालीन, बाद में चिकित्सक बने
प्रफुल्ल	श्री प्रफुल्ल चन्द्र राय (सर), बंगाल के प्रख्यात परोपकारी रसायन-शास्त्री
प्रमथा	श्री प्रमथा नाथ सरकार, एक समकालीन
प्रिय रंजन	श्री प्रिय रंजन सेन, एक समकालीन, बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर
'फारवर्ड'	देशबन्धु जी द्वारा संस्थापित अंग्रेज़ी दैनिक
बड़ी दीदी	ज्येष्ठ बहिन, प्रमिला
बड़े दादा	ज्येष्ठ भ्राता, श्री सतीश चन्द्र वसु
'बसुमती'	बंगाली भाषा का दैनिक समाचार-पत्र
बिजय काका	श्री विजय कृष्ण बोस, वकील, कलकत्ता निगम के सदस्य और बंगाल विधान-परिषद् के सदस्य (स्वराज्य पार्टी, १९२४)
बीर	घरेलू नौकर

बेनी बाबू	श्री बेनीमाधवदास, आचार्य, रेवेन्शा कालिजियेट स्कूल, कटक
बेन्तले (डा०)	निदेशक, जनस्वास्थ्य, बंगाल सरकार और कलकत्ता निगम के मनोनीत सदस्य (१९२४)
बो दीदी	सबसे बड़ी भाभी
बोस, जितेन्द्रीय	एक प्रमुख वकील और कलकत्ता निगम के कांग्रेसी सदस्य
ब्रज बाबू	श्री ब्रजगोपाल गोस्वामी, कलकत्ता निगम के कांग्रेसी सदस्य (१९२४)
भास्कर बाबू	श्री भास्कर मुखर्जी, देशबन्धु चितरंजनदास के छोटे जामाता
भोम्बल	श्री चिररंजन, देशबन्धु चितरंजनदास के पुत्र
मीनू	देशबन्धु जी की सबसे बड़ी पौत्री
मीरा	श्री शरत् चन्द्र वसु की सबसे बड़ी पुत्री
मूडीमैन, सर एलैक्जैन्डर	भारत सरकार के गृह-मन्त्री
मोबरले	भारत सरकार के गृह-सचिव
मँझले दादा	श्री शरत् चन्द्र वसु
मँझली बो दीदी	श्रीमती विभावती, श्री शरत् चन्द्र वसु की पत्नी
रघुआ	कटक में परिवार का माली
रनेन मामा	मामा श्री रनेन्द्रनाथ दत्त
रमिश्रा (श्री)	कलकत्ता निगम के सचिव (१९२४)
राय, सुरेन्द्रनाथ	बेहाला के विख्यात ज़मींदार, बंगाल विधान-परिषद् के उपाध्यक्ष
राय, एस० सी०	कलकत्ता निगम के उप-अधिशासी अधिकारी
राय (डा०)	डा० विधान चन्द्र राय
राधू	श्री सुनीलचन्द्र वसु की ज्येष्ठ पुत्री
लाल मामी माँ	एक मामी
लिली	चौथी बहिन
याकूब	निगम सदस्य, बाद में कलकत्ता निगम के उप-अधिशासी अधिकारी
विल्किन्सन	कलकत्ता निगम के अधिशासी अभियन्ता (१९२४)

शारदा	परिवार की सबसे पुरानी नौकरानी जिसने बचपन में नेता जी की देखभाल की थी
सत्येन बाबू	श्री सत्येन्द्र चन्द्र मित्र
सत्येनधर	श्री धीरेनधर के सबसे बड़े भाई
सत्येन मामा	मामा श्री सत्येन्द्र नाथ दत्त
सुधीर बाबू	श्री सुधीर चन्द्र राय, देशबन्धु जी के जामाता
सुहृद्	श्री सुहृद् चन्द्र मित्र (डा०)
सुनीति बाबू	डा० सुनीति कुमार चटर्जी
सुरेशदा	डा० सुरेशचन्द्र बनर्जी
सुशील डे	बाद में डा० सुशील डे, ढाका विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी के प्राध्यापक
सुस्थिर बाबू	श्री सन्तोष कुमार वसु के अनुज
सेजा जमाई बाबू	बहनोई, तीसरी बहिन के पति
सेजो बोदी	तीसरी भाभी
सेजदादा	तीसरे भाई श्री सुरेश चन्द्र वसु
सेजदीदी	तीसरी बहिन
सेनगुप्त	श्री जितेन्द्रमोहन सेनगुप्त
हेमेन्दु	श्री हेमेन्दु सेन, बचपन के एक मित्र
हेम बाबू	श्री हेम सरकार, रेवेन्शा कालेज कटक में अंग्रेजी के प्राध्यापक
क्षितीश	श्री क्षितीश प्रसाद चट्टोपाध्याय, एक सहपाठी, जो आगे चलकर कलकत्ता निगम के शिक्षा अधिकारी और कलकत्ता विश्वविद्यालय में मानव-शास्त्र के प्राध्यापक हुए